## पार्वतीके विवाहकी तैयारी, हिमवान्‌के द्वारपर दूलह शिवके साथ बारातमें विष्णु आदि देवताओंका आगमन, हिमालयद्वारा उनका सत्कार, वरको देखनेके लिये स्त्रियोंका आगमन, वरके अलौकिक रूप-सौन्दर्यको देख मेनाका प्रसन्न होना, स्त्रियोंद्वारा दुर्गाके सौभाग्यकी सराहना, दुर्गाका रूप, दम्पतिका एक-दूसरेकी ओर देखना, गिरिराजद्वारा दहेजके साथ शिवके हाथमें कन्याका दान तथा शिवका स्तवन

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं**—वसिष्ठजीके पूर्वोक्त वचनको सुनकर सेवकगणों तथा पत्नीसहित हिमालयको बड़ा विस्मय हुआ; किंतु स्वयं पार्वती मन-ही-मन हँस रही थी। अरुन्धतीने भी उन मेनादेवीको, जो शोकसे कातर हो खाना-पीना छोड़कर रो रही थीं; समझाया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शोकका त्याग कर दिया तथा अरुन्धतीको उत्तम भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया। इसके बाद वे प्रसन्न-चित्तसे समस्त मङ्गलकार्योंका सम्पादन करने लगीं। प्रिये! तदनन्तर वसिष्ठजीकी आज्ञासे हिमालयने वैवाहिक सामग्री एकत्रित की और बड़ी उतावलीके साथ विभिन्न स्थानोंमें निमन्त्रणपत्र भेजवाया। तत्पश्चात् उन्होंने शिवके पास मङ्गलपत्रिका पठवायी। इसके बाद शैलराजने विवाहके लिये भोज्यपदार्थ, मिष्टान्न, दिव्य वस्त्र तथा स्वर्ण-रत्न आदिका अपार संग्रह किया। पार्वतीको स्नान करवाकर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया गया। उसके नेत्रोंमें काजल और पैरोंमें महावर लगाया गया। इधर देवेश्वरगण विविध वाहनोंपर सवार हो रत्नमय रथपर आरूढ़ हुए भगवान् शंकरको साथ लिये हिमालय-भवनके समीप पहुँचे। वहाँ भाँति-भाँतिसे सबका स्वागत-सत्कार किया गया। देवेश्वरोंको सामने देख हिमालयने उन्हें प्रणाम किया और सेवकोंको आज्ञा दी कि 'इन सम्माननीय अतिथियोंके लिये सिंहासन प्रस्तुत किये जायँ।' तत्पश्चात् विनतानन्दन गरुड़की पीठसे तत्काल ही उतरकर चार-भुजाधारी भगवान् नारायण अपने पार्षदोंसहित सिंहासनपर बैठे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित चतुर्भुज पार्षद रत्नमयी मुट्ठीमें बँधे हुए श्वेत चामरोंद्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। उस समाजमें श्रेष्ठतम ऋषि और बड़े-बड़े देवता उनके गुण गा रहे थे। भगवान्‌का प्रसन्नमुख मन्द मुस्कानसे सुशोभित था और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। उनके पास ही देवताओंके साथ ब्रह्माजी भी बैठे। ऋषि और मुनि भी मङ्गलमय स्थानपर विराजमान हुए। इसी समय भगवान् शिव रथसे उतरकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे। बैठकर उन्होंने पर्वतराज हिमालयकी ओर देखा। तत्पश्चात् भगवान् शिवको देखनेके लिये वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो शैलेन्द्र-नगरकी स्त्रियाँ आयीं। उनमें बालिकाएँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ भी थीं। ऋषियों, देवों, नागों, गन्धर्वों, पर्वतों और राजाओंकी भी मनोहर कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं। मेनाने कुमारी कन्याओंके साथ दूलह शंकरका दर्शन किया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मनोहर चम्पाके समान गौर थी। वे एक मुख तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित थे। उनके प्रसन्न-मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुन्दर कुंकुमसे

अलंकृत थे। उन्होंने मालतीकी माला धारण कर रखी थी। उनका मस्तक श्रेष्ठ रत्नमय मुकुटसे प्रकाशमान था। अग्निशोधित, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, सुन्दर, विचित्र और बहुमूल्य दो वस्त्रोंसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था। अञ्जनसे अञ्जित होनेके कारण उनके नेत्रोंकी शोभा बढ़ गयी थी। पूर्ण प्रभासे आच्छादित होनेके कारण वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे। उनकी अवस्था अत्यन्त तरुण (नवीन) थी। वे भूषणभूषित रमणीय अङ्गोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय उन्होंने भगवान् नारायणकी आज्ञासे परम सुन्दर अनुपम रूप धारण कर रखा था। भगवान् शंकर योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। वे गुणोंके भेदसे अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं, तथापि रूपरहित हैं। भवसागरमें डूबे हुए प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं तथा जगत्की सृष्टि, पालन एवं संहारके कारण हैं। वे सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वेश्वर, सर्वजीवन तथा सबके साक्षी हैं। उनमें किसी प्रकारकी इच्छा या चेष्टा नहीं है। वे परमानन्दस्वरूप, अविनाशी, आदि, अन्त और मध्यसे रहित, सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं। ऐसे दिव्य जामाताको देखकर आनन्दमग्न हुई मेनाने शोकको त्याग दिया। 'सती धन्य है, धन्य है'—कहकर वहाँ आयी हुई युवतियोंने पार्वतीके सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'अहो! दुर्गा बड़ी भाग्यशालिनी है।' कुछ कामिनियाँ कामभावसे युक्त हो मौन एवं स्तब्ध रह गयीं और कितनी ही बोल उठीं—'अरी सखी! हमने अपने जीवनमें ऐसा वर कभी नहीं देखा था।'

बाजे बजानेवालोंने भाँति-भाँतिकी कलाएँ दिखाते हुए वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर और मधुर वाद्य बजाये। इसी समय हिमवान्के अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ दुर्गाको बाहर ले आयीं। वह रत्नमय सिंहासनपर बैठी थी। उसके सामने रत्नमयी वेदी शोभा पा रही थी। उसके मुख-मण्डलका कस्तूरी तथा स्निग्ध सिन्दूरके बिन्दुओंसे शृङ्गार किया गया था। चारु चन्दनसे चर्चित चन्द्रसदृश आभावाले आनम्र भालदेशसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ रत्नोंके सारसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा था। वह त्रिलोचन शिवकी ओर कनखियोंसे देख रही थी। उनके सिवा और कहीं उसकी दृष्टि नहीं जाती थी। उसके मुखपर अत्यन्त मन्द मुस्कानकी आभा बिखरी हुई थी। वह कटाक्षपूर्वक देखनेके कारण बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। उसकी भुजाएँ और हाथ रत्ननिर्मित केयूर, कड़े तथा कंगनसे विभूषित थे। उसके कटिप्रदेशमें रत्नोंकी बनी हुई करधनी शोभा दे रही थी। झनकारते हुए मञ्जीर चरणोंका सौन्दर्य बढ़ाते थे। वह बहुमूल्य, तुलनारहित, विचित्र एवं कीमती दो वस्त्रोंसे सुशोभित थी। उसके सुन्दर कपोल श्रेष्ठ रत्नमय कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे। दन्तपङ्क्ति मणिके सारभागकी प्रभाको छीने लेती थी। वह एक हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए थी और दूसरेमें क्रीडाकमल लेकर घुमा रही थी। उसके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे चर्चित थे। ऐसी अलौकिक रूपवाली जगत्की आदिकारणभूता जगदम्बाको सब लोगोंने प्रसन्नताके साथ देखा। हर्षसे युक्त भगवान् त्रिलोचनने भी नेत्रके कोनेसे पार्वतीकी ओर देखा। देखकर वे आनन्द-विभोर हो उठे। उसकी सम्पूर्ण आकृति सतीसे सर्वथा मिलती-

जुलती थी। उसे देखकर भगवान् शंकरने विरह-ज्वरका परित्याग कर दिया। उन्होंने अपना मन दुर्गाको अर्पित कर दिया और स्वयं सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्ग पुलकित हो गये तथा नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये।

इसी समय हर्षसे भरे हुए हिमवान्ने पुरोहितके साथ जाकर वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरके रूपमें वरण किया। भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार अर्पित किये तथा दिव्य गन्धवाली मनोहर मालाओंसे दूलहको अलंकृत किया। तत्पश्चात् यथासम्भव शीघ्र वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक उनके हाथमें अपनी कन्याका दान कर दिया। राधिके! तदनन्तर हर्षसे भरे हुए हिमालयने उदारतापूर्वक दहेजमें उन्हें अनेक प्रकारके रत्न, सुन्दर रत्नोंके बने हुए मनोहर पात्र, एक लाख गौ, रत्नजटित झूल और अंकुशसे युक्त एक सहस्र गजराज, सजे-सजाये तीन लाख घोड़े, श्रेष्ठ रत्नोंसे अलंकृत लाखों अनुरक्त दासियाँ, पार्वतीके लिये छोटे भाईके समान प्रिय एक सौ ब्राह्मण वटु और श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित सौ रमणीय रथ दिये। पूर्वोक्त वस्तुओंके साथ शैलराजद्वारा यत्नपूर्वक दी हुई पार्वतीको भगवान् शंकरने प्रसन्न-मनसे 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया। हिमालयने कन्यादान करके भगवान् शंकरकी परिहार नामक स्तुति की। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ माध्यन्दिन-शाखामें वर्णित स्तोत्रको पढ़ते हुए उनका स्तवन किया।

**हिमालय बोले**—सर्वेश्वर शिव! आप दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले तथा शरणागतोंको नरकके समुद्रसे उबारनेवाले हैं, सबके आत्मस्वरूप हैं और आपका श्रीविग्रह परमानन्दमय है; आप मुझपर प्रसन्न हों; गुणवानोंमें श्रेष्ठ महाभाग शंकर! आप गुणोंके सागर होते हुए भी गुणातीत हैं; गुणोंसे युक्त, गुणोंके स्वामी और गुणोंके आदि कारण हैं; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। प्रभो! आप योगके आश्रय; योगरूप, योगके ज्ञाता, योगके कारण, योगीश्वर तथा योगियोंके आदिकारण और गुरु हैं; आप मेरे ऊपर कृपा करें। भव! आपमें ही सब प्राणियोंका लय होता है, इसलिये आप 'प्रलय' हैं। प्रलयके एकमात्र आदि तथा उसके कारण हैं। फिर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके बीजरूप हैं और उस सृष्टिका पूर्णतः परिपालन करनेवाले हैं; मुझपर प्रसन्न होवें। भयंकर संहार-कालमें सृष्टिका संहार करनेवाले आप ही हैं। आपके वेगको रोकना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। आराधनाद्वारा आपको रिझा लेना भी सहज नहीं है तथापि आप भक्तोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं; प्रभो! आप मुझपर कृपा करें। आप कालस्वरूप, कालके स्वामी, कालानुसार फल देनेवाले, कालके एकमात्र आदिकारण तथा कालके नाशक एवं पोषक हैं; मुझपर प्रसन्न हों। आप कल्याणकी मूर्ति, कल्याणदाता तथा कल्याणके बीज और आश्रय हैं। आप ही कल्याणमय तथा कल्याणस्वरूप प्राण हैं; सबके परम आश्रय शिव! मुझपर कृपा करें।

इस प्रकार स्तुति कर हिमालय चुप हो गये, उस समय समस्त देवताओं और मुनियोंने गिरिराजके सौभाग्यकी सराहना की। राधिके! जो मनुष्य सावधान-चित्त होकर हिमालयद्वारा किये गये स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये शिव निश्चय ही मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं।

(अध्याय ४४)

## शिव-पार्वतीके विवाहका होम, स्त्रियोंका नव-दम्पतिको कौतुकागारमें ले जाना, देवाङ्गनाओंका उनके साथ हास-विनोद, शिवके द्वारा कामदेवको जीवन-दान, वर-वधू और बारातकी बिदाई, शिवधाममें पति-पत्नीकी एकान्त वार्ता, कैलासमें अतिथियोंका सत्कार और बिदाई, सास-ससुरके बुलानेपर शिव-पार्वतीका वहाँ जाना तथा पार्षदोंसहित शिवका श्वशुर-गृहमें निवास

**भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं**—प्रिये! तदनन्तर महादेवजीने वैदिक विधिसे अग्निकी स्थापना करके पार्वतीको अपने वामभागमें बिठाकर वहीं यज्ञ (वैवाहिक होम) किया। वृन्दावन-विनोदिनि! उस यज्ञके विधिपूर्वक सम्पन्न हो जानेपर भगवान् शिवने ब्राह्मणको दक्षिणाके रूपमें सौ सुवर्ण दिये। तत्पश्चात् गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने प्रदीप लाकर माङ्गलिक कृत्यका सम्पादन किया। फिर वे नव-दम्पतिको घरमें ले गयीं। उन सबने प्रेमपूर्वक जयध्वनि तथा शुभ निर्मञ्छन आदि करके मन्द मुस्कराहटके साथ कटाक्षपूर्वक शिवकी ओर देखा। उस समय उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था। वास-भवनमें प्रवेश करके कामिनियोंने देखा—शंकर अत्यन्त सुन्दर रूप और वेशभूषासे सुशोभित हैं। उनका प्रत्येक अङ्ग रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुमसे अलंकृत है। उनके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही है। वे कटाक्षपूर्वक देखते और मनको हर लेते हैं। उनकी वेश-भूषा अपूर्व एवं सूक्ष्म है। वे सिन्दूर-विन्दुओंसे विभूषित हैं। उनकी गौर-कान्ति मनोहर चम्पाकी आभाको तिरस्कृत कर रही है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा मुनीन्द्रोंके भी चित्तको मोह लेनेवाले हैं। वहाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुधादेवी, शतरूपा तथा संज्ञा—ये सोलह देवाङ्गनाएँ भी उपस्थित थीं। इनके सिवा और भी बहुत-सी मनोहर रूपवाली देवकन्याएँ, नागकन्याएँ तथा मुनिकन्याएँ वहाँ आयी थीं। उस समय जो देवाङ्गनाएँ गिरिराजके भवनमें विराजमान थीं, उन सबकी संख्या बतानेमें कौन समर्थ है?

उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर दूलह शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन सोलह दिव्य देवियोंने सुधाके समान मधुर वाणीमें भगवान् शंकरको बधाई दी। उनके साथ विनोदभरी बातें कीं और पार्वतीको सुख पहुँचानेके लिये विनम्र अनुरोध किया। इसी समय भगवान् शंकरने रतिपर कृपा की। रतिने गाँठमें बँधी हुई कामदेवके शरीरकी भस्मराशि उनके सामने रख दी और शिवने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देखकर भस्मके उस ढेरसे पुनः कामदेवको प्रकट कर दिया। तत्पश्चात् योगियोंके परम गुरु निर्विकार भगवान् शंकरने उन परिहासपरायणा देवियोंसे कहा—'आप सब-की-सब साध्वी तथा जगन्माताएँ हैं, फिर मुझ पुत्रके प्रति यह चपलता क्यों?' शिवकी यह बात सुनकर वे देवियाँ सम्भ्रमपूर्वक चित्रलिखी-सी खड़ी रह गयीं। इसके बाद शंकरजीने भोजन किया। फिर उन्होंने मनोहर राजसिंहासनपर विराजमान हो उस दिव्य निवासगृहकी अनुपम शोभा एवं चित्रकारी देखी। यह सब देखकर उन्हें आश्चर्य और परम संतोष हुआ। रातको उन्होंने उसी दिव्य भवनमें विश्राम किया। प्राणवल्लभे! जब प्रातःकाल हुआ, तब नाना प्रकारके वाद्योंकी मधुर ध्वनि होने लगी। फिर तो सब देवता वेगपूर्वक उठे और वेशभूषासे

सज्जित हो अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर कैलासकी यात्राके लिये उद्यत हो गये। उस समय नारायणकी आज्ञासे धर्म उस वासभवनमें गये और योगीश्वर शंकरसे समयोचित वचन बोले।

**धर्मने कहा**—प्रमथेश्वर! आपका कल्याण हो। उठिये, उठिये और श्रीहरिका स्मरण करते हुए माहेन्द्र-योगमें पार्वतीके साथ यात्रा कीजिये।

वृन्दावन-विनोदिनि! धर्मकी बात सुनकर शंकरने पार्वतीके साथ माहेन्द्र-योगमें यात्रा आरम्भ की। पार्वतीके साथ देवेश्वर शंकरके यात्रा करते समय मेना उच्चस्वरसे रो पड़ीं और उन कृपानिधानसे बोलीं।

**मेनाने कहा**—कृपानिधे! कृपा करके मेरी बच्चीका पालन कीजियेगा। आप आशुतोष हैं। इसके सहस्रों दोषोंको क्षमा कीजियेगा। मेरी बेटी जन्म-जन्ममें आपके चरणकमलोंमें अनन्यभक्ति रखती आयी है। सोते-जागते हर समय इसे अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरे किसीकी याद नहीं आती है। आपके प्रति भक्तिकी बातें सुनते ही इसका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठता है और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं। मृत्युञ्जय! आपकी निन्दा कानमें पड़नेपर यह ऐसी मौन हो जाती है, मानो मर गयी हो।

मेना यह कह ही रही थी कि हिमवान् तत्काल वहाँ आ पहुँचे और अपनी बच्चीको छातीसे लगा फूट-फूटकर रोने लगे—'वत्से! हिमालयको—मेरे इस घरको सूना करके तू कहाँ चली जा रही है? तेरे गुणोंको याद करके मेरा हृदय अवश्य ही विदीर्ण हो जायगा।' यों कहकर शैलराजने अपनी शिवा शिवको सौंप दी और पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित वे बारंबार उच्चस्वरसे रोदन करने लगे। उस समय कृपानिधान साक्षात् भगवान् नारायणने उन सबको कृपापूर्वक अध्यात्मज्ञान देकर धीरज बँधाया। पार्वतीने भक्तिभावसे माता-पिता और गुरुको प्रणाम किया। वे महामायारूपिणी हैं; अतः मायाका आश्रय ले बारंबार जोर-जोरसे रोने लगीं। पार्वतीके रोनेसे ही वहाँ सब स्त्रियाँ रोने लगीं। पत्नियों तथा सेवकगणोंसहित सम्पूर्ण देवता और मुनि भी रो पड़े। फिर वे मानसशायी देवता शीघ्र ही कैलासपर्वतको चल दिये तथा दो ही घड़ीमें शिवके निवासस्थानपर सानन्द जा पहुँचे। यह देखकर वहाँके मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करनेके लिये देवताओं और मुनियोंकी पत्नियाँ भी दीप लिये शीघ्रतापूर्वक सहर्ष वहाँ आ गयीं। वायु, कुबेर और शुक्रकी स्त्रियाँ, बृहस्पतिकी पत्नी तारा, दुर्वासाकी स्त्री, अत्रि-भार्या अनसूया, चन्द्रमाकी पत्नियाँ, देवकन्या, नागकन्या तथा सहस्रों मुनिकन्याएँ वहाँ उपस्थित हुईं। वहाँ जिन असंख्य कामिनियोंका समूह आया था, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उन सबने मिलकर नवदम्पतिका उनके निवास-मन्दिरमें प्रवेश कराया तथा उन महेश्वरको रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बिठाया। वहाँ भगवान् शिवने सतीको उनका पहलेवाला घर दिखाया और प्रसन्नतापूर्वक पूछा—'प्रिये! क्या तुम्हें अपने इस घरकी याद आती है? यहींसे तुम अपने पिताके निवास-स्थानको गयी थीं। अन्तर इतना ही है कि इस समय तुम गिरिराजकुमारी हो और उस समय यहाँ दक्षकन्याके रूपमें निवास करती थीं। तुम्हें पूर्वजन्मकी बातोंका सदा स्मरण रहता है; इसीलिये पिछली बातोंकी याद दिला रहा हूँ। यदि तुम्हें उन बातोंका स्मरण है तो कहो।'

भगवान् शंकरकी बात सुनकर पार्वती मुस्करायीं और बोलीं—'प्राणनाथ! मुझे सब बातोंका स्मरण है; किंतु इस समय आप चुप रहें (उन बीती बातोंकी चर्चा न करें)।' तत्पश्चात् शिवने सामग्री एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको नाना प्रकारके मनोहर पदार्थ भोजन कराये। भोजनके पश्चात् भाँति-भाँतिके रत्नोंसे अलंकृत हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंसहित

सब देवता भगवान् चन्द्रशेखरको प्रणाम करके विदा हुए। भगवान् नारायण और ब्रह्माको शंकरजीने स्वयं ही प्रणाम किया। वे दोनों उन्हें हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दे अपने-अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद हिमवान् और मेनाने मैनाकको बुलाया और कहा—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम शिव और पार्वतीको शीघ्र यहाँ बुला लाओ।' उनकी बात सुनकर मैनाक शीघ्र ही शिवधाममें गया और पार्वती एवं परमेश्वरको लिवाकर आ गया। पार्वतीका आगमन सुनकर बालक-बालिका, वृद्धा तथा युवती स्त्रियाँ भी उन्हें देखनेके लिये दौड़ी आयीं। पर्वतगण भी सानन्द भागे आये। मेना अपने पुत्रों और बहूके साथ मुस्कराती हुई दौड़ीं। हिमालय भी प्रसन्नतापूर्वक पुत्रीकी अगवानीके लिये दौड़े आये। देवी पार्वतीने रथसे उतरकर बड़े हर्षके साथ माता-पिता तथा गुरुजनोंको प्रणाम किया। उस समय वे आनन्दके समुद्रमें गोते लगा रही थीं। हर्ष-विह्वल मेना और मोदमग्न हिमालयने पार्वतीको हृदयसे लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा, मानो गये हुए प्राण वापस आ गये हों। पुत्रीको घरमें रखकर गिरिराजने उसके लिये रत्नसिंहासन दिया और शूलपाणि शिव तथा उनके पार्षदगणोंको मधुपर्क आदि दे सहर्ष उनका सत्कार किया। पार्षदोंसहित भगवान् चन्द्रशेखर अपने ससुरके घरमें रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन पत्नीसहित उनकी सोलह उपचारोंसे पूजा होने लगी। राधे! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् शंकरके मङ्गल-परिणयकी कथा कह सुनायी, जो हर्ष बढ़ानेवाली तथा शोकका नाश करनेवाली है। अब और क्या सुनना चाहती हो?

(अध्याय ४५-४६)

## इन्द्रके अभिमान-भङ्गका प्रसङ्ग—प्रकृति और गुरुकी अवहेलनासे इन्द्रको शाप, गौतम मुनिके शापसे इन्द्रके शरीरमें सहस्र योनियोंका प्राकट्य, अहल्याका उद्धार, विश्वरूप और वृत्रके वधसे इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण, इन्द्रका मानसरोवरमें छिपना, बृहस्पतिका उनके पास जाना, इन्द्रद्वारा गुरुकी स्तुति, ब्रह्महत्याका भस्म होना, इन्द्रका विश्वकर्माद्वारा नगरका निर्माण कराना, द्विज-बालकरूपधारी श्रीहरि तथा लोमश मुनिके द्वारा इन्द्रका मान-भंजन, राज्य छोड़नेको उद्यत हुए विरक्त इन्द्रका बृहस्पतिजीके समझानेसे पुनः राज्यपर ही प्रतिष्ठित रहना

**श्रीराधिकाने पूछा**—जगद्गुरो! मैंने शूलपाणि शिवके यश तथा दैववश उनके दर्प-भङ्गकी बात सुनी। पार्वतीके गर्वभंजनका और शिव-पार्वतीके विवाहका भी वर्णन सुना। अब इन्द्रके तथा अन्य लोगोंके भी अभिमानके चूर्ण होनेके प्रसङ्गोंको क्रमशः सुनना चाहती हूँ; कृपया विस्तारपूर्वक कहें।

**श्रीकृष्ण बोले**—सुन्दरि! इन्द्रके दर्प-भङ्गकी बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वह प्रसङ्ग सुन्दर, अनुपम तथा कानोंके लिये अमृतके समान मधुर है। प्राचीन कालकी बात है। इन्द्र सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके समस्त देवताओंके स्वामी तथा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो गये। तपस्याके फलसे प्रतिदिन उनके ऐश्वर्यकी वृद्धि होने लगी। बृहस्पतिजीने उन्हें सिद्ध-मन्त्रकी दीक्षा दी। उन्होंने पुष्करमें सौ वर्षोंतक उस महामन्त्रका जप किया। जपसे वह मन्त्र सिद्ध हो गया और इनका मनोरथ पूरा हुआ। मनुष्य सम्पत्तिसे मोहित हुआ ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिका आदर नहीं करता; अतः

प्रकृतिने इन्द्रको शाप दे दिया। इसीलिये उन्हें अपने गुरुकी ओरसे भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक शाप मिला। एक दिन इन्द्र अपनी सभामें बैठे थे। प्रकृतिके शापसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; अतः वे गुरुको आते देखकर भी न तो उठे और न प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम ही किया। यह देख बृहस्पतिजी क्रोधसे युक्त हो उस सभामें नहीं बैठे, उलटे पाँव घर लौट आये। वहाँ भी वे ताराके निकट नहीं ठहरे, तपस्याके लिये वनमें चले गये। उन्होंने मन-ही-मन दुःखी होकर कहा—'इन्द्रकी सम्पत्ति चली जाय।' तदनन्तर इन्द्रको सुबुद्धि प्राप्त हुई और वे बोले—'मेरे स्वामी यहाँसे कहाँ चले गये।'

यों कहकर वे वेगपूर्वक सिंहासनसे उठे और ताराके पास गये। वहाँ उन्होंने भक्तिभावसे मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़कर माता ताराको प्रणाम किया और सारी बातें बतायीं। फिर वे उच्चस्वरसे बारंबार रोदन करने लगे। पुत्रको रोते देख माता तारा भी बहुत रोयीं और बोलीं—'बेटा! तू घर जा। इस समय तुझे गुरुदेवके दर्शन नहीं होंगे। जब दुर्दिनका अन्त होगा, तभी तुझे गुरुजी मिलेंगे और उनकी कृपासे पुनः लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी। मूढ़! तेरा अन्तःकरण दूषित है; अतः अब अपने कर्मोंका फल भोग। दुर्दिनमें अपने गुरुपर दोषारोपण करता है और अच्छे दिनोंमें अपने-आपको ही संतुष्ट करनेमें लगा रहता है। (गुरुकी परवा नहीं करता।) इन्द्र! सुदिन और दुर्दिन ही सुख और दुःखके कारण हैं।'

यों कहकर पतिव्रता तारादेवी चुप हो गयीं। तदनन्तर इन्द्र वहाँसे लौट आये और एक दिन मन्दाकिनीके तटपर स्नानके लिये गये। वहाँ उन्होंने स्नान करती हुई गौतमपत्नी अहल्याको देखा। इन्द्रकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। उन्होंने गौतमका रूप धारण करके अहल्याका शील भङ्ग कर दिया। इसी बीच गौतमजी भी वहाँ आ गये। इन्द्रने भयभीत होकर मुनिके चरण पकड़ लिये। तब गौतमजीने कुपित होकर उनसे कहा।

**गौतम बोले**—इन्द्र! तुझे धिक्कार है। तू देवताओंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। कश्यपजीका पुत्र है; ज्ञानी है और जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीका प्रपौत्र है तो भी तेरी ऐसी बुद्धि कैसे हो गयी? जिसके नाना साक्षात् प्रजापति दक्ष हैं और माता पतिव्रता अदिति देवी हैं, उसका इतना पतन आश्चर्यकी बात है! तू वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी कहलाता है; किंतु कर्मसे योनि-लम्पट है; अतः तेरे शरीरमें एक सहस्र योनियाँ प्रकट हो जायँ। पूरे एक वर्षतक तुझे सदा योनिकी ही दुर्गन्ध प्राप्त होती रहेगी। तत्पश्चात् सूर्यकी आराधना करनेपर तेरे शरीरकी योनियाँ नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायँगी। मेरे शाप और गुरुके क्रोधसे इस समय तू राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जा। ओ मूढ़! तेरे गुरु बड़े तेजस्वी और मेरे अत्यन्त प्रेमी बन्धु हैं। हम दोनों बन्धुओंमें फूट न पड़ जाय; इस भयसे तेरे गुरुका ही खयाल करके मैंने इस समय तेरे प्राण नहीं लिये हैं।

तदनन्तर पैरोंमें पड़ी हुई अहल्याको लक्ष्य करके मुनिवर गौतमने कहा—'प्रिये! अब तू वनमें जा अपने शरीरको पत्थर बनाकर चिरकाल-तक उसी अवस्थामें रह। इस बातको मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तेरे मनमें कोई कामना नहीं थी। इन्द्रने स्वयं आसक्त होकर तेरे साथ छल किया है।'

स्वामीकी ऐसी आज्ञा होनेपर अहल्या बहुत डर गयी और 'हा नाथ! हा नाथ!' पुकारती तथा रोती हुई वनमें चली गयी। साठ हजार वर्षोंतक कर्मफलका भोग करनेके बाद मुनिप्रिया अहल्या श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्पर्श पाकर तत्काल शुद्ध हो गयी। फिर वह अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके गौतमजीके पास गयी। मुनिने सुन्दरी अहल्याको पाकर प्रसन्नताका अनुभव किया।

सुन्दरि राधिके! अब इन्द्रका उत्तम वृत्तान्त सुनो, जो पुण्यका बीज तथा पापका नाशक है। मैं विस्तारपूर्वक उसका वर्णन करता हूँ। गुरुके कोप और प्रकृतिकी अवहेलनासे वज्रधारी इन्द्रकी विवेक-शक्ति नष्ट हो गयी थी; अतः उनसे एक दिन ब्रह्महत्याका पाप बन गया। गुरुको तो वे छोड़ ही चुके थे; दैवने भी उन्हें अपना ग्रास बनाया। दैत्योंका आक्रमण हुआ और वे उनसे पीड़ित एवं भयभीत हो जगद्गुरु ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्होंने विश्वरूपको अपना पुरोहित बनाया। दैवसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये इन्द्रने विश्वरूपपर पूरा-पूरा विश्वास कर लिया। विश्वरूपकी माता दैत्यवंशकी कन्या थी; अतः उनके मनमें दैत्योंके प्रति भी पक्षपात था। बुद्धिमान् इन्द्र उनके इस मनोभावको ताड़ गये; अतः उन्होंने अनायास ही तीखे बाण मारकर पुरोहित विश्वरूपका सिर काट लिया। विश्वरूपके पिता त्वष्टाने जब यह बात सुनी तो वे तत्क्षण रोषके वशीभूत हो गये और **'इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्व'** (इन्द्रके शत्रु! तुम बढ़ो) ऐसा कहकर यज्ञका अनुष्ठान करने लगे, उस यज्ञके कुण्डसे वृत्र नामक महान् असुर प्रकट हुआ, जिसने अनायास ही समस्त देवताओंको क्रोधपूर्वक कुचल डाला। तब दैत्यमर्दन इन्द्रने महामुनि दधीचिकी हड्डियोंसे अत्यन्त भयंकर वज्रका निर्माण करके देवकण्टक वृत्रासुरका वध कर डाला। फिर तो इन्द्रपर ब्रह्महत्याने धावा बोल दिया। वे अचेत-से हो रहे थे। ब्रह्महत्या बूढ़ी स्त्रीका वेष धारण करके आयी थी। वह लाल कपड़े पहन रखी थी। उसके शरीरकी ऊँचाई सात ताड़ोंके बराबर थी तथा कण्ठ, ओठ और तालु सूखे हुए थे। उसके दाँत हरिसके समान लंबे थे। उसने इन्द्रको बहुत डरा दिया। वे जब दौड़ते थे तो उनके पीछे-पीछे वह भी दौड़ती थी। ब्रह्महत्या बलिष्ठ थी और इन्द्र अपनी चेतनातक खो बैठे थे। उसका स्वभाव निर्दय था और वह हाथमें तलवार लेकर बड़े वेगसे दौड़ रही थी। उस घोर ब्रह्महत्याको देखकर गुरुके चरणोंका स्मरण करते हुए वे कमलके नालके सूक्ष्म सूत्रके सहारे मानसरोवरमें प्रविष्ट हो गये। ब्रह्महत्या ब्रह्माजीके शापके कारण वहाँ पहुँचनेमें असमर्थ थी; अतः सरोवरके तटके निकट बरगदकी एक शाखापर जा बैठी। उन दिनों राजा नहुष इन्द्रकी जगह त्रिभुवनके स्वामी बनाये गये। नहुष बलिष्ठ थे और देवता दुर्बल। अतः इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुए नहुषने देवताओंसे यह माँग की कि इन्द्राणी शची मुझ इन्द्रकी सेवाके लिये उपस्थित हों। यह समाचार सुनकर शचीको बड़ा भय हुआ। वे तारादेवीकी शरणमें गयीं। ताराने अपने पतिको बहुत फटकारा और शिष्य-पत्नीकी रक्षा की। तब शचीको आश्वासन दे गुरु बृहस्पति प्रसन्नतापूर्वक मानसरोवरको गये और वहाँ कातर एवं अचेत हुए देवेन्द्रको सम्बोधित करके बोले।

**बृहस्पतिने कहा**—बेटा! उठो, उठो। मेरे रहते हुए तुम्हें क्या भय हो सकता है? मैं तुम्हारा स्वामी एवं गुरु हूँ। मेरे स्वरसे ही मुझे पहचानो और भय छोड़ो।

बृहस्पतिके स्वरको पहचानकर सम्पूर्ण सिद्धियोंके स्वामी इन्द्रने सूक्ष्म रूपको त्याग अपना रूप धारण कर लिया और तत्काल उठकर वेगपूर्वक उन सूर्यतुल्य तेजस्वी गुरुको देखा और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। गुरुजी उस समय प्रसन्न थे और क्रोधका परित्याग कर चुके थे। पैरोंमें पड़कर भयविह्वल हो रोते हुए इन्द्रको खींचकर उन्होंने प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया और स्वयं भी प्रेमाकुल होकर रो पड़े! बृहस्पतिजीको संतुष्ट तथा रोते देख देवेश्वर इन्द्रका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा। भक्तिभावसे उनका मस्तक झुक गया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

**इन्द्र बोले**—भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। कृपानिधान! कृपा कीजिये। अच्छे स्वामी अपने सेवकके अपराधको हृदयमें स्थान नहीं देते। अपनी पत्नी, अपने शिष्य, अपने भृत्य तथा अपने पुत्रोंको दुर्बल या सबल कौन मनुष्य दण्ड देनेमें असमर्थ होता है? तीन करोड़ देवताओंमें मैं ही एक देवाधम और मूढ़ हूँ। सुरश्रेष्ठ! आपकी कृपासे ही मैं उच्च पदपर प्रतिष्ठित हूँ। आपने ही दया करके मुझे आगे बढ़ाया है। आप सारे जगत्का संहार करनेकी शक्ति रखते हैं। आपके सामने मेरी क्या बिसात है? मैं वैसा ही हूँ, जैसा बावलीका कीट। आप साक्षात् विधाताके पौत्र हैं; अतः स्वयं दूसरी सृष्टि रचनेमें समर्थ हैं।

इन्द्रके मुखसे यह स्तवन सुनकर गुरु बृहस्पति बहुत संतुष्ट हुए। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और वे प्रेमपूर्वक बोले।

**बृहस्पतिने कहा**—महाभाग! धैर्य धारण करो और पहलेसे भी चौगुना महान् ऐश्वर्य पाकर सुस्थिर लक्ष्मीका लाभ लो। वत्स पुरन्दर! मेरे प्रसादसे तुम्हारे शत्रु मारे गये। अब तुम अमरावतीमें जाकर राज्य करो और पतिव्रता शचीसे मिलो।

यों कहकर ज्यों ही शिष्यसहित गुरु वहाँसे चलनेको उद्यत हुए, त्यों ही उन्होंने अत्यन्त दुःसह एवं भयंकर ब्रह्महत्याको सामने खड़ी देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र अत्यन्त भयभीत हो गुरुकी शरणमें गये। बृहस्पतिको भी बड़ा भय हुआ। उन्होंने मन-ही-मन मधुसूदनका स्मरण किया। इसी बीचमें आकाशवाणी हुई, जिसमें अक्षर तो थोड़े थे, परंतु अर्थ बहुत। बृहस्पतिजीने वह आकाशवाणी सुनी—'संसारविजय नामक जो राधिकाकवच है, वह समस्त अशुभोंका नाश करनेवाला है। इस समय उसीका उपदेश देकर तुम शिष्यकी रक्षा करो।' तब शिष्यवत्सल बृहस्पतिने शिष्यको उस कवचका उपदेश दिया और अनायास ही हुङ्कारमात्रसे ब्रह्महत्याको भस्म कर डाला। तदनन्तर शिष्यको साथ लेकर बृहस्पतिजी अमरावतीपुरीमें गये। इन्द्रने गुरुकी आज्ञासे उस पुरीकी दशा देखी। शत्रुने उस नगरीको तोड़-फोड़ डाला था।

पतिका आगमन सुनकर शचीके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उसने भक्तिभावसे गुरुदेवको प्रणाम करके प्राणवल्लभके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। प्रिये! इन्द्रका शुभागमन सुनकर सब देवता, ऋषि और मुनि वहाँ आये। उनका चित्त हर्षसे गद्गद हो रहा था। इन्द्रने अमरावतीका निर्माण करनेके लिये एक श्रेष्ठ देवशिल्पीको नियुक्त किया। देवशिल्पीने पूरे सौ वर्षोंतक अमरावतीकी रचना की। नाना विचित्र रत्नोंसे सम्पन्न तथा श्रेष्ठ मणिरत्नोंद्वारा निर्मित उस मनोहर पुरीकी कहीं उपमा नहीं थी। फिर भी उससे देवराज इन्द्र संतुष्ट नहीं हुए। विश्वकर्माको आज्ञा नहीं मिली। इसलिये वे घर जा तो नहीं सके; परंतु उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उनके अभिप्रायको जानकर कहा—'कल तुम्हारे प्रतिरोधक कर्मका क्षय हो जानेपर ही तुम्हें छुटकारा मिलेगा।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर विश्वकर्मा शीघ्र ही अमरावती लौट आये और ब्रह्माजी वैकुण्ठधाममें गये। वहाँ उन्होंने अपने माता-पिता श्रीहरिको प्रणाम करके उनसे सारी बातें कहीं। तब श्रीहरिने ब्रह्माजीको धैर्य देकर अपने घरको लौटाया और स्वयं ब्राह्मणका रूप धारण करके वे अमरावतीपुरीमें आये। ब्राह्मणकी अवस्था बहुत छोटी थी। शरीर भी अधिक नाटा था। उन्होंने दण्ड और छत्र धारण कर रखे थे। शरीरपर श्वेत वस्त्र और ललाटमें उज्ज्वल तिलकसे वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। मुस्कराते समय उनकी श्वेत दन्तावली चमक उठती थी। अवस्थामें छोटे होनेपर भी

वे ज्ञान और बुद्धिमें बढ़े-चढ़े थे। विद्वान् तो थे ही, स्वयं विधाताके भी विधाता तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता थे। इन्द्रके द्वारपर खड़े हो वे द्वारपालसे बोले—'द्वाररक्षक! तुम इन्द्रसे जाकर कहो कि द्वारपर एक ब्राह्मण खड़े हैं, जो आपसे शीघ्र मिलनेके लिये आये हैं।' द्वारपालने उनकी बात सुनकर इन्द्रको सूचना दी और इन्द्र शीघ्र आकर उन ब्राह्मणकुमारसे मिले। हँसते हुए बालक और बालिकाओंके समूह उन्हें घेरकर खड़े थे। वे बड़े उत्साहसे मुस्करा रहे थे और उनका स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी जान पड़ता था। इन्द्रने उन शिशुरूपधारी हरिको भक्तिभावसे प्रणाम किया और भक्तवत्सल श्रीहरिने प्रेमपूर्वक उन्हें आशीर्वाद दिया। इन्द्रने मधुपर्क आदि देकर उनकी पूजा की और ब्राह्मणबालकसे पूछा—'कहिये, किसलिये आपका शुभागमन हुआ है?' इन्द्रका वचन सुनकर ब्राह्मणबालकने जो बृहस्पतिके गुरुके भी गुरु थे, मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

**ब्राह्मण बोले**—देवेन्द्र! मैंने सुना है कि तुम बड़े विचित्र और अद्भुत नगरका निर्माण करा रहे हो; अतः इस नगरको देखने तथा इसके विषयमें मनोवाञ्छित बातें पूछनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। कितने वर्षोंतक इसका निर्माण कराते रहनेके लिये तुमने संकल्प किया है? अथवा विश्वकर्मा कितने वर्षोंमें इसका निर्माणकार्य पूर्ण कर देंगे? ऐसा निर्माण तो किसी भी इन्द्रने नहीं किया था। ऐसे सुन्दर नगरके निर्माणमें दूसरा कोई विश्वकर्मा भी समर्थ नहीं है।

ब्राह्मणबालककी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र हँसने लगे। वे सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाले हो रहे थे; अतः उन्होंने उस द्विजकुमारसे पुनः पूछा—'ब्रह्मन्! आपने कितने इन्द्रोंका समूह देखा अथवा सुना है? तथा कितने प्रकारके विश्वकर्मा आपके देखने या सुननेमें आये हैं? यह मुझे इस समय बताइये।' इन्द्रका यह प्रश्न सुनकर ब्राह्मणकुमार हँसे और अमृतके समान मधुर एवं श्रवणसुखद वचन बोले।

**ब्राह्मणने कहा**—तात! मैं तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यपको जानता हूँ। उनके पिता तपोनिधि मरीचिमुनिसे भी परिचित हूँ। मरीचिके पिता देवेश्वर ब्रह्माजीको भी, जो भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, जानता हूँ और उनके रक्षक सत्त्वगुणशाली महाविष्णुका भी परिचय रखता हूँ। मुझे उस एकार्णव प्रलयका भी ज्ञान है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंसे शून्य एवं भयानक दिखायी देता है। इन्द्र! निश्चय ही सृष्टि कई प्रकारकी है। कल्प भी अनेक हैं तथा ब्रह्माण्ड भी कितने ही प्रकारके हैं। उन ब्रह्माण्डोंमें अनेकानेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र भी बहुतेरे हैं। उन सबकी गणना कौन कर सकता है? सुरेश्वर! भूतलके धूलिकणोंकी गणना कर ली जाय तो भी इन्द्रोंकी गणना नहीं हो सकती है; ऐसा विद्वानोंका मत है। इन्द्रकी आयु और अधिकार इकहत्तर चतुर्युगतक है। अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन हो जानेपर विधाताका एक दिन-रात पूरा होता है। इस तरह एक सौ आठ वर्षोंतक ब्रह्माजीकी सम्पूर्ण आयु है। जहाँ विधाताकी भी संख्या नहीं है, वहाँ देवेन्द्रोंकी गणना क्या हो सकती है? जहाँ ब्रह्माण्डोंकी ही संख्या ज्ञात नहीं होती; वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी कहाँ गिनती है? महाविष्णुके रोमकूपजनित निर्मल जलमें ब्रह्माण्डकी स्थिति उसी तरह है, जैसे सांसारिक नदी-नद आदिके जलमें कृत्रिम नौका हुआ करती है। इस प्रकार महाविष्णुके शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने ब्रह्माण्ड हैं; अतएव ब्रह्माण्ड असंख्य कहे गये हैं। एक-एक ब्रह्माण्डमें तुम्हारे-जैसे कितने ही देवता निवास करते हैं।

इसी बीचमें पुरुषोत्तम श्रीहरिने वहाँ चींटोंके समूहको देखा, जो सौ धनुषकी दूरीतक फैला

हुआ था। बारी-बारीसे उन सबकी ओर देखकर वे ब्राह्मणबालकका रूप धरकर पधारे हुए भगवान् उच्चस्वरसे हँसने लगे। किंतु कुछ बोले नहीं। मौन रह गये। उनका हृदय समुद्रके समान गम्भीर था। ब्राह्मण-वटुककी गाथा सुनकर और उनका अट्टहास देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर उनके विनयपूर्वक पूछनेपर ब्राह्मणरूपधारी जनार्दनने भाषण देना आरम्भ किया।

**ब्राह्मण बोले**—इन्द्र! मैंने क्रमशः एक-एक करके चींटोंके समुदायकी सृष्टि की है। वे सब चींटे अपने कर्मसे देवलोकमें इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हो चुके थे; परंतु इस समय वे सब अपने कर्मानुसार क्रमशः भिन्न-भिन्न जीवयोनियोंमें जन्म लेते हुए चींटोंकी जातिमें उत्पन्न हुए हैं। कर्मसे ही जीव निरामय वैकुण्ठधाममें जाते हैं, कर्मसे ब्रह्मलोकमें और कर्मसे ही शिवलोकमें पहुँचते हैं। अपने कर्मसे ही वे स्वर्गमें तथा स्वर्गतुल्य स्थान पातालमें भी प्रवेश करते हैं। कर्मसे ही अपने लिये दुःखके एकमात्र कारण घोर नरकमें गिरते हैं। कर्मसूत्रसे ही विधाता जीवधारियोंको फल देते हैं। कर्म स्वभावसाध्य है और स्वभाव अभ्यासजन्य। देवेन्द्र! चराचर प्राणियोंसहित समस्त संसार स्वप्नके समान मिथ्या है। यहाँ कालयोगसे सबकी मौत सदा सिरपर सवार रहती है। जीवधारियोंके शुभ और अशुभ सब कुछ पानीके बुलबुलेके समान हैं। इन्द्र! विद्वान् पुरुष इसमें सदा विचरता है; परंतु कहीं भी आसक्त नहीं होता।

यों कहकर ब्राह्मणदेवता वहाँ मुस्कराते हुए बैठे रहे। उनकी बात सुनकर देवेश्वर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने-आपको अब अधिक महत्त्व नहीं दे रहे थे। इसी बीच एक मुनीश्वर वहाँ शीघ्रतापूर्वक आये जो ज्ञान और अवस्था दोनोंमें बड़े थे। उनका शरीर अत्यन्त वृद्ध था। वे महान् योगी जान पड़ते थे। वे कटिमें कृष्ण-मृगचर्म, मस्तकपर जटा, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, वक्षःस्थलमें रोमचक्र तथा सिरपर चटाई धारण किये हुए थे। उनका सारा रोममण्डल विद्यमान था; केवल बीचमें कुछ रोम उखाड़े गये थे। वे मुनि ब्राह्मणबालक तथा इन्द्रके बीचमें आकर ठूँठे काठकी भाँति खड़े हो गये। महेन्द्रने ब्राह्मणको देखकर सहर्ष प्रणाम किया और मधुपर्क देकर भक्तिभावसे उनकी पूजा की। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणसे कुशल-मङ्गल पूछा और सादर एवं सानन्द आतिथ्य करके उन्हें संतुष्ट किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणबालकने उनके साथ बातचीत की और विनयपूर्वक अपना सारा मनोभाव प्रकट किया।

**बालकने कहा**—विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं? और आपका नाम क्या है? यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है? तथा आप कहाँके रहनेवाले हैं? आपने मस्तकपर चटाई किसलिये धारण कर रखी है? मुने! आपके वक्षःस्थलमें रोमचक्र कैसा है? यह बहुत बढ़ा हुआ है; किंतु बीचमेंसे कुछ रोम क्यों उखाड़ लिये गये हैं? ब्रह्मन्! यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो सब विस्तारपूर्वक कहिये। इन सब अद्भुत बातोंको सुननेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा है।

ब्राह्मणबालककी यह बात सुनकर वे महामुनि इन्द्रके सामने प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा वृत्तान्त बताने लगे।

**मुनि बोले**—ब्रह्मन्! आयु बहुत थोड़ी होनेके कारण मैंने कहीं भी रहनेके लिये घर नहीं बनाया है; विवाह भी नहीं किया है और जीविकाका साधन भी नहीं जुटाया है। आजकल भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करता हूँ। मेरा नाम लोमश है। आप-जैसे ब्राह्मणका दर्शन ही यहाँ मेरे आगमनका प्रयोजन है। मेरे सिरपर जो चटाई है, वह वर्षा और धूपका निवारण करनेके लिये है। मेरे वक्षःस्थलमें जो रोमचक्र है, उसका भी

कारण सुनिये, जो सांसारिक जीवोंको भय देनेवाला और उत्तम विवेकको उत्पन्न करनेवाला है। मेरे वक्षःस्थलका यह रोममण्डल ही मेरी आयुकी संख्याका प्रमाण है। ब्रह्मन्! जब एक इन्द्रका पतन हो जाता है, तब मेरे इस रोमचक्रका एक रोम उखाड़ दिया जाता है। इसी कारणसे बीचके बहुत-से रोएँ उखाड़ दिये गये हैं; तथापि अभी बहुत-से विद्यमान हैं। ब्रह्माका दूसरा परार्द्ध पूर्ण होनेपर मेरी मृत्यु बतायी गयी है। विप्रवर! असंख्य विधाता मर चुके हैं और मरेंगे। फिर इस छोटी-सी आयुके लिये स्त्री, पुत्र और घरकी क्या आवश्यकता है? ब्रह्माजीका पतन हो जानेपर भगवान् श्रीहरिकी एक पलक गिरती है; अतः मैं निरन्तर उन्हींके चरणारविन्दोंका दर्शन करता रहता हूँ। श्रीहरिका दास्यभाव दुर्लभ है। भक्तिका गौरव मुक्तिसे भी बढ़कर है। सारा ऐश्वर्य स्वप्नके समान मिथ्या और भगवान्‌की भक्तिमें व्यवधान डालनेवाला है। यह उत्तम ज्ञान मेरे गुरु भगवान् शंकरने दिया है; अतः मैं भक्तिके बिना सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी नहीं ग्रहण करना चाहता हूँ।

ऐसे कहकर वे मुनि भगवान् शंकरके समीप चले गये और बालकरूपधारी श्रीहरि भी वहीं अन्तर्धान हो गये। इन्द्र स्वप्नकी भाँति यह घटना देखकर बड़े विस्मित हुए। अब उन परमेश्वरके मनमें सम्पत्तिके लिये तृष्णा नहीं रह गयी! उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर उनसे मीठी-मीठी बातें कीं तथा रत्न देकर पूजन करनेके पश्चात् उन्हें घर जानेकी आज्ञा दी। फिर सब कुछ अपने पुत्रको सौंपकर वे भगवान्‌की शरणमें जानेको उद्यत हो गये। उनका विवेक जाग उठा था; अतः वे शची तथा राजलक्ष्मीको त्यागकर प्रारब्ध-क्षयकी कामना करने लगे। अपने प्राणवल्लभको विवेक एवं वैराग्यसे युक्त हुआ देख शचीका हृदय व्यथित हो उठा। वे शोकसे व्याकुल एवं भयभीत हो गुरुकी शरणमें गयीं। वहाँ सब कुछ निवेदन करके बृहस्पतिजीको बुलाकर इन्द्रको नीतिके सार-तत्त्वका उपदेश कराया। गुरु बृहस्पतिने दाम्पत्य-प्रेमसे युक्त शास्त्रविशेषकी रचना करके स्वयं प्रेमपूर्वक उन्हें पढ़ाया। बृहस्पतिजीने उस शास्त्र-विशेषका भाव इन्द्रको भलीभाँति समझा दिया। वृन्दावनविनोदिनि! तब इन्द्र पूर्ववत् राज्य करने लगे। सुरेश्वरि! इस प्रकार मैंने इन्द्रके अभिमान-भङ्गका सारा प्रसङ्ग कह सुनाया। पिता नन्दके यज्ञमें जो इन्द्रके दर्पका दलन हुआ था, उसे तो तुमने अपनी आँखों देखा ही था। (अध्याय ४७)

## सूर्य और अग्निके दर्प-भङ्गकी कथा

**राधिका बोलीं**—भगवन्! आपने इन्द्रके दर्प-भङ्गका प्रसङ्ग मुझसे कहा। अब मैं सूर्यदेवके गर्वगञ्जनकी बात यथार्थरूपसे सुनना चाहती हूँ।

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—सुन्दरि! सूर्य एक ही बार उदय लेकर फिर अस्त हो गये, परंतु माली और सुमाली नामक दो दैत्यराज सूर्यास्त हो जानेके बाद भी वैसा ही प्रकाश बनाये रखनेके लिये उद्यत हुए। भगवान् शंकरके वरसे महान् ऐश्वर्य पाकर वे दोनों दैत्य मदसे उन्मत्त हो गये थे। उनकी प्रभासे रात्रि नहीं होने पाती थी। (रातके समय भी दिनका-सा प्रकाश छाया रहता था।) यह देख सूर्यदेव रुष्ट हो गये और उन्होंने अपने शूलसे अवहेलनापूर्वक उन दोनों दैत्योंको मारा। सूर्यके शूलसे आहत हो वे दोनों दैत्य मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भक्तोंका विनाश हुआ जान भक्तवत्सल शंकर आये और उन्होंने अपने महान् ज्ञानद्वारा उन दोनोंको जीवन-दान दिया। तब वे दोनों दैत्य भगवान् शिवको

भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने घरको चले गये। इधर महादेवजी रोषसे आगबबूला हो उठे और सूर्यको मारनेके लिये दौड़े। संहारकर्ता हर मेरा विनाश करनेके लिये चले आ रहे हैं, यह देख सूर्यदेव भयसे भागते हुए तत्काल ब्रह्माजीकी शरणमें गये। तब महादेवजीने रोषसे शूल उठाकर ब्रह्माजीके भवनपर धावा किया। भगवान् शिव कालके भी काल और विधाताके भी विधाता हैं। उन परमेश्वर हरको रुष्ट हुआ देख लोकनाथ ब्रह्मा चारों मुखोंसे वेदोक्त स्तोत्र पढ़ते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

**ब्रह्माजी बोले**—दक्ष-यज्ञ-विनाशक शिव! सूर्यदेव मेरी शरणमें आये हैं; अतः आप इनपर कृपा कीजिये। जगद्गुरो! सृष्टिके आरम्भमें आपने ही सूर्यकी सृष्टि की है। महाभाग आशुतोष! भक्तवत्सल! प्रसन्न होइये। कृपासिन्धो! कृपापूर्वक दिन और रातकी रक्षा कीजिये। ब्रह्मस्वरूप भगवन्! आप जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। क्या स्वयं ही सूर्यका निर्माण करके स्वयं ही इनका संहार करना चाहते हैं? आप स्वयं ही ब्रह्मा, शेषनाग, धर्म, सूर्य और अग्नि हैं। परात्पर परमेश्वर! चन्द्र और इन्द्र आदि देवता आपसे भयभीत रहते हैं। ऋषि और मुनि आपकी ही आराधना करके तपस्याके धनी हुए हैं। आप ही तप हैं, आप ही तपस्याके फल हैं और आप ही तपस्याओंके फलदाता हैं।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सूर्यको ले आये और भक्ति तथा प्रीतिके साथ दीनवत्सल शंकरको उन्हें सौंप दिया। भगवान् शिवका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन जगत्-विधाताने सूर्यको आशीर्वाद देकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया और बड़े हर्षके साथ अपने धामको प्रस्थान किया।

जो मनुष्य संकटकालमें ब्रह्माजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह भयभीत हो तो भयसे और बँधा हो तो बन्धनसे मुक्त हो जाता है। राजद्वारपर, श्मशान-भूमिमें और महासागरमें जहाज टूट जानेपर इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मनुष्य संकटमुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है।

**श्रीकृष्ण कहते हैं**—तदनन्तर सूर्यदेव ब्रह्माजीको प्रणाम करके प्रसन्न हुए और उनकी आज्ञासे अभिमान छोड़ प्रेमपूर्वक विनयपूर्ण बर्ताव करने लगे। अब अग्निके मानभङ्गका उपाख्यान सुनो। यह उत्तम प्रसङ्ग पुराणोंमें गोपनीय है और कानोंमें अमृतके समान मधुर प्रतीत होता है। एक समयकी बात है। अग्निदेव सौ ताड़ोंके बराबर ऊँची और भयंकर लपटें उठाकर तीनों लोकोंको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। महर्षि भृगुने उन्हें शाप दिया था; इसलिये वे क्षोभ और क्रोधसे भरे थे। अपनेको तेजस्वी और दूसरोंको तुच्छ मानकर वे त्रिलोकीको भस्म करना चाहते थे। इसी बीचमें मायासे शिशुरूपधारी जनार्दन भगवान् विष्णु लीलापूर्वक वहाँ आ पहुँचे और सामने खड़े हो अग्निकी उस दाहिका शक्तिको उन्होंने हर लिया। तत्पश्चात् मन्द-मन्द मुस्कराते हुए भक्तिसे मस्तक झुका वे विनयपूर्वक बोले।

**शिशुने कहा**—भगवन्! आप क्यों रुष्ट हैं? इसका कारण मुझे बताइये। व्यर्थ ही आप तीनों लोकोंको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए हैं? भृगुजीने आपको शाप दिया है; अतः आप उनका ही दमन कीजिये। एकके अपराधसे तीनों लोकोंको भस्म कर डालना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। ब्रह्माजीने इस विश्वकी सृष्टि की है, साक्षात् श्रीहरि इसके पालक हैं और भगवान् रुद्र संहारक। ऐसा ही क्रम है। जगदीश्वर शंकरके रहते हुए आप स्वयं जगत्को भस्म करनेके लिये क्यों उद्यत हुए हैं? पहले जगत्का पालन करनेवाले भगवान् विष्णुको जीतिये। उसके बाद इसका शीघ्रतापूर्वक संहार कीजिये।

ऐसा कहकर ब्राह्मणबालकने सामने पड़े हुए सरकंडेके एक पत्तेको, जो बहुत ही सूखा हुआ था, हाथमें उठा लिया और उसे जलानेके लिये अग्निको दिया। सूखा ईंधन देख अग्निदेव

भयानकरूपसे जीभ लपलपाने लगे। उन्होंने अपनी लपटोंमें ब्राह्मणबालकको उसी तरह लपेट लिया, जैसे मेघोंकी घटासे चन्द्रमा छिप जाता है; परंतु उस समय न तो वह सूखा पत्ता जला और न उस शिशुका एक बाल भी बाँका हुआ। यह देख अग्निदेव उस बालकके सामने लज्जासे ठिठक गये। अग्निदेवका दर्प भङ्ग करके वह शिशु वहीं अन्तर्धान हो गया तथा अग्निदेव अपनी मूर्तिको समेटकर डरे हुएकी भाँति अपने स्थानको चले गये।

इसी तरह राजा अम्बरीषके यहाँ महर्षि दुर्वासाके दर्पका दलन हुआ था। (वह कथा पहले आ चुकी है।)

**राधिका बोलीं**—जगद्गुरो! अब धन्वन्तरिके दर्पभङ्गकी कथा सुनाइये।

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! राधिकाका यह वचन सुनकर भगवान् मधुसूदन हँसे और उन्होंने उस श्रवणसुखद प्राचीन कथाको सुनाना आरम्भ किया।

(अध्याय ४८—५०)

## धन्वन्तरिके दर्प-भङ्गकी कथा, उनके द्वारा मनसादेवीका स्तवन

**भगवान् श्रीकृष्णने कहा**—भगवान् धन्वन्तरि स्वयं महान् पुरुष हैं और साक्षात् नारायणके अंशस्वरूप हैं। पूर्वकालमें जब समुद्रका मन्थन हो रहा था, उस समय महासागरसे उनका प्रादुर्भाव हुआ। वे सम्पूर्ण वेदोंमें निष्णात तथा मन्त्र-तन्त्रविशारद हैं, विनतानन्दन गरुड़के शिष्य और भगवान् शंकरके उपशिष्य हैं। एक दिन वे सहस्रों शिष्योंसे घिरे हुए कैलास पर्वतपर आये। मार्गमें उन्हें भयानक तक्षक दिखायी दिया, जो जीभ लपलपा रहा था। भयानक विषसे भरा हुआ वह पर्वताकार नाग लाखों नागोंसे घिरा हुआ था और धन्वन्तरिको क्रोधपूर्वक काट खानेके लिये आगे बढ़ रहा था। यह देख धन्वन्तरिका शिष्य दम्भी हँसने लगा। उसने भयानक तक्षकको मन्त्रसे जृम्भित करके विषहीन बना दिया और उसके मस्तकमें विद्यमान बहुमूल्य मणिरत्नको हर लिया। इतना ही नहीं, उसने तक्षकको हाथसे घुमाकर दूर फेंक दिया। तक्षक उस मार्गमें मृतककी भाँति निश्चेष्ट पड़ गया। यह देख उसके गणोंने वासुकिके पास जाकर सब समाचार निवेदन किया। उसे सुनकर वासुकि अत्यन्त क्रोधसे जल उठे। उन्होंने भयानक विषवाले असंख्य सर्पोंको वहाँ भेजा। समस्त सेनापतियोंमें पाँच मुख्य थे—द्रोण, कालिय, कर्कोटक, पुण्डरीक और धनञ्जय। ये सब नाग उस स्थानपर आये, जहाँ धन्वन्तरि विराजमान

थे। उन असंख्य नागोंको देखकर धन्वन्तरिके शिष्योंको बड़ा भय हुआ। वे सब शिष्य नागोंके निःश्वास-वायुसे मृतक-तुल्य हो गये और निश्चेष्ट तथा ज्ञानशून्य हो पृथ्वीपर पड़ गये। भगवान् धन्वन्तरिने गुरुका स्मरण करते हुए मन्त्रका पाठ और अमृतकी वर्षा करके सब शिष्योंको जीवित कर दिया। उनमें चेतना उत्पन्न करके जगद्गुरु धन्वन्तरिने मन्त्रोंद्वारा भयानक विषवाले सर्पसमूहको जृम्भित कर दिया। फिर तो वे सब-के-सब ऐसे निश्चेष्ट हुए, मानो मर गये हों। उन नागगणोंमें कोई ऐसा भी नहीं रह गया, जो नागराजको समाचार दे सके; परंतु नागराज वासुकि सर्वज्ञ हैं, उन्होंने सर्पोंके उन समस्त संकटको जान लिया और अपनी ज्ञानरूपिणी बहिन जगद्गौरी मनसा (या जरत्कारु)-को बुलाया।

**वासुकिने उससे कहा**—मनसे! तुम जाओ और अत्यन्त संकटसे नागोंकी रक्षा करो। महाभागे! ऐसा करनेपर तुम्हारी तीनों लोकोंमें पूजा होगी।

वासुकिकी बात सुनकर वह नागकन्या हँस पड़ी और विनीत भावसे खड़ी हो अमृतके समान मधुर वचन बोली।

**मनसाने कहा**—नागराज! मेरी बात सुनिये। मैं युद्धके लिये जाऊँगी। शुभ और अशुभ (जीत और हार) तो दैवके हाथमें है; परंतु मैं यथोचित कर्तव्यका पालन करूँगी। समराङ्गणमें लीलापूर्वक उस शत्रुका संहार कर डालूँगी। जिसे मैं मार दूँगी, उसकी रक्षा कौन कर सकता है? मेरे बड़े भाई और गुरु भगवान् शेषने मुझे जगदीश्वर नारायणका परम अद्भुत सिद्ध मन्त्र प्रदान किया है। मैं अपने कण्ठमें 'त्रैलोक्य-मङ्गल' नामक उत्तम कवच धारण करती हूँ; अतः संसारको भस्म करके पुनः उसकी सृष्टि करनेमें समर्थ हूँ। मन्त्रशास्त्रोंमें मैं भगवान् शंकरकी शिष्या हूँ। पूर्वकालमें भगवान् शिवने कृपापूर्वक मुझे महान् ज्ञान दिया था।

ऐसा कहकर श्रीहरि, शिव तथा शेषनागको प्रणाम करके मनमें हर्ष और उत्साह लिये मनसा अन्य नागोंको वहीं छोड़ अकेली ही रोषपूर्वक उस स्थानको गयी। उस समय मनसादेवीकी आँखें रोषसे लाल हो रही थीं। वह उस स्थानपर आयी, जहाँ प्रसन्नमुख और नेत्रवाले धन्वन्तरिदेव विराजमान थे। सुन्दरी मनसाने दृष्टिमात्रसे ही सम्पूर्ण सर्पोंको जीवित कर दिया और अपनी विषपूर्ण दृष्टि डालकर शत्रुके शिष्योंको चेष्टाशून्य बना दिया। भगवान् धन्वन्तरि मन्त्र-शास्त्रके ज्ञानमें निपुण थे। उन्होंने मन्त्रद्वारा शिष्योंको उठानेका यत्न किया, परंतु वे सफल न हो सके। तब मनसादेवीने धन्वन्तरिकी ओर देख हँसकर अहंकारभरी बात कही।

**मनसा बोली**—सिद्धपुरुष! बताओ तो सही, क्या तुम मन्त्रका अर्थ, मन्त्रशिल्प, मन्त्रभेद और महान् ओषधका ज्ञान रखते हो? गरुड़के शिष्य हो न? मैं और गरुड़ दोनों भगवान् शंकरके विख्यात शिष्य हैं और दीर्घकालतक गुरुके पास शिक्षा लेते रहे हैं।

यों कहकर जगदम्बा मनसा सरोवरसे कमल ले आयी और उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके क्रोधपूर्वक धन्वन्तरिकी ओर चलाया। प्रज्वलित अग्निशिखाके समान जलते हुए उस कमल-पुष्पको आते देख धन्वन्तरिने निःश्वासमात्रसे उसको भस्म कर दिया। तत्पश्चात् मन्त्रसे अभिमन्त्रित एक मुट्ठी धूल लेकर उसके द्वारा उन्होंने उस भस्मको भी निष्फल कर दिया। फिर वे अवहेलनापूर्वक हँसने लगे। तब मनसादेवीने ग्रीष्मकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाली शक्ति हाथमें ले ली और उसे मन्त्रसे आवेष्टित करके शत्रुकी ओर चला दिया। उस जाज्वल्यमान शक्तिको आते देख धन्वन्तरिने भगवान् विष्णुके दिये हुए शूलसे अनायास ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। शक्तिको भी व्यर्थ हुई देख देवी मनसा

रोषसे जल उठी। अब उसने कभी व्यर्थ न जानेवाले दुःसह एवं भयंकर नागपाशको हाथमें लिया, जो एक लाख नागोंसे युक्त, सिद्धमन्त्रसे अभिमन्त्रित तथा काल और अन्तकके समान तेजस्वी था। उसने क्रोधपूर्वक उस नागपाशको चलाया। नागपाशको देखकर धन्वन्तरि प्रसन्नतासे मुस्करा उठे; उन्होंने तत्काल गरुड़का स्मरण किया और पक्षिराज गरुड़ वहाँ आ पहुँचे। नागास्त्रको आया देख दीर्घकालके भूखे हुए हरिवाहन गरुड़ने चोंचसे मार-मारकर सब नागोंको अपना आहार बना लिया। प्रिये! नागास्त्रको निष्फल हुआ देख मनसाके नेत्र रोषसे लाल हो उठे। उसने एक मुट्ठी भस्म उठाया, जिसे पूर्वकालमें भगवान् शिवने दिया था। मन्त्रसे पवित्र किये गये उस मुट्ठीभर भस्मको चलाया गया देख गरुड़ने शिष्य धन्वन्तरिको पीछे करके अपने पंखकी हवासे वह सारा भस्म बिखेर दिया। यह देख देवी मनसाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने धन्वन्तरिका वध करनेके लिये स्वयं अमोघ शूल हाथमें लिया। उस शूलको भी भगवान् शिवने ही दिया था। उससे सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभा फैल रही थी। वह अमोघ शूल तीनों लोकोंमें प्रलयाग्निके समान प्रकाशित होता था। इसी समय ब्रह्मा और शिव धन्वन्तरिकी रक्षा तथा गरुड़के सम्मानके लिये उस समराङ्गणमें आये। भगवान् शम्भु तथा जगदीश्वर ब्रह्माको उपस्थित देख मनसाने भक्तिभावसे उन दोनोंको नमस्कार किया। उस समय भी वह निःशङ्क-भावसे शूल धारण किये रही। धन्वन्तरि तथा गरुड़ने भी उन दोनों देवेश्वरोंको मस्तक झुकाया और बड़ी भक्तिसे उनकी स्तुति की। उन दोनोंने भी इन दोनोंको आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् लोकहितकी कामनासे मनसादेवीकी पूजाका प्रचार करनेके लिये ब्रह्माजीने धन्वन्तरिसे मधुर एवं हितकर वचन कहा।

**ब्रह्माजी बोले**—सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् महाभाग धन्वन्तरे! मनसादेवीके साथ तुम्हारा युद्ध हो, यह मुझे उचित नहीं जान पड़ता। इसके साथ तुम्हारी कोई समता ही नहीं है। यह देवेश्वरी मनसा शिवके दिये हुए अमोघ शूलसे तीनों लोकोंको जलाकर भस्म करनेकी शक्ति रखती है। कौथुम-शाखामें वर्णित ध्यानके अनुसार मनसादेवीका भक्तिभावसे ध्यान करके एकाग्रचित्त हो षोडशोपचार अर्पित करते हुए इसकी पूजा करो। फिर आस्तीकमुनिद्वारा किये गये स्तोत्रसे तुम्हें इसकी स्तुति करनी चाहिये। इससे संतुष्ट हो मनसादेवी तुम्हें वर प्रदान करेगी।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर शिवजीने भी उसका अनुमोदन किया। फिर गरुड़ने प्रेमसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें समझाया। इन सबकी बात सुनकर स्नानसे शुद्ध हो वस्त्र और आभूषण धारण करके धन्वन्तरि ब्रह्माजीको पुरोहित बना मनसाकी पूजा करनेको उद्यत हुए।

**धन्वन्तरि बोले**—जगद्गौरी मनसे! यहाँ आओ और मेरी पूजा ग्रहण करो। कश्यपनन्दिनि! पहलेसे ही तीनों लोकोंमें तुम्हारी पूजा होती आयी है। देवि! तुम विष्णुस्वरूपा हो। तुमने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया है; इसीलिये रणभूमिमें अस्त्र-प्रयोग नहीं किया है।

ऐसा कहकर संयत हो भक्तिसे मस्तक झुका हाथमें श्वेत पुष्प ले वे ध्यान करनेको उद्यत हुए।

### ध्यान

मनसादेवीकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान गौर है। उनके सभी अङ्ग मनको मोह लेनेवाले हैं। प्रसन्नमुखपर मन्द हासकी छटा छा रही है। महीन वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परम सुन्दर केशोंकी वेणी अद्भुत शोभासे सम्पन्न है। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। सबको अभय देनेवाली वे देवी भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर देखी जाती हैं। सम्पूर्ण विद्याओंकी देनेवाली, शान्तस्वरूपा, सर्वविद्याविशारदा,

नागेन्द्रवाहना और नागोंकी स्वामिनी हैं; उन परा देवी मनसाका मैं भजन करता हूँ।

प्रिये! इस प्रकार ध्यानकर पुष्प दे नाना द्रव्योंसे युक्त षोडशोपचार चढ़ाकर धन्वन्तरिने उनका पूजन किया। तत्पश्चात् पुलकित-शरीर हो भक्तिसे मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़ उन्होंने यत्नपूर्वक मनसादेवीकी स्तुति की।

**धन्वन्तरि बोले**—सिद्धिस्वरूपा मनसादेवीको नमस्कार है। उन सिद्धिदायिनी देवीको बारंबार मेरा प्रणाम है। वरदायिनी कश्यपकन्याको नमस्कार, नमस्कार और पुनः नमस्कार। कल्याणकारिणी शंकर-कन्याको बारंबार नमस्कार। तुम नागोंपर सवार होनेवाली नागेश्वरी हो। तुम्हें नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार। तुम आस्तीककी माता और जगज्जननी हो; तुम्हें मेरा नमस्कार है। जगत्की कारणभूता जरत्कारुको नमस्कार है। जरत्कारु मुनिकी पत्नीको नमस्कार है। नागभगिनीको नमस्कार है। योगिनीको बारंबार नमस्कार है। चिरकालतक तपस्या करनेवाली सुखदायिनी मनसादेवीको बारंबार नमस्कार है। तपस्यारूपा देवीको नमस्कार है। फलदायिनी मनसादेवीको नमस्कार है। साध्वी, सुशीला एवं शान्तस्वरूपा देवीको बारंबार नमस्कार है।

ऐसा कहकर धन्वन्तरिने भक्तिभावसे यत्नपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। उस स्तुतिसे संतुष्ट हुई देवी मनसा धन्वन्तरिको वर देकर शीघ्र ही अपने घरको चली गयी। ब्रह्मा, रुद्र और गरुड़ भी अपने-अपने धामको चले गये। भगवान् धन्वन्तरि भी अपने भवनको पधारे। फणोंसे सुशोभित नागगण प्रसन्नतापूर्वक पातालको चले गये। प्रिये! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण स्तवराज तुमसे कहा है। आस्तीकने विधिपूर्वक माताकी भक्ति की। इससे वह जगद्गौरी अपने पुत्र मुनिवर आस्तीकपर बहुत संतुष्ट हुई। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है; उसके वंशजोंको नागोंसे भय नहीं होता, इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ५१)

## श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेसे श्रीराधा और गोपियोंका दुःखसे रोदन, चन्दनवनमें श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन देना, गोपियोंके प्रणय-कोपजनित उद्गार, श्रीकृष्णका उनके साथ विहार, श्रीराधा नामके प्रथम उच्चारणका कारण, श्रीकृष्णद्वारा श्रीराधाका शृङ्गार, गोपियोंद्वारा उनकी सेवा और श्रीकृष्णके मथुरागमनसे लेकर परमधाम-गमनतककी लीलाओंका संक्षिप्त परिचय

**श्रीकृष्णने कहा**—प्रिये! मैंने छोटे-बड़े सभी लोगोंके दर्प-भङ्गकी कहानी कही और तुमने सुनी। इसमें संदेह नहीं कि उन सबका अभिमान भङ्ग किया ही गया था। अब उठो और वृन्दावनमें चलो। सुन्दरि! अब मैं विरहसे पीड़ित हुई गोपिकाओंको शीघ्र देखना चाहता हूँ।

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! श्यामसुन्दरकी यह बात सुनकर मानिनी रसिकेश्वरी राधाने उनसे कहा—'प्राणेश्वर! मैं चलनेमें असमर्थ हो गयी हूँ; अतः तुम्हीं मुझे ले चलो।' राधाकी यह बात सुन मधुसूदन हँसकर बोले—'तब मुझपर ही सवार हो जाओ।' ऐसा कह वे तत्काल अदृश्य हो गये। राधा मनकी गतिसे चलनेवाली थीं। वे क्षणभर वहाँ रोती रहीं; फिर इधर-उधर श्यामसुन्दरको ढूँढ़ती हुई वृन्दावनमें जा पहुँचीं। शोकसे कातर हुई राधाने रोते-रोते चन्दनवनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने शोकाकुल गोपियोंको देखा, जो भयसे विह्वल थीं। उनके मुँह लाल हो गये थे।

आँखें इधर-उधर घूरती थीं। वे सम्पूर्ण वनमें भ्रमण करतीं और 'हा नाथ! हा नाथ!' पुकारती हुई बिना खाये-पीये रह रही थीं। उनके मनमें बड़ा रोष था। प्रेमविच्छेदसे कातर राधिकाने उन सबको देखकर उनसे मलयवनमें भ्रमण आदिका अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर वे उन सबके साथ रोदन करने लगीं। विरहसे आतुर हो 'हा नाथ! हा नाथ!' का उच्चारण करके बारंबार विलाप करती हुई सब गोपियाँ कुपित हो अपने शरीरका त्याग कर देनेको उद्यत हो गयीं। इसी समय वहाँ चन्दनवनमें पधारकर श्रीकृष्णने राधा तथा गोपियोंको दर्शन दिये। प्राणेश्वरको आया देख गोपाङ्गनाओंसहित राधा आनन्दसे मुस्करायीं और पुलकित-शरीर हो उनकी ओर दौड़ीं। पास जाकर वे सब गोपाङ्गनाएँ प्रेमसे विह्वल हो रोने लगीं। फिर उन सबने श्रीकृष्णसे विरहजनित अपने सारे दुःखको निवेदन किया। दिन-रात स्नान और खाना-पीना छोड़कर वन-वनमें निरन्तर भटकते रहना तथा अन्तमें शरीरको त्याग देनेका विचार करना आदि सब बातें बताकर उन सबने क्षणभर उन्हें बहुत फटकारा। फिर वे एक क्षणतक प्रसन्नतासे उनके गुण गाती रहीं। इसके बाद कुछ देर उन्हें आभूषण पहनाती तथा चन्दन लगाती रहीं। कोई-कोई गोपियाँ बोलीं—'अरी सखि! देखो, श्यामसुन्दर हमारे प्राणोंके चोर हैं। इनकी निरन्तर रखवाली करो। ये कहीं जाने न पावें।' यह सुनकर दूसरी बोल उठी—'नहीं सखी! अब ये फिर ऐसा अपराध कभी नहीं करेंगे।' कोई कहने लगी—'अरी सखियो! इन्हें शीघ्र ही चारों ओरसे घेरकर बीचमें कर लो।' दूसरी बोली—'नहीं, नहीं सखी! इन्हें प्रेमपाशसे बाँधकर हृदय-मन्दिरमें कैद कर लो।' कोई बोली—'ये पुरुष हैं; इनपर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता।' अन्य बोल उठी—'इन चित्तचोरकी यत्नपूर्वक देखभाल करो।' कोई-कोई कुपित होकर कहने लगीं—'ये निष्ठुर हैं, नरघाती हैं।' कोई बोली—'अब फिर इनसे बात न करो।'

तदनन्तर जो-जो रमणीय और निर्जन वन थे, उन सबमें गोपियाँ श्रीकृष्णके साथ कौतूहलपूर्वक घूमती रहीं। इस तरह उन परमेश्वरको बीचमें करके वे सब गोपियाँ दूसरे वनमें गयीं, जहाँ सुरम्य रासमण्डल विद्यमान था। रासमण्डलमें जाकर रसिकशेखर श्रीकृष्ण स्वर्णसिंहासनपर विराजमान हुए। जैसे रातके समय आकाशमें तारागणोंके साथ चन्द्रमा शोभा पाते हैं; उसी प्रकार वे गोपियोंके साथ सुशोभित हो रहे थे। जनार्दनने अपनी अनेक मूर्तियाँ प्रकट करके गोपियोंके साथ पुनः रासक्रीड़ा की।

**नारदजीने पूछा**—भक्तजनोंके प्रियतम नारायण! विद्वान् पुरुष पहले 'राधा' शब्दका उच्चारण करके पीछे 'कृष्ण' का नाम लेते हैं, इसका क्या कारण है? यह मुझ भक्तको बताइये।

**श्रीनारायण बोले**—नारद! इसके तीन कारण हैं; बताता हूँ, सुनो! प्रकृति जगत्की माता हैं और पुरुष जगत्के पिता। त्रिभुवनजननी प्रकृतिका गौरव पितृस्वरूप पुरुषकी अपेक्षा सौगुना अधिक है। श्रुतिमें 'राधाकृष्ण', 'गौरीशंकर' इत्यादि शब्द ही सुना गया है। 'कृष्ण-राधा' 'शंकर-गौरी' इत्यादिका प्रयोग कभी लोकमें भी नहीं सुना गया है। 'हे रोहिणीचन्द्र! प्रसन्न होइये और इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये। संज्ञासहित सूर्यदेव! मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये। कमलाकान्त! प्रसन्न होइये और मेरी पूजा ग्रहण कीजिये।' इत्यादि मन्त्र सामवेदकी

कौथुमीशाखामें देखे गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! 'रा' शब्दके उच्चारणमात्रसे ही माधव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं और 'धा' शब्दका उच्चारण होनेपर तो अवश्य ही भक्तके पीछे वेगपूर्वक दौड़ पड़ते हैं। जो पहले पुरुषवाची शब्दका उच्चारण करके पीछे प्रकृतिका उच्चारण करता है, वह वेदकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेके कारण मातृहत्याके पापका भागी होता है। तीनों लोकोंमें पुण्यदायक कर्मक्षेत्र होनेके कारण भारतवर्ष धन्य है। उसमें भी श्रीराधाचरणारविन्दोंकी रेणुसे पवित्र हुआ वृन्दावन अतिशय धन्य है। राधाके चरणकमलोंकी पवित्र धूल प्राप्त करनेके लिये ब्रह्माजीने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी।

**नारदजीने पूछा**—पूर्णमासी बीत जानेपर जगदीश्वर श्रीकृष्णने क्या किया? उस समय उनकी कौन-सी रहस्यलीला हुई? यह बतानेकी कृपा करें।

**श्रीनारायणने कहा**—रासमण्डलमें रासलीला सम्पन्न करके स्वयं रासेश्वर श्यामसुन्दर रासेश्वरी राधाके साथ यमुनातटपर गये, वहाँ स्नान एवं निर्मल जलका पान करके उन्होंने कालिन्दीके स्वच्छ सलिलमें गोपाङ्गनाओंके साथ जलक्रीड़ा की। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाजीके साथ भाण्डीर वनमें चले गये। इधर प्रेमविह्वला गोपियाँ अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। उस समय श्यामसुन्दर श्रीराधाके साथ मालतीकानन, वासन्तीकानन, चन्दनकानन तथा चम्पककानन आदि मनोहर वनोंमें क्रीड़ा करते रहे। फिर पद्मवनमें रातको शयन किया। प्रातःकाल उन्होंने देखा, प्रियाजी फूलोंकी शय्यापर सो रही हैं। शरत्कालिक चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले उनके सुन्दर मुखपर पसीनेकी बूँदें दिखायी दे रही हैं। सिन्दूर लुप्त हो गया है, कज्जल मिट गया है, अधरोंकी लाली भी लुप्तप्राप्त हो गयी है और कपोलोंकी पत्र-रचना मिट गयी है। उनकी वेणी खुल गयी है, नेत्रकमल बंद हैं और रत्नोंके बने हुए दो बहुमूल्य कुण्डलोंसे उनके मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही है। दन्तपंक्तिसे सुशोभित मुख मानो गजमुक्तासे अलंकृत एवं उद्दीप्त है। प्रियाजीको इस अवस्थामें देख भक्तवत्सल माधवने अग्निशुद्ध महीन वस्त्रसे उनके मुखको बड़े प्रेम और भक्तिभावसे पोंछा। फिर केशोंको सँवारकर उनकी चोटी बाँध दी। उस चोटीमें माधवी और मालतीके फूलोंकी माला लगा दी, जिससे उसकी शोभा बहुत बढ़ गयी। वह चोटी रत्नयुक्त रेशमी डोरोंसे बँधी थी। उसकी आकृति सुन्दर, वक्र, मनोहर और अत्यन्त गोल थी। कुन्दके फूलोंसे भी उसका शृङ्गार किया गया था। वेणी बाँधनेके पश्चात् श्यामसुन्दरने प्रियाजीके भाल-देशमें सिन्दूरका तिलक लगाया। उसके नीचे उज्ज्वल चन्दनका शृङ्गार किया। फिर कस्तूरीकी बेंदीसे उनके ललाटकी शोभा बढ़ायी। तत्पश्चात् दोनों कपोलोंपर चित्र-विचित्र पत्र-रचना की। नेत्रकमलोंमें भक्तिभावसे काजल लगाया, जिससे उनका सौन्दर्य खिल उठा। फिर बड़े अनुरागसे राधाके अधरोंमें लाली लगायी। कानमें दो अत्यन्त निर्मल आभूषण पहनाये। गलेमें बहुमूल्य रत्नोंका हार पहनाया, जो उनके वक्षःस्थलको उद्भासित कर रहा था। वह हार मणियोंकी लड़ियोंसे प्रकाशित हो रहा था। तदनन्तर बहुमूल्य, दिव्य, अग्निशुद्ध तथा सब प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत वस्त्र पहनाया, जो कस्तूरी और कुंकुमसे अभिषिक्त था। दोनों चरणोंमें रत्ननिर्मित मञ्जीर पहनाये और पैरोंकी अँगुलियों एवं नखोंमें भक्तिभावसे महावर लगाया।

जो तीनों लोकोंके सत्पुरुषोंद्वारा सेव्य हैं; उन श्यामसुन्दरने अपनी सेव्यरूपा प्राणवल्लभाकी सेवा की। तदनन्तर सेवकोचित भक्तिसे श्वेत चँवर डुलाया। यह कैसी अद्भुत बात है। इसके बाद समस्त भावोंके जानकारोंमें श्रेष्ठ बोधकलाके ज्ञाता एवं विलास-शास्त्रके मर्मज्ञ श्रीहरिने अपनी प्राणवल्लभाको जगाया और अपने वक्षःस्थलमें उनके लिये स्थान दिया।

इस प्रकार श्रीराधाको जगाकर श्रीकृष्णने उन्हें भाँति-भाँतिके पुष्पमाला, आभूषण तथा कौस्तुभमणि आदिके द्वारा सुसज्जित किया। रत्नपात्रमें भोजन और जल प्रस्तुत किये। इसी समय चरण-चिह्नोंको पहचानती हुई श्रीराधाकी सुप्रतिष्ठित सहचरी सुशीला आदि छत्तीस गोपियाँ अन्यान्य बहुसंख्यक गोपाङ्गनाओंके साथ वहाँ आ पहुँचीं। किन्हींके हाथमें चन्दन था और किन्हींके हाथमें कस्तूरी। कोई चँवर लिये आयी थी और कोई माला। कोई सिन्दूर, कोई कंघी, कोई आलता (महावर) और कोई वस्त्र लिये हुए थी। कोई अपने हाथमें दर्पण, कोई पुष्पपात्र, कोई क्रीड़ाकमल, कोई फूलोंके गजरे, कोई मधुपात्र, कोई आभूषण, कोई करताल, कोई मृदंग, कोई स्वर-यन्त्र और कोई वीणा लिये आयी थीं। जो छत्तीस राग-रागिनियाँ गोपीका रूप धारण करके गोलोकसे राधाके साथ भारतवर्षमें आयी थीं, वे सब वहाँ उपस्थित हुईं। कई गोपियाँ वहाँ आकर नाचने और गाने लगीं तथा कोई श्वेत चँवर डुलाकर राधाकी सेवा करने लगीं। महामुने! कुछ गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक देवी राधाके पैर दबाने लगीं। एकने उन्हें चबानेके लिये पानका बीड़ा दिया। इस प्रकार पवित्र वृन्दावनमें श्रीराधाके वक्षःस्थलमें विराजमान भगवान् श्यामसुन्दर कौतूहलपूर्वक गोपियोंके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए। वत्स! इस प्रकार मैंने श्रीहरिकी रासक्रीड़ाका वर्णन किया। वे भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छामय रूपधारी, परिपूर्णतम परमात्मा, निर्गुण, स्वतन्त्र, प्रकृतिसे भी परे, सर्वसमर्थ और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदिके भी परमेश्वर हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णजन्मका रहस्य, मनको प्रिय लगनेवाली उनकी बाललीला तथा किशोर-लीलाका भी वर्णन किया गया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

**नारदजीने पूछा**—मुनिश्रेष्ठ! इसके बाद कौन-सी रहस्य-लीला हुई? भगवान् श्रीकृष्ण किस प्रकार नन्दभवनसे मथुराको गये? श्रीहरिके वियोगसे पीड़ित हुए नन्दने कैसे अपने प्राण धारण किये? जिनका चित्त सदा श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही लगा रहता था, वे गोपाङ्गनाएँ और यशोदाजी भी कैसे जीवन धारण कर सकीं? जो आँखोंकी पलक गिरनेतकका भी वियोग होनेपर जीवित नहीं रह सकती थीं; वे ही देवी श्रीराधा अपने प्राणेश्वरके बिना किस तरह प्राणोंको रख सकीं? जो-जो गोप शयन, भोजन तथा अन्यान्य सुखोंके उपभोग-कालमें सदा श्रीकृष्णके साथ रहे; वे अपने वैसे प्रेमी बान्धवको व्रजमें रहते हुए कैसे भूल सके? श्रीकृष्णने मथुरामें जाकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? परमधाम-गमनपर्यन्त उन्होंने जो कुछ किया हो, उसे आप बतानेकी कृपा करें।

**श्रीनारायणने कहा**—महामुने! कंसने धनुषयज्ञ नामक यज्ञका आयोजन किया था। उसमें उस राजाका निमन्त्रण पाकर भगवान् श्रीकृष्ण भी गये थे। राजा कंसने श्रीकृष्णको बुलानेके लिये भगवद्भक्त अक्रूरको उनके पास भेजा था।

अक्रूरजी राजा कंसकी आज्ञा पाकर नन्दभवनमें गये और श्रीकृष्णको उनके साथियोंसहित साथ ले मथुरामें लौट आये। मुने! मथुरा जाकर श्रीकृष्णने राजा कंसको मार डाला। एक धोबीको, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लको तथा कुवलयापीड़ नामक हाथीको वे पहले ही कालके गालमें भेज चुके थे। कंस-वधके अनन्तर बान्धव श्रीकृष्णने माता-पिता तथा भाई-बन्धुओंका उद्धार किया। श्रीहरिने कृपापूर्वक एक मालीको भी मोक्ष प्रदान किया। फिर गोपियोंपर दया आनेसे उद्धवको व्रजमें भेजकर उन्हींके द्वारा उन्हें समझाया-बुझाया और धीरज बँधाया। तदनन्तर उपनयन-संस्कारके पश्चात् भगवान् अवन्तीनगर (उज्जैन)-में गये और वहाँ गुरु सान्दीपनि मुनिसे विद्या ग्रहण की। उसके बाद जरासंधको जीतकर यवनराजका वध किया और विधिपूर्वक उग्रसेनको राजाके पदपर बिठाया। समुद्रके निकट जा वहाँ द्वारकापुरीका निर्माण कराया और राजाओंके समूहको जीतकर वे रुक्मिणी देवीको हर लाये। फिर कालिन्दी, लक्ष्मणा, शैव्या, सत्या, सती जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नाग्नजितीके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् भयानक संग्रामके द्वारा प्राग्ज्योतिषपुरके नरेश नरकका वध करके उन्होंने सोलह हजार राजकुमारियोंका उद्धार किया और उन्हें पत्नीरूपमें अपनाकर उनके साथ विहार किया। इन्द्रदेवको लीलापूर्वक परास्त करके पारिजातका अपहरण किया और भगवान् शंकरको जीतकर बाणासुरके हाथ काट दिये तथा अपने पौत्र अनिरुद्धको छुड़ाया और फिर द्वारकामें आकर अपने-आपको अपनी प्रत्येक रानीके महलमें उपस्थित दिखाया। वसुदेवजीके यज्ञमें तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे आयी हुई अपने प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी श्रीराधाके दर्शन किये। फिर वे उनके साथ पुण्यमय वृन्दावनमें गये। भारतके उस पुण्यक्षेत्रमें उन जगदीश्वरने श्रीराधाके साथ पुनः चौदह वर्षोंतक रासमण्डलमें रास किया। उन्होंने नन्द-भवनमें पूरे ग्यारह वर्षकी अवस्थातक निवास किया था। फिर मथुरा और द्वारकामें उन भगवान्‌के पूरे सौ वर्ष व्यतीत हुए। उन दिनों महापराक्रमी श्रीहरिने वहाँ रहकर भूतलका भार उतारा था। मुने! इस तरह वे एक सौ पचीस वर्षोंतक भूतलपर रहकर गोलोकमें गये। वहाँ उन्होंने मैया यशोदा और नन्दबाबाको तथा बुद्धिमान् वृषभानु एवं राधा-माता कलावतीको सामीप्य-मुक्ति प्रदान की। श्रीकृष्ण और गोपियोंके साथ राधाने कौतूहलवश प्रत्येक युगमें वेदवर्णित धर्मका सेतु बाँधा। महामुने! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें श्रीकृष्णका सारा रम्य चरित्र कह सुनाया जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर ही है; अतः तुम परमानन्दमय नन्दनन्दनका सानन्द भजन करो। वे स्वेच्छामय परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर, अविनाशी, अव्यक्त, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही शरीर धारण करनेवाले, सत्य, नित्य, स्वतन्त्र, सर्वेश्वर, प्रकृतिसे परे, निर्गुण, निरीह, निराकार और निरञ्जन हैं। (अध्याय ५२—५४)

# ( उत्तरार्द्ध )

## श्रीकृष्णकी महत्ता एवं प्रभावका वर्णन

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! वे ही भगवान् श्रीकृष्ण सर्वात्मा परम पुरुष हैं। वे दुराराध्य होते हुए भी अत्यन्त साध्य हैं अर्थात् आराधनाके बलसे उन्हें रिझा पाना अत्यन्त कठिन है तो भी वे भक्तपर कृपा करके स्वयं ही उसके अधीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सबके आराध्य और सुखदायक हैं। अपने भक्तोंके लिये तो वे अत्यन्त सुलभ हैं। भक्त ही उन्हें आराधनाद्वारा वशमें कर सकता है। वे अपने भक्तको सदा ही दर्शन देते हैं और दे सकते हैं; किंतु अभक्तके लिये उनका दर्शन पाना सर्वथा असम्भव है। उनके लीलाचरित्रोंका रहस्य समझ पाना अत्यन्त कठिन है। केवल उन चरित्रोंका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये। संसारके सब लोग श्रीकृष्णकी दुरन्त मायासे बद्ध एवं मोहित हैं। उन्हींके भयसे यह वायु निरन्तर बहती रहती है, कच्छप बिना आधारके ही स्थिर रहता है। और यही कच्छप उन्हींके भयसे सदा अनन्त (शेषनाग)-को अपनी पीठपर धारण किये रहता है तथा शेषनाग अपने मस्तकपर अखिल विश्वका भार उठाये रहते हैं। शेषनागके सहस्र सिर हैं। उनके सिरके एक देशमें सात समुद्रों, सात द्वीपों, पर्वतों और काननोंसे युक्त पृथ्वी विद्यमान है। सात पाताल, **भूर्भुवः स्वः** आदि विभिन्न सात स्वर्ग, जिनमें ब्रह्मलोक भी शामिल है, विश्व कहे गये हैं। इस विश्वको 'त्रिभुवन' कहते हैं। इसीको कृत्रिम[१] जगत् कहा गया है। विधाता प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्णके भयसे ही इस कृत्रिम जगत्की सृष्टि करते हैं। इस तरहके असंख्य विश्व हैं, जिन्हें महाविराट् (महाविष्णु) अपने रोम-कूपोंमें धारण करते हैं। ये श्रीकृष्णके ही अंश हैं। उन्हींके भयसे समस्त ब्रह्माण्डोंको धारण करते हैं और उन्हींका निरन्तर ध्यान किया करते हैं। कृपानिधान विष्णु (लघु विराट्) भी श्रीकृष्णके ही भयसे संसारका पालन करते हैं। उन्हींका भय मानकर कालाग्नि रुद्रस्वरूप काल प्रजाका संहार करता है तथा छहों गुणों और ऐश्वर्योंसे युक्त विरागी एवं विरक्त मृत्युञ्जय महादेव उन्हींके भयसे अनुरागपूर्वक उनका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। उन्हींके भयसे आग जलती और सूर्य तपते हैं। उनका ही भय मानकर इन्द्र वर्षा करते और मृत्यु समस्त प्राणियोंपर धावा बोलती है। उन्हींके भयसे यम एवं धर्म पापियोंको दण्ड देते हैं। उनका ही भय मानकर पृथ्वी चराचर लोकोंको धारण करती और प्रकृति सृष्टिकालमें महत्तत्त्व आदिको जन्म देती है। बेटा! उन भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय क्या है? इसे जानना बहुत कठिन है। कौन ऐसा पुरुष है, जो उसे जाननेका दावा कर सके। वत्स! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जिनके प्रभावको नहीं जानते हैं; उन्हीं भगवान्की लीलाका रहस्य मुझ-जैसा मन्दबुद्धि कैसे जान सकता है?

वे नन्दनन्दन वृन्दावनको छोड़कर मथुरा क्यों चले गये? उन्होंने गोपियों तथा प्राणाधिका प्रिया राधाको क्यों त्याग दिया? माता यशोदा और नन्दको तथा अन्यान्य बान्धव आदिको क्यों छोड़ा? इस बातको उनके सिवा दूसरा कौन जान सकता है? वे ही दर्प देते हैं और वे ही उस दर्पका दलन करते हैं। सबको सदा सब कुछ

---

१-अनित्य।

देनेवाले श्रीकृष्ण ही हैं। सबके दर्पका नाश करके उन्होंने उन सबपर कृपा ही की। वे ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वे स्रष्टाके भी स्रष्टा हैं। भगवान् शंकर अपने पाँच मुखोंद्वारा भी उनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं। चार मुखोंवाले जगत्-विधाता ब्रह्माजी भी उनका स्तवन नहीं कर सकते। शेषनाग सहस्र मुखोंसे भी उनकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं रखते। साक्षात् विश्वव्यापी जनार्दन विष्णु भी उनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। महाविराट् नारायण भी उन परमेश्वरकी स्तुति नहीं कर सके। प्रकृति उन परमात्माके सामने काँप उठती है। सरस्वती उन परमेश्वरका स्तवन करनेमें जडवत् हो जाती है। नारद! सम्पूर्ण वेद भी उनकी महिमाको नहीं जानते। ब्रह्मन्! इस प्रकार निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन किया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५५)

## इन्द्रके दर्प-भङ्गकी कथा, नहुषकी शचीपर कुदृष्टि, शचीका धर्मकी बातें बताकर नहुषको समझाना और उसके न माननेपर बृहस्पतिजीकी शरणमें जाकर उनका स्तवन करना

**सूतजी कहते हैं**—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर श्रीनारायणने संक्षेपसे कुछ लोगोंके दर्प-भङ्गकी घटनाएँ सुनायीं। फिर इन्द्रके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त बताते हुए बोले।

**श्रीनारायणने कहा**—नारद! इस प्रकार सबके दर्प-भङ्गका प्रसङ्ग कहा गया। अब इन्द्रके दर्प-भञ्जनकी घटना विस्तारपूर्वक सुनो। एक समय इन्द्र अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरु बृहस्पतिको आते देखकर भी सभामें दर्पवश अपने श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनसे नहीं उठे। इसे गुरुने अपना अपमान समझा और वे अत्यन्त रुष्ट हो वहाँसे लौट गये। यद्यपि उनके मनमें इन्द्रके प्रति द्वेषभावका उदय हुआ था, तथापि धर्मात्मा गुरुने स्नेहवश कृपा करके उन्हें शाप नहीं दिया; परंतु शाप न मिलनेपर भी इन्द्रका घमंड चूर हो गया। यदि दूसरा कोई धर्म अथवा प्रेमका विचार करके किसीके भारी अपराध करनेपर भी शाप न दे तो भी उसका वह अपराध अवश्य फल देता है। नारद! धर्मदेव ही उस पापीका नाश कर देते हैं। जो धर्मात्मा पुरुष जिस हिंसक या अपराधीको क्रोधपूर्वक शाप दे देता है, उसके उस शापसे अपराधीका अवश्य विनाश होता है; परंतु उस धर्मात्मा पुरुषका धर्म भी उसी मात्रामें क्षीण हो जाता है। इन्द्रने जो गुरुका अपमानरूप अधर्म किया था, उसके कारण वे ब्रह्महत्याके भागी हुए। ब्रह्महत्यासे डरे हुए इन्द्र अपना राज्य छोड़कर एक पवित्र सरोवरको चले गये और उस सरोवरके कमल-नालमें निवास करने लगे। भारतवर्षमें भगवान् विष्णुका वह सरोवर पुण्यमय तीर्थ और तपस्वीजनोंके तपका श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ ब्रह्महत्या नहीं जा सकती। उसीको पुराणवेत्ता पुरुष 'पुष्कर' तीर्थ कहते हैं। इन्द्रको राज्यभ्रष्ट हुआ देख धर्मात्मा हरिभक्त नरेश नहुषने उनके राज्यपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। एक दिन मनोहर अङ्गवाली सुन्दरी शची, जिनके कोई संतान नहीं थी, पतिवियोगके कारण व्यथित-

१-४७वें अध्यायमें भी यह प्रसङ्ग आया है। वहाँ ५६वें श्लोकमें कहा गया है कि इन्द्रने मानसरोवरमें प्रवेश किया था—'विवेश मानससरः।' यहाँ पुष्करतीर्थमें इन्द्रका प्रवेश कहा गया है। यदि वहाँके 'मानससरः' का अर्थ केवल सरोवरमात्र हो तो दोनों स्थानोंके वर्णनमें एकता आ सकती है।

हृदयसे आकाशगङ्गाके तटपर जा रही थीं। उस समय नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित उन सुन्दर दाँतवाली, परम कोमलाङ्गी महासती शचीपर नहुषकी दृष्टि पड़ी। उन्हें देखते ही नहुषके मनमें दूषित वृत्ति जाग उठी। उसने शचीके समक्ष विनयपूर्वक अपनी कुत्सित वासनाकी पूर्तिके लिये प्रस्ताव रखा।

**इसपर शचीने कहा**—बेटा! मेरी बात सुनो। महाराज! तुम प्रजाके भयका भञ्जन करनेवाले हो। राजा समस्त प्रजाका पालक पिता होता है और वह सबकी भयसे रक्षा करता है। इन दिनों महेन्द्र राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गये हैं और तुम स्वर्गमें राजाके पदपर प्रतिष्ठित हुए हो। जो राजा होता है, वह निश्चय ही प्रजाजनोंका पालक पिता है। गुरुपत्नी, राजपत्नी, देवपत्नी, पुत्रवधू, माताकी बहिन (मौसी), पिताकी बहिन (बूआ), शिष्यपत्नी, भृत्यपत्नी, मामी, पिताकी पत्नी (माता और विमाता), भाईकी पत्नी, सास, बहिन, बेटी, गर्भमें धारण करनेवाली (जन्मदात्री) तथा इष्टदेवी—ये पुरुषकी सोलह माताएँ हैं*। तुम मनुष्य हो और मैं देवताकी पत्नी हूँ; अतः तुम्हारी वेदसम्मत माता हुई। बेटा! यदि माँके साथ रमण करना चाहते हो तो माता अदितिके पास जाओ। वत्स! सब पापियोंके उद्धारका उपाय है; परंतु मातृगामियोंके लिये कोई उपाय नहीं है। वे ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें पकाये जाते हैं। तत्पश्चात् सात कल्पोंतक कीड़े होते हैं। फिर सात जन्मोंतक कोढ़ी और म्लेच्छ होते हैं। उनका कदापि उद्धार नहीं होता; ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। आङ्गिरस स्मृति कहती है कि वेदोंमें उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। निश्चय ही संसारी जीवोंके लिये स्वर्गकी सम्पत्तिका भोग ही सुख है; परंतु मुमुक्षुओंके लिये मोक्ष, तपस्वीजनोंके लिये तप, ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्मणत्व, मुनियोंके लिये मौन, वैदिकोंके लिये वेदाभ्यास, कवियोंके लिये काव्य-वर्णन तथा वैष्णवोंके लिये भगवान् विष्णुका दास्य ही परम सुख है। वे विष्णु-भक्तिके रसास्वादनको ही परम सुख मानते हैं। वैष्णवजन तो विष्णु-भक्तिको छोड़कर मुक्तिको भी लेनेकी इच्छा नहीं करते। राजेन्द्र! तुम चक्रवर्ती राजाओंके प्रकाशमान कुलमें उत्पन्न हुए हो। अनेक जन्मोंके पुण्यसे तुमने भारतवर्षमें जन्म पाया है। चन्द्रवंशी नरेशरूपी कमलोंके विकासके लिये तुम ग्रीष्मकालकी दोपहरीके तेजस्वी सूर्यकी भाँति प्रकट हुए हो। समस्त आश्रमोंमें स्वधर्मका पालन ही उत्तम यशका कारण होता है। स्वधर्महीन मूढ़ मानव नरकमें गिरते हैं।

तीनों संध्याओंके समय श्रीहरिकी पूजा ब्राह्मणका अपना धर्म है। भगवच्चरणोदकका पान तथा भगवान्‌के नैवेद्यका भक्षण उनके लिये अमृतसे भी बढ़कर है। नरेश्वर! जो अन्न और जल भगवान्‌को समर्पित नहीं किया गया, वह मल-मूत्रके समान है। यदि ब्राह्मण उसे खाते हैं तो वे सब-के-सब सूअर होते हैं। ब्राह्मण आजीवन भगवान्‌के नैवेद्यका भोजन करें; परंतु एकादशीको भोजन न करें। पूर्णतः उपवास करें। इसी तरह कृष्ण-जन्माष्टमी, शिवरात्रि तथा रामनवमी आदि पुण्य वासरोंको भी उन्हें निश्चय ही यत्नपूर्वक उपवास करना चाहिये। ब्रह्माजीने जो ब्राह्मणोंका स्वधर्म बताया है; वह कहा गया।

नरेश्वर! पतिव्रताओंका व्रत पतिसेवा है।

---

* यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम्॥
गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः। पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली॥
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता। गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः॥
(५९। ५४—५६)

वही उनके लिये उत्तम तप है। पर-पुरुष पतिव्रताओंके लिये पुत्रतुल्य है; यही नारियोंका धर्म है। राजालोग जैसे प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते हैं, उसी प्रकार वे प्रजावर्गकी स्त्रियोंको भी माताके समान देखते हैं। विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते और देवताओं एवं ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते हैं। दुष्टोंका निवारण और सत्पुरुषोंका पालन करते हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका यही धर्म बताया था। वाणिज्य और धर्मसंग्रह यह वैश्योंका अपना धर्म है। ब्राह्मणोंकी सेवा शूद्रोंका परम धर्म निश्चित किया गया है। राजन्! सब कुछ भगवान् श्रीहरिको समर्पण कर देना संन्यासियोंका धर्म है। संन्यासी एकमात्र गेरुआ वस्त्र, दण्ड और मिट्टीका कमण्डलु धारण करता है। सर्वत्र समान दृष्टि रखता और सदा श्रीनारायणका स्मरण करता है। नित्य भ्रमण करता है। किसीके घरमें नहीं टिकता और लोभवश किसीको विद्या और मन्त्रका उपदेश नहीं देता। संन्यासी अपने लिये आश्रम नहीं बनाता। दूसरी किसी वासनाको मनमें स्थान नहीं देता; दूसरे किसीका साथ नहीं करता और आसक्ति एवं मोहसे दूर रहता है। वह लोभवश स्वादिष्ट भोजन नहीं करता, स्त्रीका मुख नहीं देखता तथा व्रतमें अटल रहकर किसी गृहस्थ पुरुषसे मनचाही भोज्य वस्तुके लिये याचना भी नहीं करता। ब्रह्माजीने यही संन्यासियोंका धर्म बताया है। बेटा! यह तुम्हें धर्मकी बात बतायी है। अब तुम सुखपूर्वक अपने स्थानको जाओ। ऐसा कहकर मार्गमें मिली हुई इन्द्राणी चुप हो रहीं और राजा नहुष गर्दन टेढ़ी करके उनसे बोला।

**नहुषने कहा**—देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब उलटी बात है। यथार्थ वैदिक धर्म क्या है? यह मैं बताता हूँ, सुनो। सुरसुन्दरि! इसमें संदेह नहीं कि सबको अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है; परंतु स्वर्ग, पाताल तथा दूसरे किसी द्वीपमें जो कर्म किये जाते हैं, उनका फल नहीं भोगना पड़ता। पुण्य क्षेत्र भारतमें शुभाशुभ कर्म करके कर्मी मनुष्य उस कर्मके बन्धनमें बँधकर परलोकमें उसके फलको भोगता है। हिमालयसे लेकर दक्षिण समुद्रतकका पवित्र देश 'भारत' कहा गया है। वह सब स्थानोंमें श्रेष्ठ तथा मुनियोंकी तपोभूमि है। वहाँ जन्म लेकर जीव भगवान् विष्णुकी मायासे वञ्चित हो सदा विषय-सेवन करता है और श्रीहरिकी सेवाको भुला देता है। जो भारतवर्षमें महान् पुण्य करता है, वह पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गको जाता है। वहाँ स्वर्गीय कन्याओंको अपनाकर चिरकालतक उनके साथ आनन्द भोगता है। मनुष्य मानव-शरीरका त्याग करके स्वर्गमें आता है; किंतु सुन्दरि! मैं अपने शरीरके साथ यहाँ आया हूँ। देखो, मेरा कैसा पुण्य है? अनेक जन्मोंके पुण्यसे मैं अभीष्ट स्वर्गमें आया हूँ। तदनन्तर न जाने किस पुण्यसे तुमसे मेरा साक्षात्कार हुआ है। यह कर्मका स्थान नहीं, अपने कर्मोंके भोगका स्थान है। यों कहकर कामासक्त नहुषने फिर बहुत-सी युक्तियोंके द्वारा पुनः अपने उसी पापपूर्ण प्रस्तावको दुहराया।

**तब शची बोलीं**—हाय! इस विवेकशून्य, कर्तव्याकर्तव्यको न जाननेवाले, मूढ़, कामातुर पुरुषकी कितनी बातें आज मुझे सुननी पड़ेंगी! कामने जिनके चित्तको चुरा लिया है, वे विवेकशून्य काममत्त कामी तथा मधुमत्त एवं सुरामत्त मनुष्य अपनी मौतको भी नहीं गिनते। ओ मतवाले नरेश! आज मुझे छोड़ दे। मैं तेरे लिये माताके समान और रजस्वला हूँ। आज मेरी ऋतुका प्रथम दिन है। पहले दिन रजस्वला स्त्री चाण्डालीके समान मानी जाती है। दूसरे दिन म्लेच्छा और तीसरे दिन धोबिनके समान होती है। चौथे दिन वह अपने पतिके लिये शुद्ध होती है; परंतु देवकार्य और पितृकार्यके लिये

वह उस दिन भी शुद्ध नहीं मानी जाती। दूसरेके लिये वह उस दिन असत् शूद्राके समान होती है। जो पहले दिन अपनी रजस्वला पत्नीके साथ समागम करता है, वह ब्रह्महत्याके चौथे अंशका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। वह पुरुष देवकर्म तथा पितृकर्ममें सम्मिलित होने योग्य नहीं रह जाता। वह लोगोंमें अधम, निन्दित और अपयशका भागी समझा जाता है। जो दूसरे दिन रजस्वला स्त्रीके साथ कामभावसे समागम करता है, उसे अवश्य ही गो-हत्याका पाप लगता है। वह आजीवन देवता, पितर और ब्राह्मणकी पूजाके लिये अपना अधिकार खो बैठता है, मनुष्यतासे गिर जाता है तथा कलङ्कित हो जाता है। जो तीसरे दिन रजस्वला पत्नीके साथ समागम करता है, वह मूढ़ भ्रूण-हत्याका भागी होता है; इसमें संशय नहीं है। पहले बताये हुए लोगोंकी भाँति वह भी पतित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका अनधिकारी हो जाता है। चौथे दिन रजस्वला असत् शूद्रा कही जाती है; अतः विद्वान् पुरुष उस दिन भी उसके पास न जाय। मूढ़! मैं तेरी माता हूँ! यदि तू माताको भी बलपूर्वक ग्रहण करना चाहता है तो आज छोड़ दे। ऋतुकाल बीत जानेपर जैसी तेरी मर्जी हो, करना।

इतनेपर भी नहुष नहीं माना और बोला—'देवरमणी सदा ही शुद्ध होती है। तुम अपने घर चलो। मैं अभी आता हूँ'—यों कहकर राजा नहुष प्रसन्नतापूर्वक रत्नमय रथपर आरूढ़ हो नन्दनवनमें शचीके भवनकी ओर गया; परंतु शची अपने घरमें नहीं लौटी। वह सीधे गुरु बृहस्पतिके घर चली गयी। वहाँ जाकर उसने देखा गुरुदेव कुशासनपर विराजमान हैं। तारादेवी उनके चरणारविन्दोंकी सेवा कर रही हैं। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान हैं और हाथमें जपमाला लिये अपने अभीष्ट देव श्रीकृष्णके नामका निरन्तर जप कर रहे हैं। वे श्रीकृष्ण सबसे उत्कृष्ट, परमानन्दमय, परमात्मा एवं ईश्वर हैं। निर्गुण, निरीह, स्वतन्त्र, प्रकृतिसे परे, स्वेच्छामय परब्रह्म हैं तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही शरीर धारण करते हैं। उनके चिन्तनमें लगे और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए गुरुदेवको शचीने धरतीपर माथा टेककर प्रणाम किया। उस समय भक्तिके समुद्रमें मग्न हुई शची रोती और आँखोंसे आँसू बहाती थी। साथ ही वह शोक-सागरमें भी डूब रही थी। भयभीत शची व्यथित-हृदयसे अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरु कृपानिधान बृहस्पतिकी स्तुति करने लगी।

**शची बोली**—महाभाग! मैं भयभीत हो आपकी शरणमें आयी हूँ। आप ईश्वर हैं और मैं शोकसागरमें डूबी हुई आपकी दासी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। गुरु असमर्थ हो या समर्थ, बलवान् हो या निर्बल, वह अपने शिष्यों, पत्नी तथा पुत्रोंपर सदा शासन करनेमें समर्थ है। प्रभो! आपने अपने शिष्यको उसके राज्यसे दूर कर दिया। बहुत दिन हुए, अब तो उसके दोषकी शान्ति हो गयी होगी। अतः कृपा कीजिये। कृपानिधे! मैं अनाथ हूँ। मेरे लिये सब दिशाएँ सूनी हो गयी हैं। अमरावतीपुरी भी सूनी है तथा मेरा निवासस्थान भी सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे शून्य है। मेरी इस अवस्थापर दृष्टिपात कीजिये और मुझे संकटसे बचाइये। मुझे एक डाकू अपना ग्रास बनाना चाहता है। आप मेरी रक्षा कीजिये। अपने किङ्कर देवराजको यहाँ ले आइये। चरणोंकी धूल देकर उन्हें शुभाशीर्वादसे अनुगृहीत कीजिये।

समस्त गुरुओंमें जन्मदाता पिता श्रेष्ठ गुरु माने गये हैं। पिताकी अपेक्षा माता सौगुनी अधिक पूजनीया, वन्दनीया तथा वरिष्ठ है; परंतु जो विद्यादाता, मन्त्रदाता, ज्ञानदाता और हरिभक्ति प्रदान करनेवाले गुरु हैं, वे मातासे भी सौगुने पूजनीय, वन्दनीय और सेव्य हैं। जिन्होंने

अज्ञानरूपी तिमिर (रतौंधी)-रोगसे अन्धे हुए मनुष्यकी दृष्टिको ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है; उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। जन्मदाता, अन्नदाता, माता, पिता, अन्य गुरु जीवको घोर संसारसागरसे पार करनेमें समर्थ नहीं हैं। गुरु विष्णु हैं, गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु महेश्वरदेव हैं, गुरु धर्म हैं, गुरु शेषनाग हैं और गुरु सर्वात्मा निर्गुण श्रीकृष्ण हैं; गुरु सम्पूर्ण तीर्थ, आश्रम तथा देवालय हैं। गुरु सम्पूर्ण देवस्वरूप तथा साक्षात् श्रीहरि हैं। इष्टदेवके रुष्ट हो जानेपर गुरुदेव अपने शिष्यकी रक्षा कर सकते हैं; किंतु गुरुके रुष्ट हो जानेपर इष्टदेव उसकी रक्षा नहीं कर सकते। जिसपर सम्पूर्ण ग्रह, देवता और ब्राह्मण रुष्ट हो जाते हैं, उसीपर गुरुदेव रुष्ट होते हैं; क्योंकि गुरु ही देवता हैं। आत्मा (शरीर), पुत्र, धन और पत्नी भी गुरुसे बढ़कर प्रिय नहीं हैं। धर्म, तप, सत्य और पुण्य भी गुरुसे अधिक प्रिय नहीं हैं। गुरुसे बढ़कर शासक और बन्धु दूसरा कोई नहीं है। शिष्योंके लिये सदा गुरु ही शासक, राजा और देवता हैं। अन्नदाता जबतक अन्न देनेमें समर्थ है, तभीतक वह शासक होता है; परंतु गुरु जन्म-जन्ममें शिष्योंके शासक होते हैं। मन्त्र, विद्या, गुरु और देवता—ये पतिकी भाँति पूर्वजन्मके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। प्रत्येक जन्ममें गुरुका सम्बन्ध होनेसे उनका स्थान सबसे ऊपर है। पितारूप गुरु जिस जन्ममें जन्म देते हैं, उसी जन्ममें वन्दनीय होते हैं। माता तथा अन्य गुरुओंकी भी यही स्थिति है; परंतु ज्ञानदाता गुरु प्रत्येक जन्ममें वन्दनीय हैं। ब्रह्मन्! आप ब्राह्मणोंमें वरिष्ठ, तपस्वी जनोंमें गरिष्ठ तथा समस्त धर्मात्माओंमें उत्तम धर्मिष्ठ एवं ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता हैं। मुनिश्रेष्ठ! अब आप मुझपर और इन्द्रपर संतुष्ट हों। आपके संतुष्ट होनेपर ही ग्रह और देवता सदा संतुष्ट रहते हैं।

ब्रह्मन्! ऐसा कहकर शची फिर उच्चस्वरसे रोने लगी। उसका रोना देखकर तारादेवी भी फूट-फूटकर रोने लगीं। तारा अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं और बार-बार यह कहकर रोने लगीं कि आप इन्द्रके अपराधको क्षमा करें। तब बृहस्पतिजी संतुष्ट हो तारासे बोले।

**गुरुने कहा**—तारे! उठो। शचीका सब कुछ मङ्गलमय होगा, मेरे आशीर्वादसे यह अपने पति महेन्द्रको शीघ्र ही प्राप्त कर लेगी।

ऐसा कहकर बृहस्पतिजी चुप हो गये। तारा पुनः उनके चरणोंमें गिरीं और बार-बार रोयीं। फिर ताराने शचीको पकड़कर अपने हृदयसे लगा लिया और उसे नाना प्रकारके आध्यात्मिक—ज्ञानसम्बन्धी उत्तम वचन सुनाकर समझाया एवं धीरज बँधाया।

(अध्याय ५६—५९)

## बृहस्पतिका शचीको आश्वासन एवं आशीर्वाद देना, नहुषका सप्तर्षियोंको वाहन बनाना और दुर्वासाके शापसे अजगर होना, बृहस्पतिका इन्द्रको बुलाकर पुनः सिंहासनपर बिठाना तथा गौतमसे इन्द्र और अहल्याको शापकी प्राप्ति

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! शचीद्वारा किये गये स्तोत्रको सुनकर बृहस्पति बहुत संतुष्ट हुए और शान्तभावसे इन्द्रपत्नी शचीके प्रति मधुर वाणीमें बोले।

**बृहस्पतिने कहा**—बेटी! सारा भय छोड़ दो। मेरे रहते तुम्हें भय किस बातका है? शोभने! मेरे लिये जैसे कचकी पत्नी (पुत्रवधू) रक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी हो। जो स्थान पुत्रका

है, वही शिष्यका भी है। तर्पण, पिण्डदान, पालन और परितोषण—इन सभी कर्मोंके लिये पुत्र और शिष्यमें कोई भेद नहीं है। जैसे पुत्र पिताके मरनेपर उसके लिये अग्निदाता होता है, अवश्य उसी तरह शिष्य गुरुके लिये अग्निप्रदाता कहा गया है। यह बात कण्वशाखामें ब्रह्माजीने कही है। पिता, माता, गुरु, पत्नी, छोटा बालक, अनाथ एवं कुटुम्बीजन—ये पुरुषमात्रसे नित्य पोषण पानेके योग्य हैं, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है*। जो इनका पोषण नहीं करता उसके शरीरके भस्म होनेतक उसे सूतक (अशौच)-का भागी होना पड़ता है। वह जीते-जी देवयज्ञ तथा पितृयज्ञमें कर्म करनेका अधिकारी नहीं रहता है—ऐसा महेश्वरका कथन है। जो माता, पिता और गुरुके प्रति मानव-बुद्धि रखता है, उसको सर्वत्र अयश प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर विघ्नका ही सामना करना पड़ता है। जो सम्पत्तिसे मतवाला होकर अपने गुरुका अपमान करता है, उसका शीघ्र ही सर्वनाश हो जाता है; यह सुनिश्चित बात है। अपनी सभामें मुझे देखकर इन्द्र आसनसे नहीं उठे थे, उसीका फल इस समय भोग रहे हैं। गुरुके अपमानका शीघ्र ही जो कटु फल प्राप्त हुआ, उसे तुम अपनी आँखों देख लो। अब मैं इन्द्रको शापसे छुड़ाऊँगा और निश्चय ही तुम्हारी रक्षा करूँगा। जो शासन और संरक्षण दोनों ही कर सकता हो, वही गुरु कहलाता है। जो हृदयसे शुद्ध है अर्थात् जिसके हृदयमें कलुषित भाव नहीं पैदा हुआ है, उस नारीका सतीत्व नष्ट नहीं होता। परंतु जिसके मनमें विकल्प है, उसका धर्म नष्ट हो जाता है। पतिव्रते! तुम्हारा दुर्गाजीके समान प्रभाव बढ़ेगा। तुम्हारी प्रतिष्ठा और यश लक्ष्मीजीके समान होंगे। सौभाग्य और पतिविषयक प्रेम श्रीराधिकाके समान होगा। स्वामीके प्रति गौरव, मान, प्रीति तथा प्रधानताका भाव भी तुममें श्रीराधाके ही सदृश होगा। रोहिणीके समान तुममें पतिकी अपेक्षा-बुद्धि होगी। तुम भारतीके समान पूजनीया तथा सावित्रीके तुल्य सदा शुद्धा एवं उपमारहित होओगी।

बृहस्पतिजी ऐसा कह ही रहे थे कि नहुषके दूतने वहाँ आकर शचीसे नन्दनवनमें चलनेके लिये कहा। यह सुनते ही बृहस्पतिजीका सारा शरीर क्रोधसे काँपने लगा और उनकी आँखें लाल हो गयीं। वे उस दूतसे बोले।

**गुरुने कहा**—दूत! तू जाकर नहुषसे कह दे कि 'महाराज! यदि तुम शचीका उपभोग करना चाहते हो तो एक ऐसी सवारीपर चढ़कर रातमें आना, जिसका आजसे पहले किसीने उपयोग न किया हो। सप्तर्षियोंके कंधोंपर अपनी सुन्दर शिविका (पालकी) रख उत्तम वेशभूषासे सज-धजकर उसीपर आरूढ़ हो तुम्हें यहाँतक यात्रा करनी चाहिये।'

बृहस्पतिजीकी बात सुनकर दूतने नहुषके पास जा उनका संदेश कह सुनाया। सुनकर नहुष हँस पड़ा और अपने सेवकसे बोला—'जाओ, जाओ, जल्दी जाओ और सप्तर्षियोंको यहाँ बुला लाओ। उन सबके साथ मिलकर कोई उपाय करूँगा। तुम अभी जाओ।'

राजाका आदेश पाकर दूत सप्तर्षियोंके समीप गया और नहुषने जो कुछ कहा था, वह सब उसने उन सबसे कह सुनाया। दूतकी बात सुनकर सप्तर्षि प्रसन्नतापूर्वक नहुषके पास गये। उन

* पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः। एते पुंसां नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः॥ (६०। ५)

सबको आया देख राजाने प्रणाम किया और आदरपूर्वक कहा।

**नहुष बोला**—आप लोग ब्रह्माजीके पुत्र हैं, ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होते हैं और सदा ब्रह्माजीके समान ही भक्तवत्सल हैं। निरन्तर भगवान् नारायणकी उपासनामें लगे रहते हैं। शुद्ध सत्त्व ही आपका स्वरूप है। आप मोह और मात्सर्यसे रहित हैं। दर्प और अहंकार आपको छू नहीं सके हैं। आप सब लोग सदा भगवान् नारायणके समान तेजस्वी और यशस्वी हैं। गुण, कृपा, प्रेम और वरदान सभी दृष्टियोंसे निश्चय ही आप श्रीहरिके तुल्य हैं।

ऐसा कहकर राजा उनके चरणोंमें प्रणाम और स्तुति करने लगा। राजाको कातर हुआ देख वे परम हितैषी ऋषि उससे बोले।

**ऋषियोंने कहा**—बेटा! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो; हम सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। हमारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। इन्द्रपद, मनुका पद, दीर्घायु, सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, चिरकालतक बना रहनेवाला अतिशय सुख, सम्पूर्ण सिद्धियाँ, परम दुर्लभ समस्त ऐश्वर्य तथा जो तपस्यासे भी नहीं मिल सकती, वह हरिभक्ति अथवा मुक्ति भी हम तुम्हें दे सकते हैं। वत्स! बोलो, इस समय तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है? वह सब तुम्हें देकर ही हम तपस्याके लिये जायँगे। जो क्षण श्रीकृष्णकी आराधनाके बिना व्यतीत होता है, वह लाख युगोंके समान है अर्थात् श्रीकृष्ण-भजनके बिना यदि एक क्षण भी व्यर्थ बीता तो समझना चाहिये कि हमारे एक लाख युग व्यर्थ बीत गये। जो दिन श्रीहरिके ध्यान और सेवनसे शून्य रह गया, वही सबसे बड़ा दुर्दिन है। जो मनुष्य श्रीहरिकी सेवा छोड़कर किसी दूसरे विषयको पानेकी इच्छा रखता है, वह मनोवाञ्छित अमृतको त्यागकर अपने ही विनाशके लिये मानो विष खाता है*। ब्रह्मा, शिव, धर्म, विष्णु, महाविष्णु (महानारायण), गणेश, सूर्य, शेष और सनकादि मुनि—ये दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक जिनके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं, उन जन्म, मृत्यु और जरारूप व्याधिको हर लेनेवाले श्रीकृष्णमें हम लोग सदा अनुरक्त रहते हैं।

सप्तर्षियोंकी यह बात सुनकर राजेश्वर नहुष लज्जित हो गया। उसका सिर झुक गया, तथापि मायासे मोहितचित्त होनेके कारण वह बोला।

**नहुषने कहा**—महर्षियो! आप लोग भक्तवत्सल हैं और सब कुछ देनेकी शक्ति रखते हैं। इस समय मैं शचीको पाना चाहता हूँ; अतः शीघ्र ही मुझे शचीका दान दीजिये। महासती शची ऐसे पतिको पाना चाहती है, जिसके वाहन सप्तर्षि हों। यही मेरा वर है। आप लोग शीघ्र ही मेरे अभीष्ट कार्यको सम्पन्न करें।

नारद! नहुषकी बात सुनकर सब मुनि कौतूहलवश एक-दूसरेको देखते हुए जोर-जोरसे हँसने लगे। राजाको भगवान् विष्णुकी मायासे वेष्टित एवं मोहित मानकर उन दीनवत्सल सप्तर्षियोंने कृपापूर्वक राजाका वाहन बननेकी प्रतिज्ञा कर ली। उसकी शिविका मुक्ता और माणिक्यसे सुशोभित थी। ऋषियोंने उसे कंधेपर उठा लिया और राजा नहुष सुन्दर वेष एवं रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो उस शिविकासे चला। उस वाहनद्वारा अभीष्ट स्थानपर पहुँचनेमें अधिक विलम्ब होता देख राजा सप्तर्षियोंको डाँटने-

---

* युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना । तद्दिनं दुर्दिनं यत्तद्ध्यानसेवनवर्जितम्॥
विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यं च वाञ्छति । विषमत्ति प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम्॥
(६०। ३२-३३)

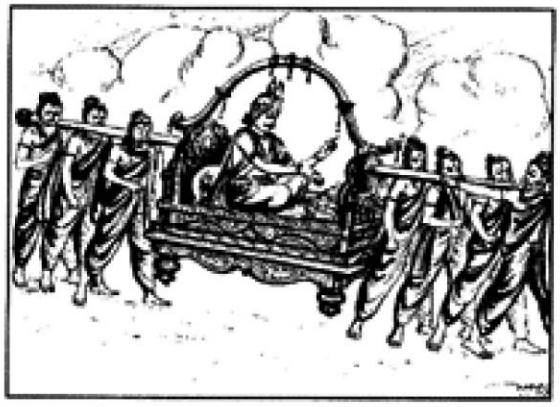

फटकारने लगा। शिविकाके उस मार्गपर सबसे आगे चलते थे दुर्वासा। उन्हें राजाकी फटकारपर क्रोध आ गया और वे शाप देते हुए बोले—'मूढ़चित्त महाराज! तुम महान् अजगर होकर नीचे गिर पड़ो। धर्मपुत्र युधिष्ठिरके दर्शन होनेसे तुम अजगरकी योनिसे छूट जाओगे। तत्पश्चात् रत्नमय विमानसे वैकुण्ठमें जाकर भगवान् विष्णुका सेवन करोगे। किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं होता। तुमने श्रीहरिकी आराधना की है; अत: शापसे छूटनेपर तुम्हें उसका फल अवश्य मिलेगा।'

महामुने! यों कहकर वे सब श्रेष्ठ मुनि हँसते हुए चले गये और राजा उनके शापसे सर्प होकर गिर पड़ा। वह समाचार सुनकर शची गुरुदेवको नमस्कार करके अमरावतीमें चली गयी और बृहस्पतिजी शीघ्र उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र कमल-नालमें निवास करते थे। सरोवरके निकट जाकर कृपानिधान गुरुने अत्यन्त प्रसन्नवदन हो कृपापूर्वक देवराजको पुकारा।

**बृहस्पति बोले**—वत्स! आओ। मेरे रहते तुम्हें क्या भय हो सकता है? भय छोड़ो और यहाँ आओ। मैं तुम्हारा गुरु बृहस्पति हूँ।

अपने गुरुका स्वर सुनकर महेन्द्रका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सूक्ष्मरूपको छोड़कर अपने ही रूपसे उनके निकट आये। उन्होंने भक्तिभावसे गुरुके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़कर सिरसे उन्हें प्रणाम किया और रोने लगे। उस समय महाभयभीत एवं रोते हुए इन्द्रको गुरुने सानन्द हृदयसे लगा लिया। फिर उनसे प्रायश्चित्तके लिये सोमयाग करवाकर उन्हें रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बिठाया और पहलेसे चौगुना उत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया। तदनन्तर सब देवता आकर उनकी सेवा करने लगे। शचीने पुन: अपने पति देवराज इन्द्रको प्राप्त कर लिया और निवासमन्दिरमें फूलोंकी सेजपर वह उनके साथ आनन्दपूर्वक सुखका अनुभव करने लगी। वत्स! इस प्रकार मैंने इन्द्रके दर्पके भञ्जन तथा शचीके सतीत्वकी रक्षाका प्रसङ्ग कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

तदनन्तर नारदके पूछनेपर श्रीनारायणने इन्द्रदर्प-भङ्गके ही प्रसङ्गमें गौतमके द्वारा इन्द्रको शाप प्राप्त होनेकी बात बतायी। साथ ही यह भी कहा कि अहल्या पतिके शापसे पाषाण-शिला हो गयी। गौतमने शाप देकर अहल्यासे कहा—'जाओ, जाओ। तुम विशाल वनमें पाषाणरूपिणी हो जाओ। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी अंगुलिका स्पर्श पाकर तत्काल पवित्र हो जाओगी। उसी पुण्यसे फिर मुझे पाओगी और मेरे पास चली आओगी। प्रिये! इस समय तो विशाल वनमें ही जाओ।' ऐसा कहकर वे मुनि तपस्याके लिये चले गये।

(अध्याय ६०-६१)

## अहल्याके उद्धार एवं श्रीराम-चरित्रका संक्षेपसे वर्णन

**नारदजीने पूछा**—ब्रह्मन्! दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने किस युगमें और किस प्रकार गौतमपत्नी अहल्याको शापसे मुक्त किया? महाभाग! आप रामावतारकी मनोहर एवं सुखदायिनी कथा संक्षेपसे कहिये; मेरे मनमें उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा हो रही है।

**श्रीनारायणने कहा**—नारद! त्रेतायुगमें ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे साक्षात् भगवान् विष्णुने दशरथसे उनकी पत्नी कौसल्याके गर्भसे सानन्द जन्म ग्रहण किया। कैकेयीसे भरत हुए, जो रामके समान ही गुणवान् थे और सुमित्राके गर्भसे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नका जन्म हुआ। वे दोनों ही

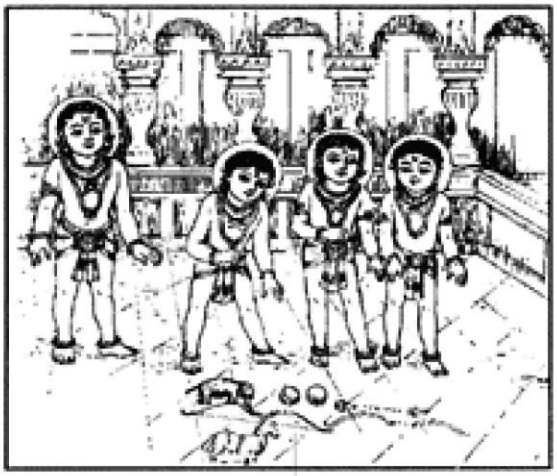

गुणोंके सागर थे। पिताद्वारा विश्वामित्रके साथ भेजे गये लक्ष्मणसहित श्रीराम सीताको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे रमणीया मिथिलापुरीमें गये। उसी मार्गमें पाषाणमयी स्त्रीको देखकर जगदीश्वर श्रीरामने विश्वामित्रसे उसके शिला होनेका कारण पूछा। श्रीरामका प्रश्न सुनकर महातपस्वी धर्मात्मा मुनि विश्वामित्रने वहाँ सारा रहस्य उन्हें बताया। उनके मुँहसे अहल्याके शिला होनेका कारण सुनकर अखिल भुवन-पावन श्रीरामने अपने चरणकी एक अंगुलिसे उस शिलाका स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाते ही अहल्या पद्मगन्धा सुन्दरी नारीके रूपमें परिणत हो गयी और श्रीरामको आशीर्वाद देकर वह पतिके घरमें चली गयी। पत्नीको पाकर गौतमने भी श्रीरामचन्द्रजीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर श्रीरामने मिथिलामें जाकर शिवका धनुष तोड़ा और सीताका पाणिग्रहण किया। सीतासे विवाह करके राजेन्द्र श्रीरामने परशुरामजीका दर्प चूर्ण किया और क्रीड़ा-कौतुक एवं मङ्गलाचारपूर्वक रमणीय अयोध्यापुरीको प्रस्थान किया। राजा दशरथने आदरपूर्वक सात तीर्थोंका जल मँगवाया और तत्काल ही मुनीश्वरोंको बुलाकर अपने पुत्र श्रीरामको राजा बनानेकी इच्छा की। श्रीराम सम्पूर्ण मङ्गलाचारसे सम्पन्न हो जब अधिवास-कर्म पूर्ण कर चुके, तब भरतकी माता कैकेयी ईर्ष्याजनित शोकसे विह्वल हो गयी। उसने राजा दशरथसे दो वर माँगे, जिन्हें देनेके लिये वे पहले प्रतिज्ञा कर चुके थे। उसने एक वरसे रामका वनवास माँगा और दूसरेके द्वारा भरतका राज्याभिषेक। महाराज दशरथ प्रेमसे मोहित होनेके कारण वर देना नहीं चाहते थे। यह देख श्रेष्ठ बुद्धिवाले श्रीराम धर्म और सत्यके भङ्ग होनेके भयसे महाराजसे बोले।

**श्रीरामने कहा**—तात! सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठसे बड़ा कोई पातक नहीं है। गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है; श्रीकेशवसे बढ़कर कोई देवता नहीं है; धर्मसे श्रेष्ठ बन्धु नहीं है और धर्मसे बढ़कर धन नहीं है। धर्मसे अधिक प्रिय और उत्तम कौन है? अतः आप यत्नपूर्वक अपने धर्मकी रक्षा कीजिये। स्वधर्मकी रक्षा करनेपर सदा और सर्वत्र मङ्गल होता है।

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

**शूर्पणखाने कहा**—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

**ब्रह्माजी बोले**—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

---

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् । न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् । धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६२। २१—२३)

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

**शूर्पणखाने कहा**—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

**ब्रह्माजी बोले**—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

---

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् । न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् । धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६२। २१—२३)

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

**शूर्पणखाने कहा**—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

**ब्रह्माजी बोले**—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

---

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् । न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् । धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६२। २१—२३)

जानकीकी खोजके लिये दिन-रात शोकार्त हो गहन वन, पर्वत, कन्दरा, नद, नदी और मुनियोंके आश्रमोंमें घूमने लगे। सुदीर्घ कालतक अन्वेषण करनेपर भी जब उन्हें जानकीका पता न चला, तब भगवान् श्रीरामने स्वयं ही जाकर वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता की और वालीको बाणोंसे मारकर उनका राज्य सुग्रीवको दे दिया। यह सब उन्होंने अपने मित्रके प्रति की गयी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये किया था। वानरराजने सीताका पता लगानेके लिये समस्त दिशाओंमें दूत भेजे और लक्ष्मणसहित श्रीराम सुग्रीवके यहाँ रहने लगे। श्रीरामने हनुमान्‌जीको प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर उन्हें अपनी परम दुर्लभ पदधूलि प्रदान की और सीताके लिये पहचानके रूपमें श्रेष्ठ एवं सुन्दर रत्नमयी मुद्रिका उनके हाथमें देकर अपना शुभ संदेश भी प्रदान किया, जो सीताकी जीवन-रक्षाका कारण बना। यह सब करनेके पश्चात् उन्होंने हनुमान्‌जीको उत्तम दक्षिण दिशामें भेजा। हनुमान्‌जी रुद्रकी कलासे प्रकट हुए थे। वे श्रीरामका संदेश ले सीताकी खोजके लिये लंकाको गये। वहाँ उन्होंने अशोकवाटिकामें सीताजीको देखा, जो शोकसे अत्यन्त कृश दिखायी देती थीं। अमावास्याको अत्यन्त क्षीण हुई चन्द्रकलाके समान वे उपवासके कारण बहुत ही दुबली-पतली हो गयी थीं और निरन्तर भक्तिपूर्वक 'राम-राम' का जप कर रही थीं। उनके सिरके बाल जटाओंका बोझ बन गये थे। अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति दमक रही थी। वे दिन-रात श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान किया करती थीं। शुद्ध भूमिपर सोती थीं। शुद्ध आचार-विचार तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पतिव्रता थीं। उनमें महालक्ष्मीके चिह्न विद्यमान थे। वे अपने तेजसे प्रकाशमान थीं। सम्पूर्ण तीर्थोंको पुण्य प्रदान करनेवाली थीं। उनमें दृष्टिमात्रसे समस्त भुवनोंको पवित्र करनेकी क्षमता थी। उस समय रोती हुई माता जानकीको देखकर पवननन्दन हनुमान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक उनके हाथमें वह रत्नमयी मुद्रिका दे दी। धर्मात्मा वायुपुत्र सीताकी दशा देखकर उनके चरणकमलोंको पकड़कर रोने लगे। उन्होंने श्रीरामका वह संदेश सुनाया, जो सीताजीके जीवनकी रक्षा करनेवाला था।

**हनुमान्‌जी बोले**—मातः! समुद्रके उस पार श्रीराम और लक्ष्मण इस राक्षसपुरीपर चढ़ाई करनेके लिये तैयार खड़े हैं। बलवान् वानरराज सुग्रीव श्रीरामके मित्र हो गये हैं। श्रीरामने वालीका वध करके अपने मित्र सुग्रीवको निष्कण्टक राज्य दिया है। साथ ही उन्हें उनकी पत्नी भी प्राप्त करा दी है, जिसे पहले वालीने हर लिया था। सुग्रीवने भी धर्मतः तुम्हारे उद्धारकी प्रतिज्ञा की है। उनके समस्त वानर तुम्हें खोजनेके लिये सब ओर गये हैं। मुझसे तुम्हारा मङ्गलमय समाचार पा कमलनयन श्रीराम गहरे सागरपर सेतु बाँधकर शीघ्र यहाँ आ पहुँचेंगे और पापी रावणको उसके पुत्र तथा बान्धवोंसहित मारकर अविलम्ब तुम्हारा उद्धार करेंगे। आज तुम्हारे प्रसादसे इस रत्नमयी लंकाको मैं बेखटके जलाकर भस्म कर दूँगा। तुम मुस्कराती हुई मेरे इस पराक्रमको देखो। सुव्रते! मैं लंकाको वानरीके बच्चेकी भाँति समझता हूँ। समुद्रको मूत्रके समान और भूतलको परईकी भाँति देखता हूँ। सेनासहित रावण मेरी दृष्टिमें चींटियोंके समूह-जैसा है। मैं आधे मुहूर्तमें अनायास ही उसका संहार कर सकता हूँ; परंतु इस समय श्रीरामकी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उसे नहीं मारूँगा। महाभागे! तुम स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जाओ। मेरी स्वामिनि! भयको त्याग दो।

वानरकी बात सुनकर सीता बारंबार फूट-फूटकर रोने लगीं। रामकी उन पतिव्रता पत्नीने भयभीत-सी होकर पूछा।

**सीता बोलीं**—वत्स! क्या मेरे दारुण शोकसागरसे पीड़ित श्रीराम अभी जीवित हैं? मेरे प्राणनाथ कौसल्यानन्दन सकुशल हैं? जानकीके जीवनबन्धु इस समय शोकसे कृशकाय होकर कैसे हो गये हैं? मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम कैसे आहार करते हैं? वे क्या खाते हैं? क्या सचमुच समुद्रके उस पार स्वयं सीतापति विद्यमान हैं? मेरे प्रभु शोकसे नष्ट न होकर क्या सचमुच लंकापर चढ़ाईके लिये तैयार खड़े हैं? जो स्वामीके लिये सदा दुःखरूप ही रही है, उसी मुझ पापिनी सीताको क्या वे स्मरण करते हैं? मेरे स्वामीने मेरे लिये कितना दुःख सहन किया है? जो पहले मिलनमें व्यवधान मानकर अपने कण्ठमें हार नहीं धारण करते थे, वे ही श्रीराम आज इतने दूर हैं! इस समय हम दोनोंके बीचमें सौ योजन विशाल समुद्र व्यवधान बनकर खड़ा है। क्या मैं कभी धर्म-कर्ममें संलग्न, धर्मिष्ठ, नितान्त शान्त करुणासागर प्रियतम भगवान् श्रीरामको देखूँगी? क्या पुनः प्रभुके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँगी? जो मूढ़ नारी पति-सेवासे वञ्चित है, उसका जीवन व्यर्थ है। जो मेरे धर्मपुत्र हैं और मेरे बिना शोकसागरमें मग्न हैं, मेरा अपहरण होनेसे जिनके अभिमानको गहरा आघात पहुँचा है, जो वीरोंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा और देवताके समान हैं; वे मेरे स्वामीके छोटे भाई देवर लक्ष्मण क्या सचमुच जीवित हैं? क्या यह सच है कि वे सदा मेरे उद्धारके लिये संनद्ध रहते हैं? क्या सचमुच प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, धर्मात्मा, पुण्यात्मा तथा धन्यातिधन्य वत्स लक्ष्मणको मैं पुनः देखूँगी?

मुने! सीताका यह वचन सुन उन्हें शुभ प्रत्युत्तर दे हनुमान्‌ने खेल-खेलमें ही लंकाको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर वायुपुत्र कपिवर हनुमान् पुनः जनकनन्दिनीको धीरज दे वेगपूर्वक बिना किसी परिश्रमके उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे। वहाँ उन्होंने माता मिथिलेशकुमारीका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सीताका मङ्गलमय समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजी रो पड़े। लक्ष्मण और सुग्रीव भी फूट-फूटकर रोने लगे। नारद! उस समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न समस्त वानर भी रोदन करने लगे। देवर्षे! तदनन्तर समुद्रमें सेतु बाँधकर छोटे भाई और वानर-सेनासहित रघुकुलनन्दन श्रीरामने शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो लंकापर चढ़ाई कर दी। ब्रह्मन्! वहाँ युद्ध करके श्रीरामने बन्धु-बान्धवोंसहित रावणको मार डाला और शुभ वेलामें सीताका वहाँसे उद्धार किया। फिर सत्यपरायणा सीताको पुष्पक विमानपर बिठाकर वे क्रीड़ाकौतुक एवं मङ्गलाचारके साथ शीघ्रतापूर्वक अयोध्याकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर भगवान् रामने सीताको हृदयसे लगा क्रीड़ा की। फिर सीता और रामने तत्काल विरह-ज्वालाको त्याग दिया। भूमण्डलपर श्रीराम सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। उनके शासनकालमें सारी पृथ्वी आधि-व्याधिसे रहित हो गयी। श्रीरामके दो धर्मात्मा पुत्र हुए—कुश और लव। उन दोनोंके पुत्रों और पौत्रोंसे सूर्यवंशी क्षत्रियोंका विस्तार हुआ। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे मङ्गलमय श्रीरामचरित्रका वर्णन किया है। यह सुख देनेवाला, मोक्ष प्रदान करनेवाला, सारतत्त्व तथा भवसागरसे पार होनेके लिये जहाज है। (अध्याय ६२)

## कंसके द्वारा रातमें देखे हुए दुःस्वप्नोंका वर्णन और उससे अनिष्टकी आशङ्का, पुरोहित सत्यकका अरिष्ट-शान्तिके लिये धनुर्यज्ञका अनुष्ठान बताना, कंसका नन्दनन्दनको शत्रु बताना और उन्हें व्रजसे बुलानेके लिये वसुदेवजीको प्रेरित करना, वसुदेवजीके अस्वीकार करनेपर अक्रूरको वहाँ जानेकी आज्ञा देना, ऋषिगण तथा राजाओंका आगमन

**भगवान् नारायण कहते हैं**—नारद! इधर मथुरामें राजा कंस बुरे सपने देख विशेष चिन्तामें पड़कर अत्यन्त भयभीत हो उद्विग्न हो उठा। उसकी खाने-पीनेकी रुचि जाती रही। उसके मनमें किसी प्रकारकी उत्सुकता नहीं रह गयी। वह अत्यन्त दुःखी हो पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धव तथा पुरोहितको सभामें बुलाकर उनसे इस प्रकार बोला।

**कंसने कहा**—मैंने आधी रातके समय जो बुरा सपना देखा है, वह बड़ा भयदायक है; इस सभामें बैठे हुए समस्त विद्वान्, बन्धु-बान्धव और पुरोहित उसे सुनें। मेरे नगरमें एक अत्यन्त वृद्धा और काले शरीरवाली स्त्री नाच कर रही है। वह लाल फूलोंकी माला पहने, लाल चन्दन लगाये तथा लाल वस्त्र धारण किये स्वभावतः अट्टहास

कर रही है। उसके एक हाथमें तीखी तलवार है और दूसरेमें भयानक खप्पर। वह जीभ लपलपाती हुई बड़ी भयंकर दिखायी देती है। इसी तरह एक दूसरी काली स्त्री है, जो काले कपड़े पहने हुई है। देखनेमें महाशूद्री विधवा जान पड़ती है। उसके केश खुले हैं और नाक कटी हुई है। वह मेरा आलिङ्गन करना चाहती है। उसने मलिन वस्त्रखण्ड, रूखे केश तथा चूर्ण तिलक धारण कर रखे हैं। पुरोहित सत्यकजी! मैंने देखा है कि मेरे कपाल और छातीपर ताड़के पके हुए काले रंगके छिन्न-भिन्न फल बड़ी भारी आवाजके साथ गिर रहे हैं। एक मैला-कुचैला विकृत आकार तथा रूखे केशवाला म्लेच्छ मुझे आभूषण बनानेके निमित्त टूटी-फूटी कौड़ियाँ दे रहा है। एक पति-पुत्रवाली दिव्य सती स्त्रीने अत्यन्त रोषसे भरकर बारंबार अभिशाप दे भरे हुए घड़ेको फोड़ डाला है। यह भी देखा कि महान् रोषसे भरा हुआ एक ब्राह्मण अत्यन्त शाप दे मुझे अपनी पहनी हुई माला, जो कुम्हलाई नहीं थी और रक्त चन्दनसे चर्चित थी, दे रहा है। यह भी देखनेमें आया कि मेरे नगरमें एक-एक क्षण अङ्गार, भस्म तथा रक्तकी वर्षा हो रही है। मुझे दिखायी दिया कि वानर, कौए, कुत्ते, भालू, सूअर और गदहे विकट आकारमें भयानक शब्द कर रहे हैं। सूखे काष्ठोंकी राशि जमा है, जिसकी कालिमा मिटी नहीं है। अरुणोदयकी बेलामें मुझे बंदर और कटे हुए नख दृष्टिगोचर हुए। मेरे महलसे एक सती स्त्री निकली, जो पीताम्बर धारण किये, श्वेत चन्दनका अङ्गराग लगाये, मालतीकी माला धारण किये रत्नमय

आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके हाथमें क्रीड़ा-कमल शोभा पा रहा था और भालदेश सिन्दूर-बिन्दुसे सुशोभित था। वह रुष्ट हो मुझे शाप देकर चली गयी। मुझे अपने नगरमें कुछ ऐसे पुरुष प्रवेश करते दिखायी दिये, जिनके हाथोंमें फंदा था। उनके केश खुले हुए थे। वे अत्यन्त रूखे और भयंकर जान पड़ते थे। घर-घरमें एक नंगी स्त्री मन्द मुसकानके साथ नाचती दिखायी देती है, जिसके केश खुले हैं और आकार बड़ा विकट है। एक नंगी विधवा महाशूद्री, जिसकी नाक कटी हुई है और जो अत्यन्त भयंकर है, मेरे अङ्गोंमें तेल लगा रही है। अतिशय प्रातःकालमें मैंने कुछ ऐसी विचित्र स्त्रियाँ देखीं, जो बुझे हुए अङ्गार (कोयले) लिये हुए थीं। उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था तथा वे सम्पूर्ण अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए मुस्करा रही थीं। सपनेमें मुझे नृत्य-गीतसे मनोहर लगनेवाला विवाहोत्सव दिखायी दिया। कुछ ऐसे पुरुष भी दृष्टिगोचर हुए, जिनके कपड़े और केश भी लाल थे। एक नंगा पुरुष दीखा, जो देखनेमें भयंकर था, जो कभी रक्त-वमन करता, कभी नाचता, कभी दौड़ता और कभी सो जाता था। उसके मुखपर सदा मुस्कराहट दिखायी देती थी। बन्धुओ! एक ही समय आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके मण्डलपर सर्वग्रास ग्रहण लगा दृष्टिगोचर हुआ है। पुरोहितजी! मैंने स्वप्नमें उल्कापात, धूमकेतु, भूकम्प, राष्ट्र-विप्लव, झंझावात और महान् उत्पात देखा है। वायुके वेगसे वृक्ष झोंके खा रहे थे। उनकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं। पर्वत भी भूमिपर ढहे दिखायी देते थे। घर-घरमें ऊँचे कदका एक नंगा पुरुष नाच रहा था, जिसका सिर कटा हुआ था। उस भयानक पुरुषके हाथमें नरमुण्डोंकी माला दिखायी देती थी। सारे आश्रम जलकर अङ्गारके भस्मसे भर गये थे और सब लोग चारों ओर हाहाकार करते दिखायी देते थे।

नारद! यों कहकर राजा कंस सभामें चुप हो गया। वह स्वप्न सुनकर सब भाई-बन्धु सिर नीचा किये लंबी साँस खींचने लगे। अपने यजमान कंसके शीघ्र होनेवाले विनाशको जानकर पुरोहित सत्यक तत्काल अचेत-से हो गये। राजभवनकी स्त्रियाँ तथा कंसके माता-पिता शोकसे रोने लगे। सबको यह विश्वास हो गया कि अब शीघ्र ही कंसका विनाशकाल स्वयं उपस्थित होनेवाला है।

**श्रीनारायण कहते हैं**—मुने! बुद्धिमान् पुरोहित सत्यक शुक्राचार्यके शिष्य थे। उन्होंने सब बातोंपर विचार करके कंसके लिये हितकी बात बतायी।

**सत्यक बोले**—महाभाग! भय छोड़ो। मेरे रहते तुम्हें भय किस बातका है? महेश्वरका यज्ञ करो, जो समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला है। इस महेश्वर-यागका नाम है—धनुर्यज्ञ, जिसमें बहुत-सा अन्न खर्च होता है और बहुत दक्षिणा बाँटी जाती है। वह यज्ञ दुःस्वप्नोंका विनाश तथा शत्रुभयका निवारण करनेवाला है। उस यज्ञसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और उत्कट आधिभौतिक—इन तीन तरहके उत्पातोंका खण्डन होता है। साथ ही वह ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाला है। यज्ञ समाप्त होनेपर समस्त सम्पदाओंके दाता भगवान् शंकर प्रत्यक्ष दर्शन देते और ऐसा वर प्रदान करते हैं, जिससे जरा और मृत्युका निवारण हो जाता है। पूर्वकालमें महाबली बाण, नन्दी, परशुराम तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ भक्तने इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। पहले भगवान् शिवने इस यज्ञसे संतुष्ट होकर यह दिव्य धनुष नन्दीश्वरको दिया था। धर्मात्मा नन्दीश्वरने बाणासुरको दिया। फिर यज्ञ करके महासिद्ध हुए बाणासुरने पुष्करतीर्थमें यह धनुष परशुरामजीको अर्पित कर दिया। कृपानिधान परशुरामजीने कृपापूर्वक अब तुमको यह धनुष दे दिया है। नरेश्वर! यह धनुष

बड़ा ही कठोर (मजबूत) है। इसकी लंबाई एक सहस्र हाथकी है। खींचनेपर यह दस हाथतक फैलता है। इसका भगवान् शंकरकी इच्छासे निर्माण हुआ है। पशुपतिका यह पाशुपत धनुष जुते हुए रथके द्वारा भी कठिनाईसे ही ढोया जाता है। भगवान् नारायणदेवको छोड़कर अन्य सब लोग कभी इसे तोड़ नहीं सकते। भगवान् शंकरके इस कल्याणकारी यज्ञमें तुम शीघ्र ही इस धनुषकी पूजा करो और शुभ कर्ममें भेजनेयोग्य निमन्त्रण सबके पास भेज दो। नरेश्वर! इस यज्ञमें यदि धनुष टूट जायगा तो यजमानका नाश होगा, इसमें संशय नहीं है। धनुष टूटनेपर निश्चय ही यज्ञ भी भङ्ग हो जाता है। जब यज्ञ-कर्म सम्पन्न ही नहीं होगा तो उसका फल कौन देगा? महामते! इस धनुषके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें स्वयं नारायण और अग्रभागमें उग्र प्रतापशाली महादेवजी प्रतिष्ठित हैं। इस धनुषमें तीन विकार हैं तथा यह श्रेष्ठ रत्नोंद्वारा जटित है। ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक प्रचण्ड मार्तण्डकी प्रभाको यह धनुष अपनी दिव्य दीप्तिसे दबा देता है। राजन्! महाबली अनन्त, सूर्य तथा कार्तिकेय भी इस धनुषको झुकानेमें समर्थ नहीं हैं; फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? पूर्वकालमें त्रिपुरारि शिवने इसीके द्वारा त्रिपुरासुरका वध किया था। तुम इस महोत्सवके लिये बिना किसी भयके स्वेच्छापूर्वक माङ्गलिक कार्य आरम्भ करो।

सत्यककी यह बात सुनकर चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले कंसने सभी कार्योंमें सदा यजमानका हित चाहनेवाले पुरोहितजीसे कहा।

**कंस बोला**—पुरोहितजी! वसुदेवके घरमें मेरा वध करनेवाला एक कुलनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ है, जो नन्दके भवनमें नन्दनन्दन होकर स्वच्छन्दतापूर्वक पालित-पोषित हो रहा है। उस बलवान् बालकने मेरे बुद्धिमान् मन्त्रियों, शूरवीर बान्धवों तथा पवित्र बहिन पूतनाको मार डाला है। वह इच्छानुसार अपने बलको बढ़ा लेता है। उसने गोवर्द्धन पर्वतको एक हाथपर ही धारण कर लिया था और शूरवीर महेन्द्रको भी पराजित कर दिया था। उसने ब्रह्माजीको समस्त चराचर जगत्का ब्रह्मरूपमें दर्शन कराया था तथा बालकों और बछड़ोंके कृत्रिम समुदायकी रचना कर ली थी। सत्यकजी! उस बलवान् बालकका वध करनेके लिये ही कोई सलाह दीजिये। निश्चय ही इस भूतलपर, स्वर्ग और पातालमें एवं तीनों लोकोंमें उसके सिवा दूसरा कोई मेरा शत्रु नहीं है। सर्वत्र जो श्रेष्ठ राजा हैं, वे मेरे प्रति बान्धवभाव रखते हैं। ब्रह्माजी और भगवान् शंकर तो तपस्वी हैं। उन्हें तपस्यासे ही छुट्टी नहीं है। रह गये सनातन भगवान् विष्णु; परंतु वे भी सबके आत्मा हैं और सबपर समान दृष्टि रखते हैं। यदि नन्दपुत्रको मार डालूँ तो तीनों लोकोंमें मेरा सम्मान बढ़ जायगा। मैं सार्वभौम सम्राट् एवं सातों द्वीपोंका महाराज हो जाऊँगा। स्वर्गमें जो इन्द्र हैं, वे भी दैत्योंसे परास्त होनेके कारण दुर्बल ही रहते हैं; अतः उनका वध करके मैं महेन्द्र हो जाऊँगा। इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होकर मैं सूर्यको, राजयक्ष्मासे ग्रस्त हुए अपने ही पूर्वपुरुष चन्द्रमाको तथा वायु, कुबेर और यमको भी निश्चय ही जीत लूँगा; अतः आप शीघ्र ही नन्द-व्रजमें जाइये और नन्द, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा उसके बलवान् भाई बलरामको भी अभी बुला लाइये।

कंसकी बात सुनकर सत्यकने हितकर, सत्य, नीतिका सारभूत, उत्तम एवं समयोचित वचन कहा।

**सत्यक बोले**—महाभाग! तुम नन्द-व्रजके अभीष्ट स्थानमें अक्रूर, उद्धव अथवा वसुदेवजीको भेजो।

सत्यककी बात सुनकर उसी सभामें स्वर्णसिंहासनपर बैठे हुए वसुदेवजीसे उसने कहा।

**राजेन्द्र कंस बोला**—मेरे प्रिय बन्धु

वसुदेवजी! आप नीतिशास्त्रके तत्त्वज्ञ और उपाय ढूँढ़ निकालनेमें चतुर हैं; अतः नन्द-व्रजमें अपने पुत्रके घर आप ही जाइये। वृषभानु, नन्दराय, बलराम, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा समस्त गोकुल-वासियोंको यज्ञमें यहाँ शीघ्र बुला लाइये। मेरे दूत समस्त राजाओं तथा मुनियोंको इसकी सूचना देनेके लिये चिट्ठी लेकर चारों दिशाओंमें जायँ।

ब्रह्मन्! राजाकी बात सुनकर वसुदेवजीके ओठ, तालु और कण्ठ सूख गये; वे व्यथित-हृदयसे बोले।

**वसुदेवजीने कहा**—राजेन्द्र! इस कार्यके लिये इस समय नन्द-व्रजमें मेरा जाना उचित नहीं होगा। मुझ वसुदेवके पुत्र अथवा नन्दनन्दनको इस यज्ञका समाचार मैं दूँ और अपने साथ बुलाकर लाऊँ—यह किसी दृष्टिसे उचित नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हारे यज्ञ-महोत्सवमें नन्दपुत्रका आगमन हुआ तो अवश्य ही तुम्हारे साथ उसका विरोध होगा; अतः मैं उस बालकको बुलाकर यहाँ युद्ध करवाऊँ—यह मेरी दृष्टिमें श्रेयस्कर नहीं है। इसमें उस बालककी और तुम्हारी भी हानि हो सकती है। यदि वह बालक मारा गया तो सब लोग यही कहेंगे कि पिताने ही साथ ले जाकर कृष्णको मरवा दिया और यदि तुम्हें कुछ हो गया, तब लोग कहने लगेंगे कि वसुदेवने अपने पुत्रके द्वारा राजाको ही मौतके घाट उतार दिया। दोमेंसे एककी तत्काल मृत्यु होगी; यह निश्चित है। इसके सिवा और भी बहुत-से शूरवीर धराशायी होंगे; क्योंकि युद्ध कभी निरापद नहीं होता।

मुने! वसुदेवजीकी यह बात सुनकर राजेन्द्र कंसके नेत्र रोषसे लाल हो गये। वह तलवार लेकर उन्हें मार डालनेके लिये आगे बढ़ा। यह देख अत्यन्त बलवान् उग्रसेनने 'हाय! हाय!' करके अपने पुत्र महाराज कंसको तत्काल रोक दिया। रोषसे भरे हुए वसुदेव अपने आसनसे उठकर घरको चले गये। तब राजा कंसने अक्रूरको नन्द-व्रजमें जानेके लिये कहा और शीघ्र ही प्रत्येक दिशामें दूत भेजे। कंसका निमन्त्रण पाकर समस्त मुनि और नरेश आवश्यक सामानोंके साथ वहाँ आये। समस्त दिक्पाल, देवता, तपस्वी ब्राह्मण, सनकादि मुनि, पुलस्त्य, भृगु, प्रचेता, जाबालि और मार्कण्डेय आदि बहुत-से महान् ऋषिगण अपने शिष्योंसहित पधारे। हम दोनों भाई (नर और नारायण) भी

वहाँ पहुँचे थे। राजाओंमें जरासंध, दन्तवक्र, द्रविड-नरेश दाम्भिक, शिशुपाल, भीष्मक, भगदत्त, मुद्गल, धृतराष्ट्र, धूमकेश, धूमकेतु, शंबर, शल्य, सत्राजित, शंकु तथा अन्यान्य महाबली नरेश आये थे। इनके सिवा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महाबली अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शाल्व, कैकेय तथा कौशल भी पधारे थे। महाराज कंसने सबके साथ यथोचित सम्भाषण किया और पुरोहित सत्यकने यज्ञके दिन शुभ कृत्यका सम्पादन किया।

(अध्याय ६३-६४)

## भगवद्दर्शनकी सम्भावनासे अक्रूरके हर्षोल्लास एवं प्रेमावेशका वर्णन

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! कंसकी बात सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ शान्तस्वरूप अक्रूरके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे शान्तस्वभाव उद्धवसे बोले।

**अक्रूरने कहा**—उद्धव! आजकी रातका बड़ा सुन्दर प्रभात हुआ। आज मेरे लिये शुभ दिन प्राप्त हुआ है। निश्चय ही देवता, ब्राह्मण और गुरु मुझपर संतुष्ट हैं। करोड़ों जन्मोंके पुण्य आज स्वयं मुझे फल देनेको उपस्थित हैं। मेरा जो-जो शुभाशुभ कर्म था, वह सब मेरे लिये सुखद हो गया। कर्मसे बँधे हुए मुझ अक्रूरका बन्धन आज कर्मने ही काट दिया। मैं संसाररूपी कारागारसे मुक्त होकर श्रीहरिके धामको जा रहा हूँ। विद्वान् कंसने आज रोषवश मुझे मित्रार्थी बना दिया। इस नरदेवका क्रोध मेरे लिये वरदान-तुल्य हो गया। इस समय व्रजराजको लानेके लिये मैं व्रजमें जाऊँगा और वहाँ भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले परमपूज्य परमात्मा श्रीकृष्णके दर्शन करूँगा। नूतन जलधरके समान श्यामकान्ति, नीलकमलके सदृश नेत्र तथा कटिप्रदेशमें पीताम्बर धारण करनेवाले वे भगवान् या तो व्रजकी धूलिसे धूसरित होंगे या चन्दनसे चर्चित होंगे अथवा उनके अङ्गोंमें नवनीत लगा होगा और वे मुस्करा रहे होंगे। इस झाँकीमें मैं उनके दर्शन करूँगा। विनोदके लिये मुरली बजाते अथवा इधर-उधर झुंड-की-झुंड गौएँ चराते हुए या कहीं बैठे, चलते-फिरते अथवा सोते हुए उन मनोहर नन्दनन्दनको मैं देखूँगा; यह पूर्णतः निश्चित है। शुभ बेलामें आज भगवान्‌का भलीभाँति दर्शन करके जो सुख मिलेगा, उसके सामने राजाका आदेश क्या महत्त्व रखता है? ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि जिनके चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान करते हैं तथा अनन्तविग्रह भगवान् अनन्त भी जिनका अन्त नहीं जानते हैं, देवता और संत भी जिनके प्रभावको सदा नहीं समझ पाते हैं, जिनकी स्तुति करनेमें देवी सरस्वती भी भयभीत एवं जडवत् हो जाती हैं, जिनकी सेवाके लिये महालक्ष्मी भी दासी नियुक्त की गयी हैं तथा जिनके चरणकमलोंसे उन सत्त्वरूपिणी गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है, जो तीनों लोकोंसे उत्कृष्ट, जन्म-मृत्यु एवं जरारूप व्याधिको हर लेनेवाली और दर्शन एवं स्पर्शमात्रसे मनुष्योंके समस्त पातकोंको नष्ट कर देनेवाली हैं, त्रैलोक्यजननी, मूलप्रकृति ईश्वरी दुर्गतिनाशिनी देवी दुर्गा भी जिनके चरणकमलोंका ध्यान करती हैं, जिन स्थूलसे भी स्थूलतर महाविष्णुके रोमकूपोंमें असंख्य विचित्र ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, वे भी जिन सर्वेश्वरके सोलहवें अंशरूप हैं, उन माया-मानवरूपधारी श्रीकृष्णको देखनेके लिये मैं व्रजमें जाता हूँ। बन्धु उद्धव! वे नन्दनन्दन सर्वरूप, सबके अन्तरात्मा, सर्वज्ञ, प्रकृतिसे परे, ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तजनोंपर अनुग्रहके लिये दिव्य विग्रह धारण करनेवाले, निर्गुण, निरीह, निरानन्द, सानन्द, निराश्रय एवं परम परमानन्दस्वरूप हैं। उन्हीं स्वेच्छामय, सबसे परे विराजमान, सबके सनातन बीजरूप बालमुकुन्दका योगीजन नित्य-निरन्तर अहर्निश ध्यान करते रहते हैं।

पहले पाद्मकल्पमें कमलजन्मा ब्रह्माजीने कमलपर बैठकर एक सहस्र मन्वन्तरोंतक श्रीकृष्ण-दर्शनके लिये तपस्या की थी। उन दिनों सर्वथा उपवासके कारण उनका पेट पीठमें सट गया था। सहस्र मन्वन्तर पूर्ण होनेपर उन्हें आदेश मिला कि 'फिर तपस्या करो, तब मुझे देखोगे।' उन्हें एक बार यह शब्दमात्र सुनायी दिया। इतनी बड़ी तपस्या करनेपर भी वे भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन न पा सके। तब उन्होंने पुनः उतने ही समयतक तपस्या करके श्रीहरिका दर्शन और वरदान पाया। उद्धव! ऐसे परमेश्वरको

मैं आज अपनी आँखोंसे देखूँगा। पूर्वकालमें भगवान् शंकरने ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त तप किया। तब ज्योतिर्मण्डलके बीच गोलोकमें परमात्मा श्रीकृष्णके उन्हें दर्शन हुए। वे श्रीकृष्ण सर्वतत्त्व-स्वरूप और सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न हैं। वे सबके अपने तथा सर्वश्रेष्ठ परमतत्त्व हैं। भगवान् शिवने उनके चरणारविन्दोंकी परम निर्मल भक्ति पायी। उद्धव! जिन भक्तवत्सलने अपने भक्त शिवको अपने समान ही बना दिया, ऐसे प्रभावशाली उन परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा। जितने समयमें सहस्र इन्द्रोंका पतन हो जाता है, उतने कालतक निराहार रहकर कृशोदर हुए भगवान् अनन्तने उन परमात्माकी प्रसन्नताके लिये भक्तिभावसे तपस्या की। तब उन्होंने उन अनन्त देवको अपने समान ज्ञान प्रदान किया। उद्धव! उन्हीं परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा। उद्धवजी! अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन हो जानेपर ब्रह्माजीका एक दिन-रात होता है। इसी क्रमसे तीस दिनोंका मास और बारह मासोंका वर्ष मानकर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीकी आयु पूरी होती है। अहो! ऐसे ब्रह्माका पतन जिनके एक निमेषमें हो जाता है, उन परमात्माको आज मैं प्रत्यक्ष देखूँगा। भाई उद्धव! जैसे भूतलके धूलि-कणोंकी गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार ब्रह्माओं तथा ब्रह्माण्डोंकी गणना भी असम्भव है। उन अखिल ब्रह्माण्डोंके आधार हैं महाविराट्, जो श्रीकृष्णके षोडशांशमात्र हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, मुनि, मनु, सिद्ध तथा मानव आदि चराचर प्राणी वास करते हैं। ब्रह्माण्डोंके आधारभूत वे महाविराट् भी, जिनका सोलहवाँ अंश हैं और जिनकी लीलामात्रसे आविर्भूत एवं तिरोभूत होते हैं; ऐसे सर्वशासक परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा।

ऐसा कहकर अक्रूरजी प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा और वे नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए भगवच्चरणारविन्दोंका ध्यान करने लगे। उनका हृदय भक्तिसे भर गया। वे परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका स्मरण करते हुए भावनासे ही उनकी परिक्रमा करने लगे। उद्धवने अक्रूरको हृदयसे लगा लिया और बारंबार उनकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् अक्रूरजी भी शीघ्र ही अपने घरको चले गये। (अध्याय ६५)

## श्रीराधाका श्रीकृष्णको अपने दुःस्वप्न सुनाना और उनके बिना अपनी दयनीय स्थितिका चित्रण करना, श्रीकृष्णका उन्हें सान्त्वना देना और आध्यात्मिक योगका श्रवण कराना

**श्रीनारायण कहते हैं**—उसी दिन राधाने रात्रिमें बड़े बुरे सपने देखे। उन्होंने उठकर श्रीकृष्णसे कहा।

**राधिका बोलीं**—प्रभो! मैं रत्नसिंहासनपर रत्नमय छत्र धारण किये बैठी थी। उसी समय रोषसे भरे हुए एक ब्राह्मणने आकर मेरा वह छत्र ले लिया और मुझ अबलाको ही महाघोर कज्जलाकार दुस्तर गम्भीर सागरमें फेंक दिया। मैं शोकसे पीड़ित हो वहाँ जलके प्रवाहमें बारंबार चक्कर काटने लगी। घड़ियालोंसे भरे उस समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरोंके वेगसे टकराकर मैं व्याकुल हो गयी और बारंबार तुम्हें पुकारने लगी—'हे नाथ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' तुम्हें न देखकर मैं महान् भयमें पड़ गयी और देवतासे प्रार्थना करने लगी। श्रीकृष्ण! समुद्रमें डूबती हुई मैंने देखा, चन्द्रमण्डलके सैकड़ों टुकड़े हो गये हैं और वह आकाशसे भूतलपर गिर रहा है। दूसरे ही क्षण मुझे दिखायी दिया कि सूर्यमण्डल भी आकाशसे पृथ्वीपर गिर

पड़ा और उसके चार टुकड़े हो गये। फिर एक ही समयमें आकाशके भीतर चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलको मैंने पूर्णतः राहुसे ग्रस्त और अत्यन्त काला देखा। एक ही क्षणके बाद देखती हूँ कि एक तेजस्वी ब्राह्मणने रोषपूर्वक आकर मेरी गोदमें रखे हुए अमृत-कलशको फोड़ डाला। क्षणभर बाद यह दिखायी दिया कि वह महारुष्ट ब्राह्मण मेरे नेत्रगत पुरुषको पकड़कर लिये जा रहा है। प्रभो! मेरे हाथसे क्रीड़ा-कमल-दण्ड सहसा गिर पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उत्तम रत्नोंके सारभागसे बना हुआ दर्पण भी सहसा हाथसे गिरकर टूक-टूक हो गया। जो पहले निर्मल था, वह पीछे काला दिखायी देने लगा था। मेरा रत्नसारनिर्मित हार और कमल छिन्न-भिन्न हो वक्षःस्थलसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा। कमल अत्यन्त मलिन पड़ गया था। मेरी अट्टालिकामें जो पुतलियाँ बनी हैं, वे सब-की-सब क्षण-क्षणमें नाचती, हँसती, ताल ठोकती, गाती और रोती दिखायी दीं। आकाशमें काले रंगका एक विशाल चक्र बारंबार घूमता दिखायी दिया, जो बड़ा भयंकर था। वह कभी नीचेको गिरता और फिर ऊपरको उठ जाता था। मेरे प्राणोंका अधिष्ठाता देवता पुरुषरूपमें भीतरसे बाहर निकला और मुझसे बोला—'राधे! बिदा होकर अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ।' काले वस्त्र पहने हुए एक काली प्रतिमा दिखायी दी, जो मेरा आलिङ्गन और चुम्बन करने लगी। प्राणवल्लभ! यह विपरीत लक्षण देखकर मेरे दायें अङ्ग फड़क रहे हैं और प्राण आन्दोलित हो रहे हैं। वे शोकसे रोते और क्षीण होते हैं। मेरा चित्त उद्विग्न हो उठा है। नाथ! तुम वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। बताओ, यह सब क्या है? क्या है?

यों कहकर राधिकादेवी शोकसे विह्वल और भयभीत हो श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें गिर पड़ीं। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। भगवान् श्रीकृष्णने राधाको उठाकर सान्त्वना दी और उनके प्रति अपना महान् स्नेह प्रकट किया।

**तब राधा बोलीं**—श्यामसुन्दर! जब मैं आपके साथ रहती हूँ, तब हर्षसे खिल उठती हूँ और आपके बिना मलिन हो मृतक-तुल्य हो जाती हूँ। आपके साथ रहनेपर मैं उसी प्रकार चमक उठती हूँ, जैसे प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर विशिष्ट ओषधियाँ तथा रजनीमें दीपशिखा। आपके बिना मैं दिन-दिन उसी तरह क्षीण होने लगती हूँ, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कला। आपके वक्षमें विराजमान होनेपर मेरी दीप्ति पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान प्रकाशित होती है और जब आप मुझे त्यागकर अन्यत्र चले जाते हैं, तब मैं तत्काल ऐसी हो जाती हूँ, मानो मर गयी। मैं अमावास्याके चन्द्रमाकी कलाके समान विलीन-सी हो जाती हूँ। घीकी आहुति पाकर जैसे अग्निशिखा प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार आपका साथ पाकर मैं दीप्तिसे दमक उठती हूँ और आपके बिना शिशिर-ऋतुमें कमलिनीकी भाँति बुझ-सी जाती हूँ। जब मेरे पाससे तुम चले जाते हो, तब मैं चिन्तारूपी ज्वर या जरासे ग्रस्त हो जाती हूँ। जैसे सूर्य और चन्द्रमाके अस्त होनेपर सारी भूमि अन्धकारसे आच्छन्न हो जाती है, उसी तरह जब तुम दृष्टिसे ओझल होते हो, तब मैं शोक और दुःखमें डूब जाती हूँ। तुम्हीं सबके आत्मा हो; विशेषतः मेरे प्राणनाथ हो। जैसे जीवात्माके त्याग देनेपर शरीर मुर्दा हो जाता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना मरी-सी हो जाती हूँ। तुम मेरे पाँचों प्राण हो। तुम्हारे बिना मैं मृतक हूँ, ठीक उसी तरह जैसे नेत्रगोलक आँखकी पुतलीके बिना अंधे होते हैं। जैसे चित्रोंसे युक्त स्थानकी शोभा बढ़ जाती है, उसी तरह तुम्हारे साथ मेरी शोभा अधिक हो जाती है और जब तुम मेरे साथ नहीं रहते हो तब मैं तिनकोंसे आच्छादित और झाड़-बुहार या सजावटसे रहित भूमिकी भाँति शोभाहीन हो जाती

हूँ। श्रीकृष्ण! तुम्हारे साथ मैं चित्रयुक्त मिट्टीकी प्रतिमाकी भाँति सुशोभित होती हूँ और तुम्हारे बिना जलसे धोयी हुई मिट्टीकी मूर्तिकी तरह कुरूप दिखायी देती हूँ। तुम रासेश्वर हो। तुमसे ही गोपाङ्गनाओंकी शोभा होती है, जैसे सोनेकी माला श्वेत मणिका संयोग पाकर अधिक सुशोभित होने लगती है। व्रजराज! तुम्हारे साथ राजाओंकी श्रेणियाँ उसी तरह शोभा पाती हैं, जैसे आकाशमें चन्द्रमाके साथ तारावलियाँ। नन्दनन्दन! जैसे शाखा, फल और तनोंसे वृक्षावलियाँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार तुमसे नन्द और यशोदाकी शोभा है। गोकुलेश्वर! जैसे समस्त लोकोंकी श्रेणियाँ राजेन्द्रसे सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार समस्त गोकुलवासियोंकी शोभा तुम्हारे साथ रहनेसे ही है। रासेश्वर! जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्रसे ही अमरावतीपुरी शोभित होती है, उसी प्रकार रासमण्डलको भी तुमसे ही मनोहर शोभा प्राप्त होती है। जैसे बलवान् सिंह अन्यान्य वनोंकी शोभा, स्वामी और सहारा है, उसी प्रकार तुम्हीं वृन्दावनके वृक्षोंकी शोभा, संरक्षक और आश्रयदाता हो। जैसे गाय अपने बछड़ेको न पाकर व्याकुल हो डकराने लगती है, उसी प्रकार माता यशोदा तुम्हारे बिना शोकसागरमें निमग्न हो जाती हैं। जैसे तपे हुए पात्रमें धान्यराशि जल जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना नन्दजीका हृदय दग्ध होने लगता है और प्राण आन्दोलित हो उठते हैं।

यों कहकर अत्यन्त प्रेमके कारण राधा श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़ीं। श्रीहरिने पुनः अध्यात्म-ज्ञानकी बातें कहकर उन्हें समझाया-बुझाया। नारद! आध्यात्मिक महायोग उसी तरह मोहके उच्छेदका कारण कहा गया है, जैसे तीखी धारवाला कुठार वृक्षोंके काटनेमें हेतु होता है।

**नारदने कहा**—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! लोकोंके शोकका उच्छेद करनेवाले आध्यात्मिक महायोगका वर्णन कीजिये। मेरे मनमें उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा है।

**श्रीनारायणने कहा**—आध्यात्मिक महायोग योगियोंकी भी समझमें नहीं आता। उसके अनेक प्रकार हैं। उन सबको सम्यक्-रूपसे स्वयं श्रीहरि ही जानते हैं। रमणीय क्रीड़ासरोवरके तटपर कृपानिधान श्रीकृष्णने शोकाकुल राधिकाको जो आध्यात्मिक योग सुनाया था, उसीका वर्णन करता हूँ, सुनो।

**श्रीकृष्ण बोले**—प्रिये! तुम्हें तो पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है। अपने-आपको याद करो। क्यों भूली जा रही हो? गोलोकका सारा वृत्तान्त और सुदामाका शाप क्या तुम्हें याद नहीं है? महाभागे! उस शापके कारण कुछ दिनोंतक मुझसे तुम्हारा वियोग रहेगा। शापकी अवधि समाप्त होनेपर फिर हम दोनोंका मिलन होगा। फिर मैं गोलोकवासी गोपों और गोपाङ्गनाओंके साथ अपने परमधाम गोलोकको चलूँगा। इस समय मैं तुमसे कुछ आध्यात्मिक ज्ञानकी बातें कहता हूँ, सुनो। यह सारभूत ज्ञान शोकका नाशक, आनन्दवर्धक तथा मनको सुख देनेवाला है। मैं सबका अन्तरात्मा और समस्त कर्मोंसे निर्लिप्त हूँ। सबमें सर्वत्र विद्यमान रहकर भी कभी किसीके दृष्टिपथमें नहीं आता हूँ। जैसे वायु सर्वत्र सभी वस्तुओंमें विचरती है, किंतु किसीसे लिप्त नहीं होती; उसी प्रकार मैं समस्त कर्मोंका साक्षी हूँ। उन कर्मोंसे लिप्त नहीं होता हूँ। सर्वत्र समस्त जीवधारियोंमें जो जीवात्मा हैं, वे सब मेरे ही प्रतिबिम्ब हैं। जीवात्मा सदा समस्त कर्मोंका कर्ता और उनके शुभाशुभ फलोंका भोक्ता है। जैसे जलके घड़ोंमें चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलका पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, किंतु उन घड़ोंके फूट जानेपर वे सारे प्रतिबिम्ब चन्द्रमा और सूर्यमें ही विलीन हो जाते हैं; उसी प्रकार अन्तःकरणरूपी उपाधिके मिट जानेपर समस्त चित् प्रतिबिम्ब—जीव मुझमें ही अन्तर्हित हो जाते हैं। प्रिये! समयानुसार

समस्त जीवधारियोंकी मृत्यु हो जानेपर जीव मुझसे ही संयुक्त होता है। हम दोनों सदा समस्त जन्तुओंमें विद्यमान हैं। सम्पूर्ण जगत् आधेय है और मैं इसका आधार हूँ। आधारके बिना आधेय उसी तरह नहीं रह सकता, जैसे कारणके बिना कार्य। सुन्दरि! संसारके समस्त द्रव्य नश्वर हैं। कहीं किन्हीं पदार्थोंका आविर्भाव अधिक होता है और कहीं कम। कुछ देवता मेरे अंश हैं, कुछ कला हैं, कुछ कलाकी कलाके भी अंश हैं और कुछ उस अंशके भी अंशांश हैं। मेरी अंशस्वरूपा प्रकृति सूक्ष्मरूपिणी है। उसकी पाँच मूर्तियाँ हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, तुम (राधा) और वेदजननी सावित्री। जितने भी मूर्तिधारी देवता हैं, वे सब प्राकृतिक हैं। मैं सबका आत्मा हूँ और भक्तोंके ध्यानके लिये नित्य देह धारण करके स्थित हूँ। राधे! जो-जो प्राकृतिक देहधारी हैं, वे प्राकृत प्रलयमें नष्ट हो जाते हैं। सबसे पहले मैं ही था और सबके अन्तमें भी मैं ही रहूँगा। जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम भी हो। जैसे दूध और उसकी धवलतामें कभी भेद नहीं होता, उसी प्रकार निश्चय ही हम दोनोंमें भेद नहीं है। प्रारम्भिक सृष्टिमें मैं ही वह महान् विराट् हूँ, जिसकी रोमावलियोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। वह महाविराट् मेरा अंश है और तुम अपने अंशसे उसकी पत्नी हो। बादकी सृष्टिमें मैं ही वह क्षुद्र विराट् हूँ, जिसके नाभिकमलसे इस विश्व-ब्रह्माण्डका प्राकट्य हुआ है। विष्णुके रोमकूपमें मेरा आंशिक निवास है। तुम्हीं अपने अंशसे उस विष्णुकी सुन्दरी स्त्री हो। उसके प्रत्येक विश्वमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता विद्यमान हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा अन्य ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा आदि देवता भी मेरी ही कलाएँ हैं। देवि! समस्त चराचर प्राणी मेरी कलाकी अंशांशकलासे प्रकट हुए हैं। तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी हो और मैं वहाँ चतुर्भुज नारायण हूँ। वैकुण्ठ भी उसी तरह विश्वब्रह्माण्डसे बाहर है, जैसे गोलोक। सत्यलोकमें तुम्हीं सरस्वती तथा ब्रह्मप्रिया सावित्री हो। शिवलोकमें जो मूलप्रकृति ईश्वरी शिवा हैं, वे भी तुमसे भिन्न नहीं हैं, वे दुर्गम संकटका नाश करनेके कारण सर्वदुर्गतिनाशिनी 'दुर्गा' कहलाती हैं। वे ही दक्षकन्या सती हैं और वे ही हैं गिरिराजकुमारी पार्वती। कैलासमें सौभाग्यशालिनी पार्वती शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान होती हैं। तुम्हीं अपने अंशसे सिन्धुकन्या होकर क्षीरसागरमें श्रीविष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान होती हो। सृष्टिकालमें मैं ही अपने अंशसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप धारण करता हूँ तथा तुम लक्ष्मी, शिवा, धात्री एवं सावित्री आदि पृथक्-पृथक् रूप धारण करती हो। गोलोकके रासमण्डलमें तुम स्वयं ही सदा रासेश्वरीके पदपर प्रतिष्ठित हो। रमणीय वृन्दावनमें वृन्दा तथा विरजा-तटपर विरजाके रूपमें तुम्हीं शोभा पाती हो। वही तुम इस समय सुदामाके शापसे पुण्यभूमि भारतवर्षमें आयी हो। सुन्दरि! भारतवर्ष और वृन्दावनको पवित्र करना ही तुम्हारे शुभागमनका उद्देश्य है। समस्त लोकोंमें जो सम्पूर्ण स्त्रियाँ हैं, वे तुम्हारी ही कलांश-कलासे प्रकट हुई हैं। जो स्त्री है, वह तुम हो; जो पुरुष है, वह मैं हूँ। मैं ही अपनी कलासे अग्निरूपमें प्रकट हुआ हूँ और तुम अग्निकी दाहिका शक्ति एवं प्रियपत्नी स्वाहा हो। तुम्हारे साथ रहनेपर ही मैं जलानेमें समर्थ हूँ, तुम्हारे बिना नहीं। मैं दीप्तिमानोंमें सूर्य हूँ और तुम्हीं अपनी कलासे संज्ञा होकर प्रभाका विस्तार करती हो। तुम्हारे सहयोगसे ही मैं प्रकाशित होता हूँ। तुम्हारे बिना मैं दीप्तिमान् नहीं हो सकता। मैं कलासे चन्द्रमा हूँ और तुम शोभा तथा रोहिणी हो। तुम्हारे साथ रहकर ही मैं मनोहर बना हूँ; तुम्हारे न होनेपर तो मुझमें कोई सौन्दर्य नहीं है। मैं ही अपनी कलासे इन्द्र हुआ हूँ और तुम्हीं स्वर्गकी मूर्तिमती लक्ष्मी शची हो। तुम्हारे साथ

होनेसे ही मैं देवताओंका राजा इन्द्र हूँ; तुम्हारे बिना तो मैं श्रीहीन हो जाऊँगा। मैं ही अपनी कलासे धर्म हूँ और तुम धर्मकी पत्नी मूर्ति हो। यदि धर्म-क्रियारूपिणी तुम साथ न दो तो मैं धर्मकृत्यके सम्पादनमें असमर्थ हो जाऊँ। मैं ही कलासे यज्ञरूप हूँ और तुम अपने अंशसे दक्षिणा हो। तुम्हारे साथ ही मैं यज्ञफलका दाता हूँ; तुम न हो तो मैं फल देनेमें कदापि समर्थ न होऊँ। मैं ही अपनी कलासे पितृलोक हूँ और तुम अपने अंशसे सती स्वधा हो। तुम्हारे सहयोगसे ही मैं कव्य (श्राद्ध)-दानमें समर्थ होता हूँ; तुम न हो तो मैं उसमें कदापि समर्थ न हो सकूँगा। मैं पुरुष हूँ और तुम प्रकृति हो; तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। ठीक वैसे ही, जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता। तुम सम्पत्तिरूपिणी हो और मैं तुम्हारे साथ उस सम्पत्तिका ईश्वर हूँ। लक्ष्मीस्वरूपा तुमसे संयुक्त होकर ही मैं लक्ष्मीवान् बना हूँ; तुम्हारे न होनेसे तो मैं सर्वथा लक्ष्मीहीन ही हूँ। मैं कलासे शेषनाग हुआ हूँ और तुम अपने अंशसे वसुधा हो। सुन्दरि! शस्य तथा रत्नोंकी आधारभूता तुमको मैं अपने मस्तकपर धारण करता हूँ। तुम कान्ति, शान्ति, मूर्तिमती, सद्विभूति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, परा, दया, निद्रा, शुद्धा, तन्द्रा, मूर्च्छा, संनति और क्रिया हो। मूर्ति और भक्ति तुम्हारी ही स्वरूपभूता हैं। तुम्हीं देहधारियोंकी देह हो; सदा मेरी आधारभूता हो और मैं तुम्हारा आत्मा हूँ। इस प्रकार हम दोनों एक-दूसरेके शरीर और आत्मा हैं। जैसी तुम, वैसा मैं; दोनों सम—प्रकृति-पुरुषरूप हैं। देवि! हममेंसे एकके बिना भी सृष्टि नहीं हो सकती।

नारद! इस प्रकार परमप्रसन्न परमात्मा श्रीकृष्णने प्राणाधिका प्रिया श्रीराधाको हृदयसे लगाकर बहुत समझाया-बुझाया। फिर वे पुष्प-शय्यापर सो गये। (अध्याय ६६-६७)

## श्रीकृष्णको व्रजमें जाते देख राधाका विलाप एवं मूर्च्छा, श्रीहरिका उन्हें समझाना, श्रीराधाके सो जानेपर ब्रह्मा आदि देवताओंका आना और स्तुति करके श्रीकृष्णको मथुरा जानेके लिये प्रेरित करना, श्रीकृष्णका जाना, श्रीराधाका उठना और प्रियतमके लिये विलाप करके मूर्च्छित होना, श्रीकृष्णका लौटकर आना, रत्नमालाका श्रीकृष्णको राधाकी अवस्था बताना, श्रीकृष्णका राधाके लिये स्वप्नमें मिलनेका वरदान देकर व्रजमें जाना

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! पुरातन परमेश्वर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने पुष्पशय्यासे उठकर निद्रामें निमग्न हुई अपनी प्राणोपमा प्रियतमा श्रीराधाको तत्काल ही जगाया। वस्त्रके अञ्चलसे उनके मुँहको पोंछ निर्मल करके मधुसूदनने मधुर एवं शान्त वाणीमें उनसे कहा।

**श्रीकृष्ण बोले**—पवित्र मुस्कानवाली रासेश्वरि! व्रजस्वामिनि! क्षणभर रासमण्डलमें ही ठहरो अथवा वृन्दावनमें घूमो या गोष्ठमें ही चली जाओ। अथवा तुम रासकी अधिष्ठात्री देवी हो; इसलिये क्षणभर इस रासमण्डलमें ही रासरसका आस्वादन करो। जैसे ग्राम-ग्राममें सर्वत्र ग्रामदेवता रहते हैं, उसी तरह रासेश्वरीको रासमें सदा रहना चाहिये। अथवा सुन्दरि! तुम अपनी प्यारी सखियोंके साथ क्षणभरके लिये चन्दनवन या चम्पकवनमें घूम आओ, या यहीं रहो; मैं कुछ क्षणके लिये घरको जाऊँगा, वहाँ मुझे एक विशेष कार्य करना है; अतः प्राणवल्लभे! थोड़ी देरके लिये प्रसन्नतापूर्वक

मुझको छुट्टी दे दो। तुम मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो। तुममें ही मेरे प्राण बसते हैं। प्रिये! प्राणी अपने प्राणोंको छोड़कर कहाँ ठहर सकता है? तुममें ही सदा मेरा मन लगा रहता है, तुमसे बढ़कर प्यारी मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है। केवल तुम्हीं मुझे शंकरसे अधिक प्रिय हो। यह सत्य है शंकर मेरे प्राण हैं; परंतु सती राधे! तुम तो प्राणोंसे भी बढ़कर हो।

यों कहकर भगवान् वहाँसे जानेको उद्यत हुए। वे सर्वज्ञ और सब कुछ सिद्ध करनेवाले हैं। सबके आत्मा, पालक और उपकारक हैं। उन्होंने अक्रूरका आगमन जानकर व्रजमें जानेका विचार किया। श्रीकृष्णका मन बँट गया है; वे अन्यत्र जानेको उत्सुक हैं; यह देख राधिका देवी व्यथित-हृदयसे बोलीं।

**राधिकाने कहा**—हे नाथ! हे रमणश्रेष्ठ! प्रिय लगनेवाले मेरे समस्त सम्बन्धियोंमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो। प्राणनाथ! मैं देखती हूँ, इस समय तुम्हारा मन बँटा हुआ है। तुम्हारे चले जानेपर मेरा प्रेम और सौभाग्य सब कुछ लुट जायगा। मुझे शोकके गहरे समुद्रमें डालकर तुम कहाँ चले जा रहे हो? मैं विरहसे व्याकुल हूँ, दीन हूँ और तुम्हारी ही शरणमें आयी हूँ। अब मैं फिर घरको नहीं लौटूँगी; दूसरे वनमें चली जाऊँगी और दिन-रात 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' का गान करती रहूँगी। अथवा किसी वनमें भी नहीं जाऊँगी, प्रेमके समुद्रमें प्रवेश करूँगी और मनमें केवल तुम्हारी कामना लेकर शरीरको त्याग दूँगी। जैसे आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य सदा साथ रहते हैं; उसी तरह तुम मेरे आँचलमें बँधकर सदा पास ही रहते और साथ-साथ घूमते हो; किंतु दीनवत्सल! इस समय तुम मुझे निराश करके जा रहे हो! मुझ दीन एवं शरणागत अबलाको त्याग देना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं; वे परमात्मा तुम हो। तुमने मायासे गोपवेष धारण कर रखा है। मैं ईर्ष्यालु नारी तुम्हें कैसे जान सकती हूँ? देव! मैंने तुम्हें पति समझकर अथवा अभिमानके कारण तुम्हारे प्रति जो दुर्नीतिपूर्ण बर्ताव तथा सहस्रों अपराध किये हैं; उन्हें क्षमा कर दो। मेरा गर्व चूर्ण हो गया और मेरे सारे मनसूबे दूर चले गये। अपने सौभाग्यको आज मैं अच्छी तरह समझ चुकी हूँ। नाथ! इसके सिवा, तुमसे और क्या कह सकती हूँ? गर्गके मुखसे तुम्हारे विषयमें सुनकर, जानकर भी मैं तुम्हारी मायासे मोहित हो गयी। इस समय प्रेमातिरेक अथवा भक्तिपाशसे बँधकर मैं तुमसे कुछ कह नहीं सकती। प्राणवल्लभ! प्रभो! तुम्हारे बिना मुझे एक-एक क्षण सौ युगोंके समान जान पड़ता है; फिर सौ वर्षोंतक मैं किस तरह जीवन धारण कर सकूँगी?

मुने! ऐसा कहकर राधिका भूमिपर गिर पड़ीं और सहसा मूर्च्छित हो चेतना खो बैठीं। उन्हें मूर्च्छित देख कृपानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक सचेत किया और हृदयसे लगा लिया। फिर शोकहारी योगोंद्वारा उन्हें अनेक प्रकारसे समझाया तथापि शुचिस्मिता श्रीराधा शोकको त्याग न सकीं। सामान्य वस्तुका बिछोह भी मनुष्योंके लिये शोकप्रद हो जाता है, फिर जहाँ देह और आत्माका बिछोह होता हो, वहाँ सुख कैसे हो सकता है? उस दिन व्रजराज श्यामसुन्दर व्रजमें नहीं लौट सके। श्रीराधाके साथ क्रीड़ा-सरोवरके तटपर गये। वहाँ उनके साथ भगवान्‌ने पुनः रास-क्रीड़ा की। तदनन्तर आनन्दमग्ना राधिकाजी सो गयीं।

इसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, शेष आदि देवताओं तथा मुनीन्द्रोंके साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने धरतीपर माथा टेक प्रणाम किया और हाथ जोड़ वे उन परिपूर्णतम परमेश्वरका सामवेदोक्त स्तोत्रसे स्तवन करने लगे।

**ब्रह्माजी बोले**—जगदीश्वर! आपकी जय हो, जय हो। आपके चरणोंकी सभी वन्दना करते हैं। आप निर्गुण, निराकार और स्वेच्छामय हैं। सदा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य विग्रह धारण करते हैं और वह श्रीविग्रह नित्य है। मायासे गोपवेष धारण करनेवाले मायापते! आपकी वेश-भूषा तथा शील-स्वभाव सभी सुन्दर एवं मनोहर हैं। आप शान्त तथा सबके प्राणवल्लभ हैं। स्वभावत: इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहसे सम्पन्न हैं। नितान्त ज्ञानानन्दस्वरूप, परात्परतर, प्रकृतिसे परे, सबके अन्तरात्मा, निर्लिप्त, साक्षिस्वरूप, व्यक्ताव्यक्तरूप, निरञ्जन, भूतलका भार उतारनेवाले, करुणासागर, शोक-संतापनाशन, जरा-मृत्यु और भय आदिको हर लेनेवाले, शरणागतरक्षक, भक्तोंपर दया करनेके लिये व्याकुल रहने-वाले, भक्तवत्सल, भक्तोंके संचित धन तथा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। सबके अधिष्ठाता देवता तथा प्रीति प्रदान करनेवाले प्रभुको सादर नमस्कार है।

इस तरह बारंबार कहते हुए ब्रह्माजी प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गये। जो ब्रह्माजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रको एकाग्रचित्त होकर सुनता है, उसके सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है।

इस प्रकार स्तुति और बारंबार प्रणाम करके जगद्विधाता ब्रह्माजी सचेत हो धीरे-धीरे उठे और पुन: भक्तिभावसे बोले।

**ब्रह्माजीने कहा**—देवदेवेश्वर! उठिये। परमानन्दकारण! सानन्द, नित्यानन्दमय नन्दनन्दन! आपको नमस्कार है। नाथ! नन्दभवनमें पधारिये और वृन्दावनको छोड़िये। सौ वर्षोंके लिये जो सुदामका शाप प्राप्त हुआ है, उसको स्मरण कीजिये। भक्तके शापको सफल बनानेके लिये प्रियाजीको उतने समयके लिये त्याग दीजिये। फिर इन्हें पाकर आप गोलोकमें पधारियेगा। देव! आप पिताके घर जाकर वहाँ आये हुए अक्रूरजीसे मिलिये। वे आपके पितृव्य (चाचा), माननीय अतिथि तथा धन्यवादके योग्य सर्वसमर्थ वैष्णव हैं। भगवन्! अब उनके साथ मधुपुरीकी यात्रा कीजिये। हरे! वहाँ शिवके धनुषको तोड़िये और शत्रुगणोंको हतोत्साह कीजिये—मार भगाइये। दुरात्मा कंसका वध कीजिये और पिता-माताको सान्त्वना दीजिये। द्वारकापुरीका निर्माण कीजिये, भूतलका भार उतारिये, भगवान् शंकरकी वाराणसीपुरीको दग्ध कीजिये और इन्द्रके भवनपर भी धावा बोलिये। युद्धमें शिवजीको जृम्भास्त्रसे जृम्भित करके बाणासुरकी भुजाओंको काटिये। नाथ! इससे पहले आपको रुक्मिणीका हरण, नरकासुरका वध तथा सोलह हजार राजकुमारियोंका पाणिग्रहण करना है। व्रजेश्वर! अब इन प्राणतुल्या प्रियतमाको छोड़िये और व्रजमें चलिये। उठिये, उठिये, आपका कल्याण हो। जबतक राधाकी नींद नहीं टूटती है; तभीतक चल दीजिये।

इतना कहकर ब्रह्माजी इन्द्र आदि देवताओंके साथ ब्रह्मलोकको चले गये। साथ ही शेषनाग तथा शंकरजी भी अपने स्थानको पधारे। देवताओंने श्रीकृष्णके ऊपर प्रेम और भक्तिसे पुष्प और चन्दनकी वर्षा की। फिर आकाशवाणी हुई—'प्रभो! कंस वधके योग्य है; अत: उसका वध कीजिये; अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाइये और पृथ्वीके भारका निवारण कीजिये।' नारद! इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर भूतभावन भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाको छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे उठे। बारंबार पीछेकी ओर देखते हुए श्रीहरि कुछ दूरतक गये; फिर चन्दनवनमें वासस्थानके पास ही थोड़ी देरके लिये ठहर गये। उधर राधा निद्रा त्यागकर अपनी शय्यासे उठ बैठीं और शान्त, कान्त, प्राणवल्लभ श्रीहरिको वहाँ न देख विलाप करती हुई बोलीं—'हा नाथ! हा रमणश्रेष्ठ! हा प्राणेश्वर! हा

प्राणवल्लभ! हे प्राणचोर प्रियतम! तुम कहाँ गये?' फिर एक क्षणतक अन्वेषण करती हुई वे मालतीवनमें घूमती फिरीं। कभी क्षणभरके लिये बैठ जातीं, कभी उठ जातीं और कभी भूतलपर सो जाती थीं। कुछ क्षणोंतक अत्यन्त उच्चस्वरसे बारंबार रोदन और विलाप करती रहीं। 'हे नाथ! आओ-आओ' ऐसा बारंबार कहकर वे संतापसे मूर्च्छित हो गयीं। विरहानलसे संतप्त हो घास-फूससे ढके हुए भूतलपर इस तरह गिरीं, मानो प्राणान्त हो गया हो।

ब्रह्मन्! उस समय वहाँ अगणित गोपियाँ आ पहुँचीं। किन्हींके हाथोंमें चँवर थे और कोई चन्दनका अनुलेपन लिये आयी थीं। उन सबके बीच जो प्रियाली (प्यारी सखी) थी, उसने श्रीराधाको अपनी छातीसे लगा लिया। वह प्रियाजीको मरणासन्न-सी देख प्रेमसे विह्वल हो रोने लगी। उसने पङ्कके ऊपर सजल कमलदल बिछाकर उसपर श्रीराधाको सुलाया। वे चेष्टाहीन और मृतक-सी जान पड़ती थीं। गोपियाँ सुन्दर श्वेत चँवर डुलाती हुई उनकी सेवामें लग गयीं। उनके अङ्गोंमें चन्दनका लेप किया। उस अवस्थामें सती राधाके वस्त्र गीले हो गये थे। इतनेमें ही श्रीकृष्ण वहाँ लौट आये और अपनी उन प्राणवल्लभाको पूर्वोक्त अवस्थामें देखा। नारद! जब वे पास आने लगे तो बलवती गोपियोंने उन्हें रोक दिया और उन्हें इस तरह पकड़कर ले आयीं, जैसे राजभय आदिसे प्रेरित हो किसी दण्डनीय अपराधीको बाँधकर लाया गया हो। निकट आकर कृपानिधान श्रीकृष्णने राधाको गोदमें बिठा लिया, उन्हें सचेत किया और प्रबोधक वचनोंद्वारा समझाया। होशमें आकर देवी राधाने जब प्राणवल्लभको देखा, तब वे सुस्थिर हो गयीं और उन्होंने विरह-ज्वरको त्याग दिया। उस समय राधाकी चतुर सखी रत्नमालाने जो सबके द्वारा सम्मानित थी, श्रीकृष्णसे नीतिका सारभूत परम उत्तम मधुर वचन कहा।

**रत्नमाला बोली**—श्रीकृष्ण! सुनो। मैं ऐसी बात बताती हूँ, जो परिणाममें सुख देनेवाली, हितकारक, सत्य, नीतिका सारभूत तथा पति-पत्नीमें प्रीति बढ़ानेवाली है। वह नीतिसम्मत, वेदों और पुराणोंद्वारा अनुमोदित, लोक-व्यवहारमें प्रशंसनीय तथा उत्तम यशकी प्राप्ति करानेवाली है। नारियोंको जैसे माता प्यारी होती है, उसी तरह बन्धुजनोंमें भाई प्रिय होता है। भाईसे प्रिय पुत्र और पुत्रसे प्रिय पति होता है। साध्वी स्त्रियोंके लिये सत्पुरुषोंद्वारा समादृत स्वामी सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। रसिका और चतुरा स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर प्यारा दूसरा कोई नहीं है। इस मिथ्या संसारमें पति-पत्नीकी परस्पर प्रीति, समता तथा प्रेम-सौभाग्य परम अभीष्ट है। जिस-जिस घरमें पति-पत्नी एक-दूसरेके प्रति समभाव नहीं रखते, वहीं दरिद्रताका निवास है। वहाँ उन दोनोंका जीवन निष्फल है*। स्त्रीके लिये स्वामीसे मतभेद या फूट होना महान् दुःखकी बात है। वैसा जीवन शोक और संतापका बीज तथा मरणसे भी अधिक कष्टदायक है। सोते और जागते समय भी स्त्रियोंके प्राण पतिमें ही बसते हैं। पति ही इहलोक और परलोकमें स्त्रीका गुरु है। नाथ! ज्यों ही आप यहाँसे गये त्यों ही राधाको मूर्च्छा आ गयी। ये सहसा घाससे ढकी हुई भूमिपर गिर पड़ीं। उस समय मैंने इनके मुँहपर उत्तम शीतल जलका छींटा दिया, तब इनकी साँस चलने लगी और कुछ-कुछ चेतना आयी। मेरी सखी क्षण-क्षणमें पुकार उठती

* दम्पत्योः समता नास्ति यत्र यत्र हि मन्दिरे। अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलं जीवनं तयोः॥ (६९। ६४)

थीं—'हे नाथ! हे कृष्ण!' फिर दूसरे ही क्षण संतप्त हो रोने लगतीं और तत्काल मूर्च्छित हो जाती थीं। राधिकाका शरीर विरहाग्निसे संतप्त हो तपायी हुई लोहेकी छड़ीके समान अग्नितुल्य हो गया था; इसे छूआ नहीं जाता था। राधाके लिये सोने और जागनेमें, दिन और रातमें, घर और वनमें, जल, थल और आकाशमें तथा चन्द्रोदय और सूर्योदयमें कोई भेद नहीं रह गया है। इनकी आकृति मृतकतुल्य एवं जडवत् हो गयी है। ये एक ही स्थानपर रहकर सदा सम्पूर्ण जगत्को विष्णुमय देखती हैं। चिकने पङ्कपर कमलोंके सजल पत्र बिछाकर जो शय्या तैयार की गयी थी; उसपर ये आपके लिये विरहातुर होकर सोयी थीं। प्यारी सखियाँ निरन्तर श्वेत चँवर डुलाकर सेवा करने लगीं। इनके अङ्गोंपर चन्दनमिश्रित जल छिड़का गया। इनके सारे वस्त्र गीले हो गये, तथापि राधाके अङ्गोंका स्पर्श होनेमात्रसे वहाँका सारा पङ्क सूख गया। स्निग्ध कमलदल तत्क्षण जलकर भस्म हो गये। चन्दन सूख गया। राधाका चम्पाके समान कान्तिमान् सुनहरा वर्ण केशके रंगकी भाँति काला पड़ गया। सिन्दूरके सुन्दर बिन्दु तत्काल श्याम हो गये। वेशभूषा, विलास, लीला एवं क्रीड़ा छूट गयी। कमलाकान्त कृष्ण! यदि आप शीघ्र लौटकर नहीं आयेंगे तो आपके वियोगमें मेरी सखी निश्चय ही अपने प्राणोंका परित्याग कर देगी। अतः नीतिविशारद श्रीकृष्ण! आप मन-ही-मन विचारकर जो उचित हो वह करें, जिससे आपके प्रति अनुरक्त अबलाकी हत्या न हो।

रत्नमालाकी यह बात सुनकर माधव हँस पड़े और हितकर, सत्य, नीतिसार एवं परिणाममें सुखद वचन बोले।

**श्रीभगवान्ने कहा**—प्रिये रत्ने! यद्यपि मैं ईश्वर हूँ और मिलनमें बाधा डालनेवाले शापका खण्डन कर सकता हूँ, तथापि ऐसा करना मेरे लिये उचित नहीं है। मैं नियतिके नियमको बदला नहीं करता हूँ। समस्त ब्रह्माण्डोंमें मैंने जो मर्यादा स्थापित की है, उसीका सहारा लेकर देवता, मुनि और मनुष्य कर्म करते हैं (फिर उसको मैं ही कैसे तोड़ दूँ)। सुन्दरि! सुदामके शापसे हम दोनों दम्पतिको परस्पर जो कुछ समयके लिये वियोग प्राप्त होनेवाला है, वह यद्यपि हमें अभीष्ट नहीं है, तथापि होकर ही रहेगा। सुमध्यमे! मैं राधाको वर देता हूँ। उस वरके अनुसार जाग्रत्-अवस्थामें ही इन्हें मुझसे वियोगका अनुभव होगा; परंतु स्वप्नमें राधाको निरन्तर मेरा आलिङ्गन प्राप्त होता रहेगा। मैंने प्रियाजीको अध्यात्मकी बुद्धि प्रदान की है। उससे इनका शोक मिट जायगा। रत्नमाले! तुम्हारा कल्याण हो। तुम राधाको समझाओ। अब मैं नन्दभवनको जा रहा हूँ।

नारद! यों कहकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण नन्दभवनकी ओर चल दिये और सखियाँ राधाको समझाने लगीं। घर जाकर श्यामसुन्दरने माता-पिताको प्रणाम किया। माताने उन्हें गोदमें बिठा लिया और तुरंतका तैयार किया हुआ माखन खिलाया। फिर शीतल जल पीकर उन्होंने माताका दिया हुआ पान खाया और वहीं माँके समीप बैठे रहे। समस्त गोपसमूह श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगे। उन्होंने भी श्यामसुन्दरको प्रसन्नतापूर्वक हार, चन्दन और ताम्बूल दिये।

(अध्याय ६८-६९)

## अक्रूरजीके शुभ स्वप्न तथा मङ्गलसूचक शकुनका वर्णन, उनका रासमण्डल और वृन्दावनका दर्शन करते हुए नन्दभवनमें जाना, नन्दद्वारा उनका स्वागत-सत्कार, उन्हें श्रीकृष्णके विविध रूपोंमें दर्शन, उनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णको मथुरा चलनेकी सलाह देना, गोपियोंद्वारा अक्रूरका विरोध और उनके रथका भञ्जन, श्रीकृष्णका उन्हें समझाना और आकाशसे दिव्य रथका आगमन

**भगवान् नारायण कहते हैं**—नारद! कंससे व्रजमें जानेकी आज्ञा पाकर अक्रूरजी अपने घर गये और उत्तम मिष्टान्न खाकर शय्यापर सोये। उन्होंने सुवासित जल पीकर कपूर मिला हुआ पान खाया और सुखपूर्वक निद्रा ली। तदनन्तर रातके पिछले पहरमें जब कि बाजे आदिकी ध्वनि नहीं होती थी; उन्होंने एक सुन्दर सपना देखा। ऐसा सपना, जिसकी पुराणों और श्रुतियोंमें प्रशंसा की गयी है। अक्रूरजी नीरोग थे। उनकी शिखा बँधी हुई थी। उन्होंने दो वस्त्र धारण कर रखे थे। वे सुन्दर शय्यापर सोये थे। उनके मनमें उत्तम स्नेह उमड़ रहा था और वे चिन्ता तथा शोकसे रहित थे।

मुने! उन्होंने स्वप्नमें पहले एक ब्राह्मण-बालकको देखा, जिसकी किशोर अवस्था और अङ्गकान्ति श्याम थी। वह दो भुजाओंसे विभूषित था। उसके हाथोंमें मुरली थी। वह पीत वस्त्र धारण करके वनमालासे सुशोभित था। उसके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। मालतीकी माला उसकी शोभा बढ़ाती थी। वह भूषणके योग्य और उत्तम मणिरत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित था। उसके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा था। मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी और नेत्र कमलोंकी शोभाको लज्जित कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने पति और पुत्रोंसे युक्त, पीताम्बरधारिणी तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित एक सुन्दरी सतीको देखा, जिसके एक हाथमें जलता दीपक था और दूसरेमें श्वेत धान्य। उसका मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहा था। वह सुन्दरी सती मुस्कराती हुई वर देनेको उद्यत थी। इसके बाद उन्हें शुभाशीर्वाद देते हुए एक ब्राह्मण, श्वेत कमल, राजहंस, अश्व तथा सरोवरके दर्शन हुए। उन्होंने फल और फूलोंसे लदे हुए आम, नीम, नारियल, विशाल आक और केलेके वृक्षका सुन्दर एवं मनोहर चित्र भी देखा। उन्हें यह भी दिखायी दिया कि सफेद साँप मुझे काट रहा है और मैं पर्वतपर खड़ा हूँ। उन्होंने कभी अपनेको वृक्षपर, कभी हाथीपर, कभी नावपर और कभी घोड़ेकी पीठपर बैठे देखा। कभी देखा कि मैं वीणा बजा रहा हूँ और खीर खा रहा हूँ। कमलके पत्तेपर परोसा हुआ प्रिय अन्न दही, दूधके साथ ले रहा हूँ। कभी देखा कि मेरे अङ्गोंमें कीड़े और विष्ठा लग गये हैं और मैं रोता-रोता मोहित हो रहा हूँ। कभी उन्हें अपने हाथोंमें श्वेत धान्य और श्वेत पुष्प दिखायी दिया तथा कभी उन्होंने अपने-आपको चन्दनसे चर्चित देखा। कभी अपने-आपको अट्टालिकापर और कभी समुद्रमें देखा। शरीरमें रक्त लगा है; अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न एवं क्षत-विक्षत हो रहा है और उसमें मेद तथा पीब लिपटे हुए हैं—यह बात देखनेमें आयी। तदनन्तर चाँदी, सोना, उज्ज्वल मणिरत्न, मुक्ता, माणिक्य, भरे हुए कलशका जल, बछड़ासहित गौ, साँड़, मोर, तोता, सारस, हंस, चील, खंजरीट, ताम्बूल, पुष्पमाला, प्रज्वलित अग्नि, देवपूजा, पार्वतीकी प्रतिमा, श्रीकृष्णकी प्रतिमा, शिवलिङ्ग, ब्राह्मण-

बालिका, सामान्य बालिका, फली और पकी हुई खेती, देवस्थान, सिंह, बाघ, गुरु और देवताके दर्शन हुए।

ऐसा स्वप्न देख प्रातःकाल उठकर उन्होंने इच्छानुसार आह्निक कृत्योंका सम्पादन किया। इसके बाद उद्धवसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त कहा और उनकी आज्ञा ले गुरु एवं देवताकी पूजा करके मन-ही-मन श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए वहाँसे यात्रा की। नारद! रास्तेमें भी उन्हें ऐसे ही मङ्गलयोग्य, शुभदायक, मनोवाञ्छित फल देनेवाले, रमणीय तथा मङ्गलसूचक शकुन अपने सामने दृष्टिगोचर हुए। बायीं तरफ उन्हें मुर्दा, सियारिन, भरा घड़ा, नेवला, नीलकण्ठ, दिव्याभूषणोंसे विभूषित पति-पुत्रवती साध्वी स्त्री, श्वेत पुष्प, श्वेत माला, श्वेत धान्य तथा खञ्जरीटके शुभ दर्शन हुए। दाहिनी ओर उन्होंने जलती आग, ब्राह्मण, वृषभ, हाथी, बछड़ेसहित गाय, श्वेत अश्व, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, पताका, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता, माणिक्य, तुरंतका कटा हुआ मांस, चन्दन, मधु, घी, कृष्णसार मृग, फल, लावा, सरसों, दर्पण, विचित्र विमान, सुन्दर दीप्तिमती प्रतिमा, श्वेत कमल, कमलवन, शङ्ख, चील, चकोर, बिलाव, पर्वत, बादल, मोर, तोता और सारसके दर्शन किये तथा शङ्ख, कोयल एवं वाद्योंकी मङ्गलमयी ध्वनि सुनी। श्रीकृष्ण-महिमाके विचित्र गान, हरिकीर्तन और जय-जयकारके शब्द भी उनके कानोंमें पड़े।

ऐसे शुभ-शकुन देख-सुनकर अक्रूरका हृदय हर्षसे खिल उठा। उन्होंने श्रीहरिका स्मरण करके पुण्यमय वृन्दावनमें प्रवेश किया। सामने देखा—रमणीय रासमण्डल शोभा पाता है, जो मनको अभीष्ट है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, पुष्प तथा चन्दनका स्पर्श करके बहनेवाली वायु उस स्थानको सुवासित कर रही है। केलेके खम्भे तथा मङ्गल-कलश रासमण्डलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। रेशमी सूतमें गुँथे हुए आम्रपल्लवोंकी सुन्दर बन्दनवारें भी इस रम्य प्रदेशकी श्रीवृद्धि कर रही हैं। सारा शोभनीय रासमण्डल सब ओरसे पद्मरागमणिद्वारा निर्मित है तथा तीन करोड़ रत्नमय मन्दिर एवं लाखों रमणीय कुञ्ज-कुटीर उसकी शोभा बढ़ाते हैं।

रासमण्डल तथा वृन्दावनकी शोभा देखकर जब अक्रूर कुछ दूर आगे गये तो उन्हें अपने समक्ष नन्दरायजीका परम उत्तम सुरम्य व्रज दिखायी दिया, जो विष्णुके निवास-स्थान—वैकुण्ठधामके समान सुशोभित था। उसमें रत्नोंकी सीढ़ियाँ लगी थीं। रत्नोंके बने हुए खम्भोंसे वह बड़ा दीप्तिमान् दिखायी देता था। भाँति-भाँतिके विचित्र चित्र उसका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे। श्रेष्ठ रत्नोंके मण्डलाकार घेरेसे वह घिरा हुआ था। विश्वकर्माद्वारा रचित वह नन्दभवन मणियोंके सारभागसे खचित (जड़ा हुआ) था। दरवाजेपर जो मार्ग दिखायी दिया, उसके द्वारा अक्रूरने राजद्वारके भीतर प्रवेश किया। वह द्वार पताकाओं तथा रत्नोंकी झालरोंसे सजा था। मुक्ता और माणिक्यसे विभूषित था। रत्नोंके दर्पण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा रत्नोंसे जटित होनेके कारण उस द्वारकी विचित्र शोभा होती थी। वहाँ रत्नमयी वीथियोंकी रचना की गयी थी तथा मङ्गल-कलशोंसे सुसज्जित वह द्वार मङ्गलमय दिखायी देता था।

अक्रूरका आगमन सुनकर नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बलराम तथा श्रीकृष्णको साथ ले उनकी अगवानीके लिये गये। नन्दजीके साथ वृषभानु आदि गोप भी थे। नर्तकी, भरा हुआ घड़ा, गजराज तथा श्वेत धान्यको आगे करके काली गौ, मधुपर्क, पाद्य तथा रत्नमय आसन आदि साथ ले नन्दजी विनीत एवं शान्तभावसे मुस्कराते हुए आगे बढ़े। वे गोपगणों तथा बालकोंसहित आनन्दमग्न हो रहे थे। महाभाग अक्रूरको देख

नन्दजीने तत्काल ही उन्हें हृदयसे लगा लिया। सब गोपोंने मस्तक झुकाकर अक्रूरको प्रणाम किया और आशीर्वाद लिये। मुने! उन सबका परस्पर संयोग बड़ा ही गुणवान् हुआ। अक्रूरने बारी-बारीसे श्रीकृष्ण और बलरामको गोदमें उठा लिया तथा उनके गाल चूमे। उस समय उनका सारा अङ्ग पुलकित था। नेत्रोंसे अश्रुधारा झर रही थी। हृदयमें आह्लाद उमड़ा आ रहा था। अक्रूर कृतार्थ हो गये। उनका मनोरथ सिद्ध हो गया। उन्होंने दो भुजाओंसे सुशोभित श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी ओर एक क्षणतक देखा, जो पीताम्बर धारण किये मालतीकी मालासे विभूषित थे। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। उन्होंने हाथमें वंशी ले रखी थी। ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवता तथा सनकादि मुनीन्द्र जिनकी स्तुति करते हैं और गोप-कन्याएँ जिनकी ओर सदा निहारती रहती हैं; उन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णको अक्रूरने एक क्षणतक अपनी गोदमें देखा। वे मुस्करा रहे थे। तत्पश्चात् उन्होंने चतुर्भुज विष्णुके रूपमें उनको सामने खड़े देखा। लक्ष्मी और सरस्वती—ये दो देवियाँ उनके अगल-बगलमें खड़ी थीं। वे वनमालासे विभूषित थे। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षद उनकी सेवामें उपस्थित थे। सिद्धोंके समुदाय भक्तिभावसे नम्र हो उन परात्पर प्रभुकी सेवा कर रहे थे।

फिर, दूसरे ही क्षण अक्रूरने श्रीकृष्णको महादेवजीके रूपमें देखा। उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक-मणिके समान उज्ज्वल थी। नागराजके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे। दिशाएँ ही उनके लिये वस्त्रका काम देती थीं। योगियोंमें श्रेष्ठ वे परब्रह्म शिव अपने अङ्गोंमें भस्म रमाये, सिरपर जटा धारण किये और हाथमें जप-माला लिये ध्यानमें स्थित थे।

तदनन्तर एक ही क्षणमें श्रीकृष्ण उन्हें ध्यानपरायण एवं मनीषियोंमें श्रेष्ठ चतुर्भुज ब्रह्माके रूपमें दृष्टिगोचर हुए। फिर कभी धर्म, कभी शेष, कभी सूर्य, कभी सनातन ज्योतिःस्वरूप और कभी कोटि-कोटि कन्दर्पनिन्दक, परम शोभासम्पन्न एवं कामिनियोंके लिये कमनीय प्रेमास्पदके रूपमें दिखायी दिये। इस रूपमें नन्दनन्दनका दर्शन करके अक्रूरने उन्हें छातीसे लगा लिया। नारद! नन्दजीके दिये हुए रमणीय रत्नसिंहासनपर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको बिठाकर भक्तिभावसे उनकी परिक्रमा करके पुलकित-शरीर हो अक्रूरने पृथ्वीपर माथा टेक उन्हें प्रणाम किया और स्तुति प्रारम्भ की।

**अक्रूर बोले**—जो सबके कारण, परमात्मस्वरूप तथा सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर हैं, उन श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है। सर्वेश्वर! आप प्रकृतिसे परे, परात्पर, निर्गुण, निरीह, निराकार, साकार, सर्वदेवस्वरूप, सर्वदेवेश्वर, सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता तथा विश्वके आदिकारण हैं; आपको नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंमें आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूपमें निवास करते हैं। आप ही सबके आदिकारण हैं। विश्वेश्वर और विश्व दोनों आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! आपको नमस्कार है। गणेश और ईश्वर आपके ही रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप देवगणोंके स्वामी तथा श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही राधारमण तथा राधाका रूप धारण करते हैं। राधाके आराध्य देवता तथा राधिकाके प्राणाधिक प्रियतम भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। राधाके वशमें रहनेवाले, राधाके अधिदेवता और राधाके प्रियतम! आपको नमस्कार है। आप राधाके प्राणोंके अधिष्ठाता देवता हैं तथा सम्पूर्ण विश्व आपका ही रूप है; आपको नमस्कार है। वेदोंने जिनकी स्तुति की है, वे परमात्मा तथा वेदज्ञ विद्वान् भी आप ही हैं। वेदोंके ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण आप

वेदी कहे गये हैं; आपको नमस्कार है। वेदोंके अधिष्ठाता देवता और बीज भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। जिनके रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड नित्य निवास करते हैं, उन महाविष्णुके ईश्वर आप विश्वेश्वरको बारंबार नमस्कार है। आप स्वयं ही प्रकृतिरूप और प्राकृत पदार्थ हैं। प्रकृतिके ईश्वर तथा प्रधान पुरुष भी आप ही हैं। आपको बारंबार नमस्कार है*।

इस प्रकार स्तुति करके अक्रूरजी नन्दरायजीके सभाभवनमें मूर्च्छित हो गये और सहसा भूमिपर गिर पड़े। उसी अवस्थामें पुनः उन्होंने अपने हृदयमें और बाहर भी सब ओर उन श्यामसुन्दर सर्वेश्वर परमात्माको देखा। वे ही विश्वमें व्याप्त थे और वे ही विश्वरूपमें प्रकट हुए थे। नारद! अक्रूरजीको मूर्च्छित हुआ देख नन्दजीने आदरपूर्वक उठाया और रमणीय रत्नसिंहासनपर बिठा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अक्रूरसे सारा वृत्तान्त पूछा और बारंबार कुशलप्रश्न करते हुए उन्हें मिष्टान्न भोजन कराया। अक्रूरने कंसका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कहा कि अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ानेके लिये बलराम और श्रीकृष्णको वहाँ अवश्य चलना चाहिये।

जो अक्रूरद्वारा किये गये इस स्तोत्रका एकाग्रचित्त होकर पाठ करता है, वह पुत्रहीन हो तो पुत्र पाता है और भार्याहीन हो तो उसे प्रिय भार्याकी उपलब्धि होती है। निर्धनको धन, भूमिहीनको उर्वरा भूमि, संतानहीनको संतान और प्रतिष्ठारहितको प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है और जो यशस्वी नहीं है, वह भी अनायास ही महान् यश प्राप्त कर लेता है।

तदनन्तर अक्रूरजी रातके समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो रमणीय चम्पाकी शय्यापर श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर सोये। प्रातःकाल सहसा उठकर परम उत्तम आह्निक कृत्यका सम्पादन करके उन्होंने जगदीश्वर श्रीकृष्ण तथा बलरामको अपने रथपर बिठाया। पाँच प्रकारके गव्य (दूध, दही, माखन, घी और छाँछ) तथा नाना प्रकारके परम दुर्लभ द्रव्य रखवाये। वृषभानु, नन्द, सुनन्द तथा चन्द्रभानु गोपको भी साथ ले लिया। उस समय व्रजराज नन्द गोपने आनन्दमग्न हो नाना प्रकारके वाद्य—मृदङ्ग, मुरज (ढोल), पटह, पणव, ढक्का, दुन्दुभि, आनक, सज्जा, संनहनी, कांस्य-पट्ट (झाँझ), मर्दल और मण्डवी आदि बजवाये। बाजोंकी ध्वनि और बलराम तथा श्रीकृष्णके जानेका समाचार सुन श्रीकृष्णको रथपर बैठे देख गोपियाँ प्रणय-कोपसे पीड़ित हो उनके पास आ पहुँचीं। ब्रह्मन्! श्रीकृष्णके मना करनेपर भी श्रीराधाकी प्रेरणासे उन गोपकिशोरियोंने पैरोंके आघातसे राजा कंसके उस रथको अनायास ही तोड़ डाला। उसपर बैठे हुए सब गोप हाहाकार

---

* नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे। सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः॥
पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च। निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे॥
सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च। सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स्वरूपायादिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे॥
नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे। नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः॥
राधारमणरूपाय राधारूपधराय च। राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च॥
राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च। राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः॥
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः। वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः। महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः॥
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः। प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च॥
(७०। ५६—६५)

करने लगे और बलवती गोपियाँ श्रीकृष्णको गोदमें लेकर चली गयीं। किसी गोपीने क्रोधपूर्वक क्रूर अक्रूरको बहुत फटकारा। कुछ गोपियाँ अक्रूरको वस्त्रसे बाँधकर वहाँसे चल दीं। बेचारे अक्रूरको बड़ा कष्ट प्राप्त हुआ। यह देख माधव राधाके निकट गये और पुनः उन्हें समझाने लगे। उन्होंने आध्यात्मिक योगद्वारा विनय और आदरके साथ अक्रूरको भी समझाया और श्रीराधाको आश्वासन दिया। इसी समय आकाशसे एक दिव्य रथ भूतलपर आया, जो मन्त्रसे प्रेरित होकर चलता था। वह विचित्र वस्त्रोंसे सुशोभित था। श्रीहरिने अपने सामने खड़े हुए उस रथको देखा। उसमें श्रेष्ठ मणिरत्न जड़े हुए थे। वह रथ विश्वकर्माद्वारा बनाया गया था। उसे देखकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण माताके घरमें आये। वहाँ भाईसहित भगवान् माधव, जिनके चरणोंकी वन्दना, मुनीन्द्र, देवेन्द्र, ब्रह्मा, शिव और शेष आदि करते हैं, खा-पीकर सुखसे सोये। (अध्याय ७०)

## शुभ लग्नमें यात्रासम्बन्धी मङ्गलकृत्य करके श्रीकृष्णका मथुरापुरीको प्रस्थान, पुरीकी शोभाका वर्णन, कुब्जापर कृपा, मालीको वरदान, धोबीका उद्धार, कुब्जाका गोलोकगमन, कंसका दुःस्वप्न, रङ्गभूमिमें कंसका पधारना, धनुर्भङ्ग, हाथीका वध, कंसका उद्धार, उग्रसेनको राज्यदान, माता-पिताके बन्धन काटना, वसुदेवजीद्वारा नन्द आदिका सत्कार और ब्राह्मणोंको दान

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! जब वायुसे सुवासित, चन्दननिर्मित और फूलोंसे बिछी हुई शय्यापर राधिकाजी सो गयीं तथा गोपिकाएँ भी गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयीं, तब रातमें तीसरे पहरके बीत जानेपर शुभ बेलामें शुभ नक्षत्रसे चन्द्रमाका संयोग होनेपर अमृतयोगसे युक्त लग्न आया। लग्नके स्वामी शुभ ग्रहोंमेंसे कोई एक अथवा बुध थे। उस लग्नपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि थी। पापग्रहोंके संयोगसे जो दुर्योग या दोष आदि प्राप्त होते हैं, उनका उस लग्नमें सर्वथा अभाव था। ऐसे समयमें श्रीहरिने स्वयं उठकर माता यशोदाको जगाया, मङ्गल-कृत्य करवाया और बन्धुजनोंको आश्वासन दिया। जो विश्व-ब्रह्माण्डके स्वतन्त्र कर्ता और स्वतन्त्र पालक हैं, उन्हीं भगवान्‌ने राधिकाजीके भयसे भीत-से होकर बाजा बजानेकी मनाही कर दी। वे दोनों पैर धोकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करके चन्दन आदिसे लिपे हुए शुद्ध स्थानमें बैठे। उनके वामभागमें चन्दन आदिसे सुसज्जित तथा फल और पल्लवसे युक्त भरा हुआ कलश रखा गया। दाहिने भागमें प्रज्वलित अग्नि तथा ब्राह्मणदेवता उपस्थित हुए। सामने पति-पुत्रवती सती साध्वी स्त्री, प्रज्वलित दीपक और दर्पण प्रस्तुत किये गये। पुरोहितजीने सुस्निग्ध दूर्वाकाण्ड, श्वेत पुष्प तथा शुभसूचक श्वेत धान्य श्यामसुन्दरके हाथमें दिये। उन सबको लेकर उन्होंने मस्तकपर रख लिया। तत्पश्चात् श्रीहरिने घी, मधु, चाँदी, सोना और दहीके दर्शन किये। ललाटमें चन्दनका लेप करके गलेमें पुष्पमाला धारण की। गुरुजनों तथा ब्राह्मणके चरणोंमें भक्तिभावसे मस्तक झुकाया और शङ्खध्वनि, वेदपाठ, संगीत, मङ्गलाष्टक एवं ब्राह्मणके मनोहर आशीर्वाद बड़े आदरके साथ सुने। सर्वत्र मङ्गल प्रदान करनेवाले अपने ही मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान करके उन्होंने परम सुन्दर दाहिने पैरको आगे बढ़ाया। नासिकाके वामभागसे वायुको भीतर भरकर भगवान्‌ने मध्यमा अंगुलिसे वामरन्ध्रको दबाया और नाकके दाहिने छिद्रसे उस वायुको

बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात् नन्दनन्दन नन्दके श्रेष्ठ प्राङ्गणमें सानन्द आये। वे परमानन्दमय, नित्यानन्दस्वरूप तथा सनातन हैं। नित्य-अनित्य सब उन्हींके रूप हैं। वे नित्यबीजस्वरूप, नित्यविग्रह, नित्याङ्गभूत, नित्येश तथा नित्यकृत्यविशारद हैं। उनके रूप, यौवन, वेश-भूषा तथा किशोर-अवस्था—सभी नित्य नूतन हैं। उनके सम्भाषण, प्रेम-प्राप्ति, सौभाग्य, सुधा-रससे सराबोर मीठे वचन, भोजन तथा पद भी नित्य नवीन हैं। इस अत्यन्त रमणीय प्राङ्गणमें खड़े-खड़े मायायुक्त मायेश्वर अत्यन्त स्नेहमें डूब गये। तत्पश्चात् वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए। केलेके सुन्दर खम्भों और रेशमी डोरेमें गुँथे हुए आम्र-पल्लवोंकी बन्दनवारोंसे उस आँगनको सजाया गया था। विश्वकर्माने उसकी फर्शमें पद्मराग मणि जड़ दी थी। कस्तूरी, केसर और चन्दनसे उसका संस्कार किया गया था। अक्रूर तथा बान्धवजनोंसहित श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ थोड़ी देर खड़े रहे। यशोदाने बायीं ओरसे और आनन्दयुक्त नन्दने दाहिनी ओरसे आकर अपने लालाको हृदयसे लगा लिया। बन्धु-बान्धवोंने उनसे प्रेमभरी बातें कीं तथा मैया और बाबाने लालाका मुँह चूमा।

मुने! तदनन्तर श्रीकृष्ण गुरुजनोंको नमस्कार करके आँगनसे बाहर निकले और स्वर्गीय रथपर आरूढ़ हो सुन्दर मथुरापुरीकी ओर चल दिये। मथुरा अपनी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीपुरीको परास्त करके अत्यन्त मनोहर दिखायी देती थी। श्रीकृष्णने अक्रूर तथा सखाओंके साथ उस रमणीय नगरीमें प्रवेश किया। श्रेष्ठ रत्नोंसे खचित और विश्वकर्माद्वारा रचित मथुरापुरी सुन्दर बहुमूल्य रत्ननिर्मित कलशोंसे सुशोभित थी। सैकड़ों सुन्दर, श्रेष्ठ और अभीष्ट राजमार्गोंसे वह नगरी घिरी हुई थी। वे राजमार्ग चन्द्रकान्त मणियोंके सारभागसे जटित होनेके कारण चन्द्रमाके समान ही प्रकाशित होते थे। वहाँ विचित्र मणियोंके सारतत्त्वसे शत-शत वीथियोंका निर्माण किया गया था। पुण्य वस्तुओंके संचयसे सम्पन्न श्रेष्ठ व्यवसायी अपनी दूकानोंसे उन राजमार्गोंकी शोभा बढ़ाते थे। पुरीके चारों ओर सहस्रों सरोवर शोभा दे रहे थे, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल तथा पद्मरागमणियोंकी दीप्तिसे देदीप्यमान थे। रत्नमय अलंकारों एवं आभूषणोंसे विभूषित पद्मिनी जातिकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंसे वह नगरी शोभायमान थी। वे सब सुन्दरियाँ सुस्थिर यौवनसे युक्त थीं और श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे मुँह ऊपर उठाये अपलक नेत्रोंसे राजमार्गकी ओर देख रही थीं। उनके हाथोंमें अक्षतपुञ्ज थे। असंख्य रत्ननिर्मित रथ पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। अनेक प्रकारके विचित्र भूषणोंसे उन रथोंको विभूषित एवं चित्रित किया गया था। बहुत-से पुष्पोद्यान, जो भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भरे थे और जिनमें भ्रमर रसास्वादन करते थे, मथुरापुरीकी श्रेयोवृद्धि कर रहे थे। माधुर्य मधुसे युक्त, मधुलोभी तथा मधुमत्त मधुकर मधुकरियोंके समूहसे संयुक्त हो उन उद्यानोंमें आनन्दका अनुभव कर रहे थे। नगरके चारों ओर अनेक प्रकारके दुर्ग थे, जिनके कारण शत्रुओंका वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन था। रक्षाशास्त्र-विशारद रक्षकोंसे वह पुरी सदा सुरक्षित थी। विश्वकर्माद्वारा श्रेष्ठ एवं विचित्र रत्नोंसे रचित अगणित अट्टालिकाओंसे संयुक्त मथुरानगरी बड़ी मनोहर जान पड़ती थी।

इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा देख आगे बढ़ते हुए कमलनयन श्रीकृष्णने मार्गमें कुब्जाको देखा, जो अत्यन्त जराजीर्ण एवं वृद्धा-सी थी। डंडेके सहारे चलती थी। अत्यन्त झुकी हुई थी और झुर्रियाँ लटक रही थीं। उसकी आकृति रूखी और विकृत थी। वह कस्तूरी और केसर मिला हुआ चन्दनका अनुलेपन लिये आ रही थी, जिसके स्पर्शमात्रसे शरीर सुगन्धित, सुस्निग्ध तथा अत्यन्त मनोहर हो जाता था। उस वृद्धाने शान्त,

ऐश्वर्ययुक्त, श्रीसम्पन्न, श्रीनिवास, श्रीबीज एवं श्रीनिकेतन श्यामसुन्दर श्रीवल्लभको मन्द मुस्कानके साथ देखा। देखते ही उसके दोनों हाथ जुड़ गये। वह भक्तिसे विनीत हो गयी और सहसा चरणोंमें सिर रखकर उसने प्रणाम किया। साथ ही उनके श्याम मनोहर अङ्गमें चन्दन लगाया। श्रीकृष्णके जो सखा थे, उनके अङ्गोंमें भी चन्दनका

अनुलेपन किया। फिर चन्दनका सुवर्णमय पात्र हाथमें लिये श्रेष्ठ दासीने बारंबार परिक्रमा करके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ते ही वह सहसा अनुपम शोभासे सम्पन्न तथा रूप और यौवनसे लक्ष्मीके समान रमणीय हो गयी। आगमें तपाकर शुद्ध की हुई स्वर्णप्रतिमाके समान दीप्तिमती हो उठी। सुन्दर वस्त्र और रत्नोंके आभूषण उसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाने लगे। वह बारह वर्षकी अवस्थावाली कुमारी कन्याके समान धन्या और मनोहारिणी प्रतीत होने लगी। बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित श्रेष्ठतम हारसे उसका वक्षःस्थल उद्भासित हो उठा। वह गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चलने लगी। रत्नोंके मञ्जीर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ाने लगे। सिरपर केशोंकी बँधी हुई वेणी मालतीकी मालासे आवेष्टित थी, जो सुन्दर और गोलाकार दिखायी देती थी। उसने ललाटमें सिन्दूरकी बेंदी लगा रखी थी, जो अनारके फूलकी भाँति लाल थी। उस बेंदीके ऊपर कस्तूरी और चन्दनके भी बिन्दु थे। उस सुन्दरीने अपने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था। श्रीनिवास हरि उसे आश्वासन देकर आगे बढ़ गये। वह कृतार्थ हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गयी, मानो लक्ष्मी अपने धामको जा रही हो। उसने अपने घरको देखा। वह लक्ष्मीके निवास-मन्दिरकी भाँति मनोहर हो गया था। उसमें रत्नमयी शय्या बिछी थी तथा उस भवनका निर्माण श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे हुआ था। रत्नोंकी दीपमालाएँ अपनी प्रभासे उस गृहको उद्भासित कर रही थीं। उस भवनमें सब ओर रत्नमय दर्पण लगे थे, जो उसकी भव्यताको बढ़ा रहे थे। सिन्दूर, वस्त्र, ताम्बूल, श्वेत चँवर और माला लिये दास-दासियोंके समुदाय उस दिव्य भवनको घेरकर खड़े थे। मुने! सुन्दरी कुब्जा मन, वाणी और शरीरसे श्रीहरिके चरणोंके ही चिन्तन और समाराधनमें लगी थी। वह निरन्तर यही सोचती रहती थी कि कब श्रीहरिका शुभागमन होगा और कब मैं उनके मनोहर मुखचन्द्रके दर्शन पाऊँगी। उसे सारा जगत् सदा श्रीकृष्णमय दिखायी देता था। करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीलासे सुशोभित श्यामसुन्दर पलभरके लिये भी उसे भूलते नहीं थे।

कुब्जाको बिदा करनेके पश्चात् श्रीकृष्णने एक मनोहर मालीको देखा, जो मालाओंका समूह लिये राजभवनकी ओर जा रहा था। उसने भी श्रीकान्तको देख पृथ्वीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया और अपनी सारी मालाएँ परमात्मा श्रीकृष्णको अर्पित कर दीं। श्रीकृष्ण उसे अत्यन्त दुर्लभ दास्यभावका वरदान दे मालाएँ पहनकर उस सुन्दर राजमार्गपर आगे बढ़ गये। तदनन्तर उन्हें एक धोबी दिखायी दिया, जो वस्त्रोंका गट्ठर लिये

जा रहा था। वह बड़ा बलवान् और अहंकारी था तथा यौवनके मदसे उन्मत्त हो सदा उद्दण्डतापूर्ण बर्ताव किया करता था। महामुने! श्रीकृष्णने उससे विनयपूर्वक वस्त्र माँगा। उसने वस्त्र तो उन्हें दिया नहीं, उलटे कठोर बातें सुनायीं।

**धोबी बोला**—ओ मूढ़! तू गोप-जनोंका लाड़ला है। यह वस्त्र गायके चरवाहोंके योग्य नहीं है; अत्यन्त दुर्लभ और राजाओंके ही उपयोगमें आने योग्य है।

धोबीकी यह बात सुनकर मधुसूदन हँसे। बलदेव, अक्रूर और गोपगण भी हँसने लगे। श्रीकृष्णने एक ही तमाचेमें उस धोबीका काम तमाम करके कपड़ोंका वह गट्ठर ले लिया और सखाओंसहित उन्होंने अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र धारण किये। वह रजकराज (धोबियोंका सरदार) दिव्य देह धारण करके श्रीकृष्ण-पार्षदोंसे वेष्टित रत्नमय विमानद्वारा गोलोकको चला गया। उसका वह दिव्य शरीर अक्षय यौवनसे युक्त, जरा और मृत्युका निवारक, श्रेष्ठ पीताम्बरसे सुशोभित, मन्द मुस्कानसे विलसित, श्यामकान्तिसे कमनीय और मनोहर था। गोलोकमें पहुँचकर वह भी वहाँके पार्षदोंमें एक पार्षद हो गया। वहाँ अपने मनको वशमें रखकर वह नित्य-निरन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनका चिन्तन करता रहा। इधर मथुरामें सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये। तब श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर अक्रूर अपने घरको गये और श्रीकृष्ण भी नन्द एवं बलदेव आदिके साथ आनन्दपूर्वक किसी वैष्णवके घर गये, जो कपड़ा बुननेका व्यवसाय करता था। उसने अपना सर्वस्व भगवान्‌को समर्पित कर रखा था। उस भक्तने श्रीनिवासको प्रणाम करके उनका पूजन किया और भगवान्‌ने उसको अपना वह दास्यभाव प्रदान किया जो ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वहाँ उत्तम मिष्टान्न भोजन करके सब लोग पलंगपर सो गये। तदनन्तर श्रीकृष्ण कुब्जाके घर पधारे। उसने स्वागत किया। भगवान्‌ने उसको बताया—'प्रिये! श्रीरामावतारके समय तुमने मेरे लिये तप किया था; अतः अब मुझसे मिलकर जरा-मृत्युरहित और अत्यन्त दुर्लभ मेरे परमधाम गोलोकको जाओ।' इसी समय गोलोकसे एक रत्ननिर्मित रथ वहाँ आया और कुब्जा दिव्य देह धारण करके उसीके द्वारा गोलोकको चली गयी। मुने! वह वहीं चन्द्रमुखी गोपी हो गयी और कितनी ही गोपियाँ उसकी परिचारिका हुईं।

भगवान् नन्दनन्दन भी क्षणभर कुब्जाके यहाँ ठहरकर पुनः अपने निवास-मन्दिरमें लौट आये, जहाँ नन्दजी सानन्द विराजमान थे। उधर भयविह्वल कंसने रातको नींद आ जानेपर दुःखद दुःस्वप्न देखा, जो उसकी मृत्युका सूचक था। उसने देखा, सूरज आकाशसे गिरकर पृथ्वीपर पड़ा है और उसके चार खण्ड हो गये हैं। मुने! इसी तरह चन्द्रमण्डल भी आकाशसे भूमिपर गिरकर दस खण्डोंमें विभक्त दिखायी दिया। उसने कुछ ऐसे पुरुष देखे, जिनकी आकृति विकृत थी। वे हाथोंमें रस्सी लिये नंग-धड़ंग दिखायी देते थे। एक विधवा शूद्री दृष्टिगोचर हुई, जो नंगी थी और

जिसकी नाक कटी हुई थी। वह हँसती थी। उसने चूनेका तिलक लगा रखा था और उसके सफेद और काले केश ऊपरकी ओर उठे थे। वह एक हाथमें तलवार और दूसरेमें खप्पर लिये हुए थी। उसकी जीभ लपलपा रही थी और उसके गलेमें मुण्डमाला पड़ी थी। उसके सिवा कंसने गदहा, भैंस, बैल, सूअर, भालू, कौआ, गीध, कङ्क, वानर, सफेद कुत्ता, घड़ियाल, सियार, भस्मपुञ्ज, हड्डियोंका ढेर, ताड़का फल, केश, कपास, बुझे अङ्गार (कोयले), उल्का, चितापर चढ़ा हुआ मुर्दा, कुम्हार और तेलीके चक्र, टेढ़ी-मेढ़ी कौड़ी, मरघट, अधजला काठ, सूखा काठ, कुश, तृण, चलता हुआ धड़, मुर्देका चिल्लाता हुआ मस्तक, आगसे जला हुआ स्थान, भस्म-युक्त सूखा तालाब, जली मछली, लोहा, दावानलसे जलकर बुझे हुए वन, गलित कोढ़से युक्त नंगा शूद्र, शिखा खोले और अत्यन्त रोषसे भरकर शाप देते हुए ब्राह्मण एवं गुरु, अधिक कुपित हुए संन्यासी, योगी एवं वैष्णव मनुष्य देखे। ऐसा दुःस्वप्न देख कंसकी नींद खुल गयी और उसने माता, पिता, भाई तथा पत्नीसे वह सब कह सुनाया। पत्नी प्रेमसे विह्वल होकर रोने लगी।

कंसने रङ्गभूमिमें दर्शकोंके बैठनेके लिये मञ्च बनवाये और सभाके द्वारपर हाथीको खड़ा कर दिया। हाथीके साथ ही पहलवान और जुझारू सेना भी स्थापित कर दी। तत्पश्चात् धनुर्यज्ञका मङ्गल-कृत्य आरम्भ किया। सभा बनवायी। पुण्यदायक स्वस्तिवाचन एवं मङ्गलपाठ कराया तथा योगयुक्त पुरोहितको यत्नपूर्वक आवश्यक कार्यके अनुष्ठानमें नियुक्त किया। राजा कंस हाथमें विलक्षण तलवार ले रमणीय मञ्चपर जा बैठा। मल्लयुद्धके लिये उस कलामें निपुण योद्धाको नियुक्त किया। आमन्त्रित श्रेष्ठ राजाओं, ब्राह्मणों, मुनीश्वरों, सुहृद्वर्गके लोगों, धर्मात्मा पुरुषों तथा युद्धकुशल पुरुषोंको यथास्थान बैठाया।

नारद! इसी समय बलरामके साथ भगवान् श्रीकृष्ण रङ्गभूमिमें आये और महादेवजीके धनुषको लीलापूर्वक बीचसे ही तोड़ डाला। धनुष टूटनेकी भयंकर आवाजसे सारी मथुरापुरी बहरी-सी हो गयी। कंसको बड़ा दुःख हुआ और देवकीनन्दन श्रीकृष्ण हर्षसे खिल उठे। द्वारवर्ती मल्लसहित हाथीका वध करके वे सभामें उपस्थित हुए। योगीजनोंने उन्हें साक्षात् परमात्मदेव परमेश्वरके रूपमें देखा। वे अपने हृदयकमलमें जिस स्वरूपका ध्यान करते थे, वही उन्हें बाहर दृष्टिगोचर हुआ। राजाओंकी दृष्टिमें वे सर्वशासक दण्डधारी राजेन्द्र थे। माता-पिताने उनको स्तनपान करनेवाले दुधमुँहे बालकके रूपमें देखा। कामिनियोंकी दृष्टिमें वे करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीला धारण करनेवाले रसिकशेखर थे। कंसने कालपुरुष समझा और उसके भाइयोंने शत्रु। मल्लोंने अपनी मृत्युका स्थान माना और यादवोंने उनको प्राणोंके समान प्रिय देखा।

श्रीकृष्णने सभामें बैठे हुए मुनियों, ब्राह्मणों तथा माता, पिता एवं गुरुजनोंको नमस्कार किया। फिर वे हाथमें सुदर्शनचक्र लिये राजमञ्चके निकट गये। मुने! उन्होंने कंसको भक्तके रूपमें देखा।

भक्तोंके तो वे जीवनबन्धु ही हैं। कृपानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक कंसको मञ्चसे खींच लिया और लीलासे ही उसको मार डाला। उस समय राजा कंसको सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णमय दिखायी दे रहा था। मृत्युके पश्चात् उसके निकट हीरेके हारोंसे विभूषित रत्नमय विमान आ पहुँचा और वह दिव्य रूप धारण करके समृद्धिशाली हो उस विमानसे विष्णुधाममें जा पहुँचा। मुने! कंसका उत्कृष्ट तेज श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें प्रविष्ट हो गया। उसका और्ध्वदैहिक संस्कार एवं सत्कार करके श्रीहरिने ब्राह्मणोंको धनका दान किया। इसके बाद राज्य एवं राजाका छत्र बुद्धिमान् उग्रसेनको सौंप दिया। चन्द्रवंशी उग्रसेन पुनः यादवोंके 'राजेन्द्र' हो गये।

कंसकी माता, पत्नियाँ, पिता, बन्धु-बान्धव, मातृवर्गकी स्त्रियाँ, बहिन तथा भाइयोंकी स्त्रियाँ भी विलाप करने लगीं। वे बोलीं—'राजेन्द्र! उठो, राजसिंहासनपर बैठकर हमें दर्शन दो। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंका आधारभूत जो असंख्य विश्व हैं, उन सबकी जो स्वयं ही लीलापूर्वक सृष्टि करते हैं; ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, सूर्य तथा गणेश आदि देवता, मुनीन्द्रवर्ग और देवेन्द्रगण जिनका दिन-रात ध्यान करते हैं; वेद और सरस्वती भयभीत हो जिनका स्तवन करती हैं; प्रकृतिदेवी भी हर्षसे उल्लसित हो जिनके गुण गाती हैं; जो प्रकृतिसे परे, प्राकृतस्वरूप, स्वेच्छामय, निरीह, निर्गुण, निरञ्जन, परात्परतर ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, नित्यज्योतिःस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रहके लिये ही दिव्य देह धारण करनेवाले, नित्यानन्दमय, नित्यरूप तथा नित्य अविनाशी शरीर धारण करनेवाले हैं; वे ही मायापति भगवान् गोविन्द भूतलका भार उतारनेके लिये मायासे गोपबालकके वेषमें अवतीर्ण हुए हैं। वे सर्वेश्वर प्रभु जिसे मारते हैं, उसकी रक्षा कौन पुरुष कर सकता है? इसी प्रकार वे सर्वात्मा श्रीहरि जिसकी रक्षा करते हों उसे मारनेवाला भी कोई नहीं है*।'

महामुने! ऐसा कहकर सब लोग चुप हो गये। परिवारके लोगोंने ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उन्हें सब प्रकारका धन दिया। सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी पिताके निकट गये और उनकी बेड़ी-हथकड़ी काटकर उन्होंने माता और पिता दोनोंको बन्धनसे मुक्त किया। तत्पश्चात् उन देवेश्वरने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर माता-पिताको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति की।

**श्रीभगवान् बोले**—जो पुरुष पिता और माताका तथा विद्यादाता एवं मन्त्रदाता गुरुका पोषण नहीं करता, वह जीवनभर पापसे शुद्ध नहीं होता। समस्त पूजनीयोंमें पिता वन्दनीय महान् गुरु हैं। परंतु माता गर्भमें धारण एवं पोषण करती है; इसलिये पितासे भी सौगुनी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वीके समान क्षमाशीला और सबका समानरूपसे हित चाहनेवाली है; अतः भूतलपर सबके लिये मातासे बढ़कर बन्धु दूसरा कोई नहीं है। साथ ही यह भी सच है कि विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु मातासे भी बहुत बढ़-चढ़कर आदरके योग्य हैं। वेदके अनुसार गुरुसे बढ़कर वन्दनीय और पूजनीय दूसरा कोई नहीं है।

मुने! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण और बलरामने माताको प्रणाम किया। फिर माता-पिताने भी उन दोनोंको आदरपूर्वक गोदमें बिठा लिया और उन्हें उत्तम मिष्टान्न भोजन कराया। नन्द और ग्वालबालोंको भी बड़े आदरसे खिलाया। बच्चोंका मङ्गल-कृत्य कराया और उसके उपलक्ष्यमें भी बहुत-से ब्राह्मणोंको जिमाया। उस समय वसुदेवने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया। (अध्याय ७१-७२)

* स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्। स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥ (७२। १०५)

## श्रीकृष्णका नन्दको अपना स्वरूप और प्रभाव बताना; गोलोक, रासमण्डल और राधा-सदनका वर्णन; श्रीराधाके महत्त्वका प्रतिपादन तथा उनके साथ अपने नित्य सम्बन्धका कथन और दिव्य विभूतियोंका वर्णन

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! तदनन्तर शोकसे आतुर और पुत्रवियोगसे कातर हो फूट-फूटकर रोते हुए चेष्टाशून्य पिता नन्दको श्रीकृष्ण

और बलरामने आध्यात्मिक आदि दिव्य योगोंद्वारा सानन्द समझाना आरम्भ किया।

**श्रीभगवान् बोले**—बाबा! प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनो। शोक छोड़ो और हर्षको हृदयमें स्थान दो। मैं जो ज्ञान देता हूँ, इसे ग्रहण करो। यह वही ज्ञान है, जिसे पूर्वकालमें मैंने पुष्करमें ब्रह्मा, शेष, गणेश, महेश (शिव), दिनेश (सूर्य), मुनीश और योगीशको प्रदान किया था। यहाँ कौन किसका पुत्र, कौन किसका पिता और कौन किसकी माता है? यह पुत्र आदिका सम्बन्ध किस कारणसे है? जीव अपने पूर्वकृत कर्मसे प्रेरित हो इस संसारमें आते और परलोकमें जाते हैं। कर्मके अनुसार ही उनका विभिन्न स्थानोंमें जन्म होता है। कोई जीव अपने शुभकर्मसे प्रेरित हो योगीन्द्रोंके कुलमें जन्म लेता है और कोई राज-रानियोंके पेटसे उत्पन्न होता है। कोई ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या अथवा शूद्राओंके गर्भसे जन्म ग्रहण करता है; किसी-किसीकी उत्पत्ति पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें होती है। सब लोग मेरी ही मायासे विषयोंमें आनन्द लेते हैं और देहत्यागकालमें विषाद करते हैं। बान्धवोंके साथ बिछोह होनेपर भी लोगोंको बड़ा कष्ट होता है। संतान, भूमि और धन आदिका विच्छेद मरणसे भी अधिक कष्टदायक प्रतीत होता है। मूढ़ मनुष्य ही सदा इस तरहके शोकसे ग्रस्त होता है; विद्वान् पुरुष नहीं। जो मेरा भक्त है, मेरे भजनमें लगा है, मेरा यजन करता है, इन्द्रियोंको वशमें रखता है, मेरे मन्त्रका उपासक है और निरन्तर मेरी सेवामें संलग्न रहता है; वह परम पवित्र माना गया है। मेरे भयसे ही यह वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र भिन्न-भिन्न समयोंमें वर्षा करते हैं, आग जलाती है और मृत्यु सब जीवोंमें विचरती है। मेरा भय मानकर ही वृक्ष समयानुसार पुष्प और फल धारण करता है। वायु बिना किसी आधारके चलती है। वायुके आधारपर कच्छप, कच्छपके आधारपर शेष और शेषके आधारपर पर्वत टिके हुए हैं। पंक्तिबद्ध विद्यमान सात पाताल पर्वतोंके सहारे स्थित हैं। पातालोंसे जल सुस्थिर है और जलके ऊपर पृथ्वी टिकी हुई है। पृथ्वी सात स्वर्गोंकी आधारभूमि है। ज्योतिश्चक्र अथवा नक्षत्रमण्डल ग्रहोंके आधारपर स्थित हैं; परंतु वैकुण्ठ बिना किसी आधारके ही प्रतिष्ठित है। वह समस्त ब्रह्माण्डोंसे परे तथा श्रेष्ठ है। उससे भी परे गोलोकधाम है। वह वैकुण्ठधामसे पचास

करोड़ योजन ऊपर बिना आधारके ही स्थित है। उसका निर्माण दिव्य चिन्मय रत्नोंके सारतत्त्वसे हुआ है। उसके सात दरवाजे हैं। सात सार हैं। वह सात खाइयोंसे घिरा हुआ है। उसके चारों ओर लाखों परकोटे हैं। वहाँ विरजा नदी बहती है। वह लोक मनोहर रत्नमय पर्वत शतशृङ्गसे आवेष्टित है। शतशृङ्गका एक-एक उज्ज्वल शिखर दस-दस हजार योजन लंबा-चौड़ा है। वह पर्वत करोड़ों योजन ऊँचा है। उसकी लंबाई उससे सौगुनी है और चौड़ाई एक लाख योजन है। उसी धाममें बहुमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार रासमण्डल है; जिसका विस्तार दस हजार योजन है। वह फूलोंसे लदे हुए पारिजात-वनसे, एक सहस्र कल्पवृक्षोंसे और सैकड़ों पुष्पोद्यानोंसे घिरा हुआ है। वे पुष्पोद्यान नाना प्रकारके पुष्पसम्बन्धी वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण फूलोंसे भरे रहते हैं; अतएव अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। उस रासमण्डलमें तीन करोड़ रत्ननिर्मित भवन हैं, जिनकी रक्षामें कई लाख गोपियाँ नियुक्त हैं। वहाँ रत्नमय प्रदीप प्रकाश देते हैं। प्रत्येक भवनमें रत्ननिर्मित शय्या बिछी हुई है। नाना प्रकारकी भोगसामग्री संचित है। रासमण्डलके सब ओर मधुकी सैकड़ों बावलियाँ हैं। वहाँ अमृतकी भी बावलियाँ हैं और इच्छानुसार भोगके सभी साधन उपलब्ध हैं। गोलोकमें कितने गृह हैं, यह कौन बता सकता है? वहाँ केवल राधाका जो सुन्दर, रमणीय एवं उत्तम निवास-मन्दिर है, वह बहुमूल्य रत्ननिर्मित तीन करोड़ भव्य भवनोंसे शोभित है। जिनकी कीमत नहीं आँकी जा सकती, ऐसे रत्नोंद्वारा निर्मित चमकीले खम्भोंकी पंक्तियाँ उस राधाभवनको प्रकाशित करती हैं। वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंद्वारा चित्रित है। अनेक श्वेत चामर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। माणिक्य और मोतियोंसे जटित, हीरेके हारोंसे अलंकृत तथा रत्नमय प्रदीपोंसे प्रकाशित राधामन्दिर रत्नोंकी बनी हुई सीढ़ियोंसे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। बहुमूल्य रत्नोंके पात्र और शय्याओंकी श्रेणियाँ उस भवनकी शोभा बढ़ाती हैं। तीन खाइयों, तीन दुर्गम द्वारों और सोलह कक्षाओंसे युक्त राधाभवनके प्रत्येक द्वारपर और भीतर नियुक्त हुई सोलह लाख गोपियाँ इधर-उधर घूमती रहती हैं। उन सबके शरीरपर अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र शोभा पाते हैं। वे रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत हैं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान उद्भासित होती है। वे शत-शत चन्द्रमाओंकी मनोरम आभासे सम्पन्न हैं। राधिकाके किंकर भी ऐसे ही और इतने ही हैं। इन सबसे भरा हुआ उस भवनका अन्तःपुर बड़ा सुन्दर लगता है। उस भवनका आँगन बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित है। वह राधाभवन अत्यन्त मनोहर, अमूल्य रत्नमय खम्भोंके समुदायसे सुशोभित, फल-पल्लवसंयुक्त, रत्ननिर्मित मङ्गल-कलशोंसे अलंकृत और रत्नमयी वेदिकाओंसे विभूषित है। सुन्दर एवं बहुमूल्य रत्नमय दर्पण उसकी शोभा बढ़ाते हैं। अमूल्य रत्नोंसे निर्मित वह सुन्दर सदन सब भवनोंमें श्रेष्ठ है।

वहाँ श्रीराधारानी रत्नमय सिंहासनपर विराजमान होती हैं। लाखों गोपियाँ उनकी सेवामें रहती हैं। वे करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न हैं। श्वेत चम्पाके समान उनकी गौर कान्ति है। वे बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित आभूषणोंसे विभूषित हैं। अमूल्य रत्नजटित वस्त्र पहने, बायें हाथमें रत्नमय दर्पण तथा दाहिनेमें सुन्दर रत्नमय कमल धारण करती हैं। उनके ललाटमें अनारके फूलकी भाँति लाल और अत्यन्त मनोहर सिन्दूर शोभित होता है। उसके साथ ही कस्तूरी और चन्दनके सुन्दर बिन्दु भी भालदेशका सौन्दर्य बढ़ाते हैं। वे सिरपर बालोंका चूड़ा धारण करती हैं, जो मालतीकी मालासे अलंकृत होता है। ऐसी राधा गोलोकमें गोपियोंद्वारा सेवित होती हैं। उनकी सेवामें

रहनेवाली गोपियाँ भी उन्हींके समान हैं। वे हाथमें श्वेत चँवर लिये रहती हैं और बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित आभूषणोंसे विभूषित होती हैं। समस्त देवियोंमें श्रेष्ठ वे राधा ही मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे सुदामके शापसे इस समय भूतलपर वृषभानुनन्दिनीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। मेरे साथ उनका अब सौ वर्षोंतक वियोग रहेगा। पिताजी! इन्हीं सौ वर्षोंकी अवधिमें मैं भूतलका भार उतारूँगा। तदनन्तर निश्चय ही श्रीराधा, तुम, माता यशोदा, गोप, गोपीगण, वृषभानुजी, उनकी पत्नी कलावती तथा अन्य बान्धवजनोंके साथ मैं गोलोकको चलूँगा। बाबा! यही बात तुम प्रसन्नतापूर्वक मैया यशोदासे भी कह देना। महाभाग! शोक छोड़ो और व्रजवासियोंके साथ व्रजको लौट जाओ। मैं सबका आत्मा और साक्षी हूँ। सम्पूर्ण जीवधारियोंके भीतर रहकर भी उनसे निर्लिप्त हूँ। जीव मेरा प्रतिबिम्ब है; यही सर्वसम्मत सिद्धान्त है। प्रकृति मेरा ही विकार है अर्थात् वह प्रकृति भी मैं ही हूँ। जैसे दूधमें धवलता होती है। दूध और धवलतामें कभी भेद नहीं होता। जैसे जलमें शीतलता, अग्निमें दाहिका शक्ति, आकाशमें शब्द, भूमिमें गन्ध, चन्द्रमामें शोभा, सूर्यमें प्रभा और जीवमें आत्मा है; उसी प्रकार राधाके साथ मुझको अभिन्न समझो। तुम राधाको साधारण गोपी और मुझे अपना पुत्र न जानो। मैं सबका उत्पादक परमेश्वर हूँ और राधा ईश्वरी प्रकृति है*।

बाबा! मेरी सुखदायिनी विभूतिका वर्णन सुनो, जिसे पहले मैंने अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीको बताया था। मैं देवताओंमें श्रीकृष्ण हूँ। गोलोकमें स्वयं ही द्विभुजरूपसे निवास करता हूँ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज विष्णुरूपसे। शिवलोकमें मैं ही शिव हूँ। ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा हूँ। तेजस्वियोंमें सूर्य हूँ। पवित्रोंमें अग्नि हूँ। द्रव-पदार्थोंमें जल हूँ। इन्द्रियोंमें मन हूँ। शीघ्रगामियोंमें समीर (वायु) हूँ। दण्ड प्रदान करनेवालोंमें मैं यम हूँ। कालगणना करनेवालोंमें काल हूँ। अक्षरोंमें अकार हूँ। सामोंमें साम हूँ, चौदह इन्द्रोंमें इन्द्र हूँ। धनियोंमें कुबेर हूँ। दिक्पालोंमें ईशान हूँ। व्यापक तत्त्वोंमें आकाश हूँ। जीवोंमें सबका अन्तरात्मा हूँ। आश्रमोंमें ब्रह्मतत्त्वज्ञ संन्यास आश्रम हूँ। धनोंमें मैं सर्वदुर्लभ बहुमूल्य रत्न हूँ। तैजस पदार्थोंमें सुवर्ण हूँ। मणियोंमें कौस्तुभ हूँ। पूज्य प्रतिमाओंमें शालग्राम तथा पत्तोंमें तुलसीदल हूँ। फूलोंमें पारिजात, तीर्थोंमें पुष्कर, वैष्णवोंमें कुमार, योगीन्द्रोंमें गणेश, सेनापतियोंमें स्कन्द, धनुर्धरोंमें लक्ष्मण, राजेन्द्रोंमें राम, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, मासोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओंमें वसन्त, दिनोंमें रविवार, तिथियोंमें एकादशी, सहनशीलोंमें पृथ्वी, बान्धवोंमें माता, भक्ष्य वस्तुओंमें अमृत, गौसे प्रकट होनेवाले खाद्यपदार्थोंमें घी, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, कामधेनुओंमें सुरभि, नदियोंमें पापनाशिनी गङ्गा, पण्डितोंमें पाण्डित्यपूर्ण वाणी, मन्त्रोंमें प्रणव, विद्याओंमें उनका बीजरूप तथा खेतसे पैदा होनेवाली वस्तुओंमें धान्य हूँ। फलवान् वृक्षोंमें पीपल, गुरुओंमें मन्त्रदाता गुरु, प्रजापतियोंमें कश्यप, पक्षियोंमें गरुड़, नागोंमें अनन्त (शेषनाग), नरोंमें नरेश, ब्रह्मर्षियोंमें भृगु, देवर्षियोंमें नारद, राजर्षियोंमें जनक, महर्षियोंमें शुक, गन्धर्वोंमें चित्ररथ, सिद्धोंमें कपिलमुनि, बुद्धिमानोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, ग्रहोंमें शनि, शिल्पियोंमें विश्वकर्मा, मृगोंमें मृगेन्द्र, वृषभोंमें शिववाहन नन्दी, गजराजोंमें ऐरावत, छन्दोंमें गायत्री, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें वेद, जलचरोंमें उनका राजा वरुण, अप्सराओंमें उर्वशी, समुद्रोंमें जलनिधि, पर्वतोंमें सुमेरु, रत्नवान् शैलोंमें हिमालय, प्रकृतियोंमें देवी पार्वती तथा देवियोंमें लक्ष्मी हूँ।

मैं नारियोंमें शतरूपा, अपनी प्रियतमाओंमें

---

* यथा जीवस्तथात्मा च तथैव राधया सह। त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम्॥
अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिरीश्वरी। (७३। ५०½)

राधिका तथा साध्वी स्त्रियोंमें निश्चय ही वेदमाता सावित्री हूँ। दैत्योंमें प्रह्लाद, बलिष्ठोंमें बलि, ज्ञानियोंमें भगवान् नारायण ऋषि, वानरोंमें हनुमान्, पाण्डवोंमें अर्जुन, नागकन्याओंमें मनसा, वसुओंमें द्रोण, बादलोंमें द्रोण, जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंमें भारतवर्ष, कामियोंमें कामदेव, कामुकी स्त्रियोंमें रम्भा और लोकोंमें गोलोक हूँ, जो समस्त लोकोंमें उत्तम और सबसे परे है। मातृकाओंमें शान्ति, सुन्दरियोंमें रति, साक्षियोंमें धर्म, दिनके क्षणोंमें संध्या, देवताओंमें इन्द्र, राक्षसोंमें विभीषण, रुद्रोंमें कालाग्निरुद्र, भैरवोंमें संहारभैरव, शङ्खोंमें पाञ्चजन्य, अङ्गोंमें मस्तक, पुराणोंमें भागवत, इतिहासोंमें महाभारत, पाञ्चरात्रोंमें कापिल, मनुओंमें स्वायम्भुव, मुनियोंमें व्यासदेव, पितृपत्नियोंमें स्वधा, अग्निप्रियाओंमें स्वाहा, यज्ञोंमें राजसूय, यज्ञपत्नियोंमें दक्षिणा, अस्त्र-शस्त्रज्ञोंमें जमदग्निनन्दन महात्मा परशुराम, पौराणिकोंमें सूत, नीतिज्ञोंमें अङ्गिरा, व्रतोंमें विष्णुव्रत, बलोंमें दैवबल, ओषधियोंमें दूर्वा, तृणोंमें कुश, धर्मकर्मोंमें सत्य, स्नेहपात्रोंमें पुत्र, शत्रुओंमें व्याधि, व्याधियोंमें ज्वर, मेरी भक्तियोंमें दास्य-भक्ति, वरोंमें वर, आश्रमोंमें गृहस्थ, विवेकियोंमें संन्यासी, शस्त्रोंमें सुदर्शन और शुभाशीर्वादोंमें कुशल हूँ।

ऐश्वर्योंमें महाज्ञान, सुखोंमें वैराग्य, प्रसन्नता प्रदान करनेवालोंमें मधुर वचन, दानोंमें आत्मदान, संचयोंमें धर्मकर्मका संचय, कर्मोंमें मेरा पूजन, कठोर कर्मोंमें तप, फलोंमें मोक्ष, अष्ट सिद्धियोंमें प्राकाम्य, पुरियोंमें काशी, नगरोंमें काञ्ची, देशोंमें वैष्णवोंका देश और समस्त स्थूल आधारोंमें मैं ही महान् विराट् हूँ। जगत्में जो अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ हैं; उनमें मैं परमाणु हूँ। वैद्योंमें अश्विनीकुमार, भेषजोंमें रसायन, मन्त्रवेत्ताओंमें धन्वन्तरि, विनाशकारी दुर्गुणोंमें विषाद, रागोंमें मेघ-मलार, रागिनियोंमें कामोद, मेरे पार्षदोंमें श्रीदामा, मेरे बन्धुओंमें उद्धव, पशुजीवोंमें गौ, वनोंमें चन्दन, पवित्रोंमें तीर्थ और निःशंकोंमें वैष्णव हूँ; वैष्णवसे बढ़कर दूसरा कोई प्राणी नहीं है। विशेषतः वह जो मेरे मन्त्रकी उपासना करता है, सर्वश्रेष्ठ है। मैं वृक्षोंमें अंकुर तथा सम्पूर्ण वस्तुओंमें उनका आकार हूँ। समस्त भूतोंमें मेरा निवास है, मुझमें सारा जगत् फैला हुआ है। जैसे वृक्षमें फल और फलोंमें वृक्षका अंकुर है, उसी प्रकार मैं सबका कारणरूप हूँ; मेरा कारण दूसरा नहीं है। मैं सबका ईश्वर हूँ; मेरा ईश्वर दूसरा कोई नहीं है। मैं कारणका भी कारण हूँ। मनीषी पुरुष मुझे ही सबके समस्त बीजोंका परम कारण बताते हैं। मेरी मायासे मोहित हुए पापीजन मुझे नहीं जान पाते हैं। मैं सब जन्तुओंका आत्मा हूँ; परंतु दुर्बुद्धि और दुर्भाग्यसे वञ्चित पापग्रस्त जीव मुझ अपने आत्माका भी आदर नहीं करते। जहाँ मैं हूँ, उसी शरीरमें सब शक्तियाँ और भूख-प्यास आदि हैं; मेरे निकलते ही सब उसी तरह निकल जाते हैं, जैसे राजाके पीछे-पीछे उसके सेवक। व्रजराज नन्दजी! मेरे बाबा! इस ज्ञानको हृदयमें धारण करके व्रजको जाओ और राधा तथा यशोदा मैयाको इसका उपदेश दो।

इस ज्ञानको भलीभाँति समझकर नन्दजी अपने अनुगामी व्रजवासियोंके साथ व्रजको लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन दोनों नारीशिरोमणियोंसे उस ज्ञानकी चर्चा की। नारद! वह महाज्ञान पाकर सब लोगोंने अपना शोक त्याग दिया। श्रीकृष्ण यद्यपि निर्लिप्त हैं, तथापि मायाके स्वामी हैं; इसलिये मायासे अनुरक्त जान पड़ते हैं। यशोदाजीने पुनः नन्दरायजीको माधवके पास भेजा। उनकी प्रेरणासे फिर आकर नन्दजीने ब्रह्माजीके द्वारा किये गये सामवेदोक्त स्तोत्रसे परमानन्दस्वरूप नन्दनन्दन माधवकी स्तुति की। तत्पश्चात् वे पुत्रके सामने खड़े हो बार-बार रोदन करने लगे। (अध्याय ७३)

## श्रीकृष्णद्वारा नन्दजीको ज्ञानोपदेश, लोकनीति, लोकमर्यादा तथा लौकिक सदाचारसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध विधि-निषेधोंका वर्णन, कुसङ्ग और कुलटाकी निन्दा, सती और भक्तकी प्रशंसा, शिवलिङ्ग-पूजन एवं शिवकी महत्ता

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! भगवान् श्रीकृष्ण परमानन्दमय परिपूर्णतम प्रभु हैं। भक्तोंपर अनुग्रहके लिये व्याकुल रहनेवाले परम परमात्मा हैं। पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए वे भगवान् निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा परात्पर हैं। ब्रह्मा, शिव और शेष भी उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं। नन्दजीकी स्तुति सुनकर वे जगदीश्वर बहुत संतुष्ट हुए। नन्द बाबा विरहज्वरसे कातर हो गोकुलसे उनके पास आये थे। श्रीभगवान्‌ने उनसे इस प्रकार कहा—'बाबा! शोक और भ्रमको छोड़ो तथा व्रजको लौट जाओ। वहाँ जाकर सबको आनन्दित करो। मैं जो परम सत्य ज्ञान बता रहा हूँ, इसे सुनो। यह ज्ञान शोकग्रन्थिका उच्छेद करनेवाला है।

यों कह पञ्चभूतोंका वर्णन करते हुए श्रीहरिने नन्द बाबाको उत्तम ज्ञानका उपदेश दिया और अन्तमें कहा—'तात! मेरे भक्तोंका कहीं अमङ्गल नहीं होता। मेरा सुदर्शनचक्र प्रतिदिन उनकी सब ओरसे रक्षा करता है। मेरी यह बात यशोदा मैयासे, गोपियोंसे और गोपगणोंसे कहो। उन सबके साथ शोकको त्याग दो। अच्छा अब घरको जाओ।' यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी सभामें चुप हो गये। तब आनन्दमग्न नन्दने पुनः उनसे पूछा।

**नन्द बोले**—परमानन्दस्वरूप गोविन्द! मैं मूढ़ हूँ और तुम वेदोंके उत्पादक हो। मुझे ऐसा लौकिक ज्ञान बताओ, जिससे तुम्हारे चरणोंको प्राप्त कर सकूँ।

नन्दजीकी यह बात सुनकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें श्रुतिदुर्लभ आह्निक-कृत्यसम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया।

**श्रीभगवान् बोले**—तात! मैं तुम्हें वह परम अद्भुत ज्ञान प्रदान करता हूँ, जो वेदोंमें अत्यन्त गोपनीय और पुराणोंमें अत्यन्त दुर्लभ है, कुलटा स्त्रियाँ मोक्ष-मार्गके द्वारको ढकनेके लिये अर्गलाएँ हैं, भ्रम और मायाकी सुन्दर भूमियाँ हैं; उनपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। व्रजराज! असाध्वी स्त्रियाँ हरिभक्तिके विरुद्ध होती हैं। वे नाशकी बीजरूपा हैं। उनपर विश्वास करना कदापि उचित नहीं है। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर रातमें पहने हुए कपड़ोंको त्याग दे और हृदय-कमलमें इष्टदेवका तथा ब्रह्मरन्ध्रमें परम गुरुका चिन्तन करे। मन-ही-मन उनका चिन्तन करके प्रातःकालिक कृत्य पूर्ण करनेके पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष निश्चय ही निर्मल जलमें स्नान करे। कर्मका उच्छेद करनेवाला भक्त कोई कामना या संकल्प नहीं करता। वह स्नान करके भगवान्‌का स्मरण करता और संध्या करके घरको लौट जाता है। दरवाजेपर दोनों पैर धोकर वह घरमें प्रवेश करे और धुले हुए दो वस्त्र (धोती-चादर) धारण करके मोक्षके कारणभूत मुझ परमात्माका ही पूजन करे। शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, जल, ब्राह्मण, गौ तथा गुरुमें सामान्यरूपसे मेरी स्थिति मानकर इनमें कहीं भी मेरी पूजा करनी चाहिये। कलशमें, अष्टदल कमलमें तथा चन्दननिर्मित पात्रमें भी मेरी पूजा की जा सकती है। सर्वत्र पूजनके समय आवाहन करे; परंतु शालग्राम-शिलामें और जलमें पूजा करनी हो तो आवाहन न करे। मन्त्रके अनुरूप ध्यानका श्लोक पढ़कर मेरा ध्यान करनेके पश्चात् व्रती पुरुष षोडशोपचारकी

सामग्री क्रमशः अर्पित करे और भक्तिभावसे मूलमन्त्रद्वारा पूजा करे। मेरे साथ ही प्रथम आवरणमें श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, वीरभानु और शूरभानु—इन पाँच गोपोंका पूजन करे। तत्पश्चात् सुनन्द, नन्द, कुमुद और सुदर्शन—इन पार्षदोंका; लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, गङ्गा और पृथ्वी—इन देवियोंका; गुरु, तुलसी, शिव, कार्तिकेय और विनायकका तथा नवग्रहों और दस दिक्पालोंका सब दिशाओंमें विद्वान् पुरुष पूजन करे। सबसे पहले विघ्न-निवारणके लिये गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छः देवताओंका पूजन करना चाहिये। ये वेदोक्त देवता कर्मबन्धनको काटनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। विघ्नोंके नाशके लिये गणेशका, रोगनिवारणके लिये सूर्यका, अभीष्टकी प्राप्ति तथा अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये अग्निका, मोक्षके निमित्त विष्णुका, ज्ञानदानके लिये शिवका तथा बुद्धि और मुक्तिके लिये विद्वान् पुरुष पार्वतीका पूजन करे। तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर उन-उन देवताओंके स्तोत्र और कवचका पाठ करे। गुरुका वन्दन और पूजन करनेके पश्चात् देवताको प्रणाम करे। नित्यकर्म करके देवपूजनके पश्चात् सुखपूर्वक यथाप्राप्त कार्य करनेका विधान है। यह नित्यकर्म वेदवर्णित है। इसका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषकी आत्मशुद्धि होती है।

बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, गुप्ताङ्ग, स्त्रियोंके अङ्ग, कटाक्ष और हास्य आदि न देखे; क्योंकि ये सब विनाशके बीज हैं। उनका रूप सदा ही विपत्तिका कारण है। दिनमें अपनी स्त्रीके साथ भी समागम न करे; क्योंकि दिनमें स्त्री-सहवास करनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है; नेत्रों और कानोंमें पीड़ा होती है। जब आकाशमें एक ही तारा उगा हो, उस समय उधर नहीं देखना चाहिये; अन्यथा रोगोंका भय प्राप्त होता है। यदि उस एक तारेको देख ले तो देवताओंका दर्शन और भगवान्‌का स्मरण करके सात बार नारदजीका नाम जपे। अस्तके समय सूर्य और चन्द्रमाको न देखे; क्योंकि उस समय उन्हें देखनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है। कृष्णपक्षमें खण्डित चन्द्रमाके उदयकालमें उसे न देखे; अन्यथा रोग होता है। जलमें सूर्य और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखनेसे मनुष्यको शोककी प्राप्ति होती है। पराया मैथुन देखनेसे भाईका वियोग होता है; इसलिये उसे न देखे। पापीके साथ एक जगह सोना, बैठना, भोजन करना और घूमना-फिरना निषिद्ध है; क्योंकि वह सब नाशका लक्षण है। किसीके साथ बात करने, शरीरको छूने, सोने, बैठने और भोजन करनेसे उन दोनोंके पाप एक-दूसरेमें अवश्य संचरित होते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे तेलका बिन्दु पानीमें पड़नेसे फैल जाता है। हिंसक जन्तुके समीप न जाय; क्योंकि उसके पास जाना दुःखका कारण होता है। दुष्टके साथ मेल-जोल न बढ़ावे; क्योंकि वह शोकप्रद होता है। ब्राह्मणों, गौओं तथा विशेषतः वैष्णवोंकी हिंसा न करे; उनकी हिंसा सर्वनाशका कारण बन जाती है। देवता, देवपूजक, ब्राह्मण और वैष्णवोंके धनका अपहरण न करे; क्योंकि वह धन सर्वनाशका कारण होता है। जो अपने या दूसरेके द्वारा दी हुई ब्राह्मणवृत्तिका अपहरण करता है; वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। ब्राह्मणको देनेके लिये जो दक्षिणा संकल्प की जाती है, वह यदि तत्काल न दे दी जाय तो एक रात बीतनेपर दूनी, एक मास बीतनेपर सौगुनी और दो मास बीतनेपर वह सहस्रगुनी हो जाती है। एक वर्ष बीत जाय तो दाता नरकमें पड़ता है। यदि दाता न दे और मूर्ख गृहीता न माँगे तो दोनों नरकमें पड़ते हैं। दाता रोगी होता है। ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेसे अवश्य ही वंशकी हानि होती है। हिंसक मनुष्य धन और लक्ष्मीको खोकर भिखमंगा हो जाता है। देवता और ब्राह्मणको देखकर जो

मस्तक नहीं झुकाता, वह शोकका भागी होता है। जो गुरुके प्रति भक्तिभाव नहीं रखता, उसे रौरव नरकका कष्ट भोगना पड़ता है।

जो दुराचारिणी मूढ़ा स्त्री साक्षात् श्रीहरिस्वरूप अपने पतिकी ओर नहीं देखती, उलटे उसे डाँट बताती है; वह निश्चय ही कुम्भीपाकमें जाती है। वाणीद्वारा डाँट बतानेके कारण वह कौएकी योनिमें जन्म लेती है। हिंसा करनेसे सूअर होती है। क्रोध करनेसे सर्पिणी और दर्प दिखानेसे गर्दभी होती है। कुवाक्य बोलनेसे कुक्कुरी और विष देनेसे अन्धी होती है। पतिव्रता स्त्री निश्चय ही पतिके साथ वैकुण्ठधाममें जाती है। जो मूढ़ शिव, पार्वती, गणेश, सूर्य, ब्राह्मण, वैष्णव तथा विष्णुकी निन्दा करता है; वह महारौरव नामक नरकमें गिरता है। पिता, माता, पुत्र, सती पत्नी, गुरु, अनाथा स्त्री, बहिन और पुत्रीकी निन्दा करके मनुष्य नरकगामी होता है। जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिभावसे रहित हैं और भगवद्भक्तिसे भी दूर हैं; वे निश्चय ही नरकमें पकाये जाते हैं। यही दशा पतिभक्तिसे शून्य नराधमा स्त्रियोंकी होती है।

जो ब्राह्मण शालग्रामका चरणामृत पीते और भगवान् विष्णुका प्रसाद खाते हैं वे तीर्थोंको भी पवित्र कर देते हैं। अपनी सौ पीढ़ियोंको तारते और पृथ्वीको भी उबारते हैं। जो भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करता और मछली-मांस नहीं खाता है; वह निश्चय ही पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जो एकादशी और कृष्णजन्माष्टमीका व्रत करते हैं, वे सौ जन्मोंके किये हुए पापसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो-जो पाप बन गये हैं, वे सब भस्म हो जाते हैं। रोगी, अत्यन्त वृद्ध और बालकके लिये उपवासका नियम नहीं है। भक्त ब्राह्मणको द्विगुण भोजनका दान करके दाता शुद्ध हो जाता है। जो उपवासमें समर्थ होकर भी शिवरात्रि तथा श्रीरामनवमीके दिन भोजन करता है; वह महारौरव नरकमें पड़ता है। अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमीको स्त्री, तैल तथा मांसका सेवन करनेसे मनुष्य चाण्डाल-योनिमें जन्म लेता है। रविवारको काँस्यपात्रमें भोजन न करे। उस दिन मसूरकी दाल, अदरख और लाल रंगका शाक भी न खाय। व्रजेश्वर! जो ब्राह्मण रजस्वला और वेश्याके हाथका तथा मदिरामिश्रित अन्न खा लेता है; वह निश्चय ही मलभोजी जन्तु होता है। वह उस दिन जो सत्कर्म करता है, उसका फल उसे नहीं मिलता। वह सदा अपवित्र रहता है। उसका अशौच उसके मरनेके बाद ही समाप्त होता है। जिस स्त्रीने अपने जीवनमें चार पुरुषोंके साथ समागम कर लिया; उसे वेश्या समझना चाहिये। वह देवताओं और पितरोंके लिये भोजन बनानेकी अधिकारिणी नहीं है।

जो प्रातःकाल और सायंकालकी संध्योपासना नहीं करता, उसका समस्त द्विजोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बहिष्कार कर देना चाहिये। संध्याहीन द्विज नित्य अपवित्र तथा समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य होता है। वह दिनमें जो सत्कर्म करता है; उसका फल उसे नहीं मिलता। राममन्त्रसे हीन ब्राह्मण नरकमें पड़ता है। नदीके बीचमें, गड्ढेमें, वृक्षकी जड़में, पानीके निकट, देवताके समीप और खेतीसे भरी हुई भूमिपर समझदार मनुष्य मलत्याग न करे। बाँबीसे निकली हुई, चूहेकी खोदी हुई, पानीके भीतरसे निकाली हुई, शौचसे बची हुई और घरके लीपनेसे प्राप्त हुई मिट्टीको शौचके काममें न ले। जिस मिट्टीमें चींटी आदि प्राणी हों, उसे भी शौचके काममें न ले। व्रजेश्वर! हल चलानेसे उखड़ी हुई, पौधोंके थालेसे निकाली हुई, जिस खेतमें खेती लहलहा रही हो उसकी मिट्टी, वृक्षकी जड़से खोदकर ली हुई मिट्टी तथा नदीके पेटेसे निकाली हुई मृत्तिका—इन सबको

शौचके काममें त्याग देना चाहिये। कुम्हड़ा काटने या फोड़नेवाली स्त्री और दीपक बुझानेवाले पुरुष कई जन्मोंतक रोगी होते हैं और जन्म-जन्ममें दरिद्र रहते हैं। दीपक, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, देवप्रतिमा, यज्ञोपवीत, सोना और शङ्ख—इन सबको भूमिपर न रखे। दिनमें और दोनों संध्याओंके समय जो नींद लेता या स्त्री-सहवास करता है, वह कई जन्मोंतक रोगी और दरिद्र होता है। मिट्टी, राख, गोबर—इसके पिण्डसे या बालूसे भी शिवलिङ्गका निर्माण करके एक बार उसकी पूजा कर लेनेवाला पुरुष सौ कल्पोंतक स्वर्गमें निवास करता है। सहस्र शिवलिङ्गोंके पूजनसे मनुष्यको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है और जिसने एक लाख शिवलिङ्गोंकी पूजा कर ली है, वह निश्चय ही शिवत्वको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण शिवलिङ्गकी पूजा करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और जो शिवपूजासे रहित है, वह ब्राह्मण नरकगामी होता है। जो मनुष्य मेरेद्वारा पूजित प्रियतम शिवकी निन्दा करते हैं, वे सौ ब्रह्माओंकी आयुपर्यन्त नरककी यातना भोगते हैं। समस्त प्रियजनोंमें ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय हैं। ब्राह्मणसे अधिक शंकर प्रिय हैं। मेरे लिये शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। 'महादेव, महादेव, महादेव'—इस प्रकार बोलनेवाले पुरुषके पीछे-पीछे मैं नामश्रवणके लोभसे फिरता रहता हूँ। शिव नाम सुनकर मुझे बड़ी तृप्ति होती है। मेरा मन भक्तके पास रहता है। प्राण राधामय हैं, आत्मा शंकर हैं। शंकर मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली आद्या नारायणी शक्ति है, जिसके द्वारा मैं सृष्टि करता हूँ, जिससे ब्रह्मा आदि देवता उत्पन्न होते हैं, जिसका आश्रय लेनेसे जगत् विजयी होता है, जिससे सृष्टि चलती है और जिसके बिना संसारका अस्तित्व ही नहीं रह सकता; वह शक्ति मैंने शिवको अर्पित की है।*

(अध्याय ७४-७५)

## जिनके दर्शनसे पुण्यलाभ और जिनके अनुष्ठानसे पुनर्जन्मका निवारण होता है, उन वस्तुओं और सत्कर्मोंका वर्णन तथा विविध दानोंके पुण्यफलका कथन

**श्रीनन्दने कहा**—सर्वेश्वर! जिनके दर्शनसे पुण्य और जिन्हें देखनेसे पाप होता है, उन सबका परिचय दो। यह सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

**श्रीभगवान् बोले**—तात! उत्तम ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव, देवप्रतिमा, सूर्यदेव, सती स्त्री, संन्यासी, यति, ब्रह्मचारी, गौ, अग्नि, गुरु, गजराज, सिंह, श्वेत अश्व, शुक, कोकिल, खञ्जरीट, हंस, मोर, नीलकण्ठ, शङ्खपक्षी, बछड़ेसहित गाय, पीपलवृक्ष, पति-पुत्रवाली नारी, तीर्थयात्री मनुष्य, प्रदीप, सुवर्ण, मणि, मोती, हीरा, माणिक्य, तुलसी, श्वेत पुष्प, फल, श्वेत धान्य, घी, दही, मधु, भरा हुआ घड़ा, लावा, दर्पण, जल, श्वेत पुष्पोंकी माला, गोरोचन, कपूर, चाँदी, तालाब, फूलोंसे भरी हुई वाटिका, शुक्लपक्षके चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुङ्कुम, पताका, अक्षयवट,

---

* महादेव महादेव महादेवेतिवादिनः। पश्चाद् यामि च संत्रस्तो नामश्रवणलोभतः॥
मनो मे भक्तमूलं च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम्। आत्मा मे शंकरस्थानं शिवः प्राणाधिकश्च मे॥
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः॥
यया जयति विश्वं च यया सृष्टिः प्रजायते। यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय च॥
(७५। ८९—९२)

देववृक्ष, देवालय, देवसम्बन्धी जलाशय, देवताके आश्रित भक्त, देवघट, सुगन्धित वायु, शङ्ख, दुन्दुभि, सीपी, मूँगा, रजत, स्फटिक मणि, कुशकी जड़, गङ्गाजीकी मिट्टी, कुशा, ताँबा, पुराणकी पुस्तक, शुद्ध और बीजमन्त्रसहित विष्णुका यन्त्र, चिकनी दूब, अक्षत, रत्न, तपस्वी, सिद्धमन्त्र, समुद्र, कृष्णसार मृग, यज्ञ, महान् उत्सव, गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोधूलि, गोशाला, गोखुर, पकी हुई खेतीसे भरा खेत, सुन्दर पद्मिनी, श्यामा, सुन्दर वेष, वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित सौभाग्यवती स्त्री, क्षेमकरी, गन्ध, दूर्वा, अक्षत और तण्डुल, सिद्धान्न एवं उत्तम अन्न—इन सबके दर्शनसे पुण्यलाभ होता है।

कार्तिककी पूर्णिमाको राधिकाजीकी शुभ प्रतिमाका पूजन, दर्शन और वन्दन करके मनुष्य जन्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार आश्विनमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको हिंगुलामें श्रीदुर्गाजीकी प्रतिमाका तथा शिवरात्रिको काशीमें विश्वनाथजीका दर्शन, उपवास और पूजन करनेसे पुनर्जन्मके कष्टका निवारण हो जाता है। यदि भक्त पुरुष जन्माष्टमीके दिन मुझ बिन्दुमाधवका दर्शन, वन्दन और पूजन कर ले; पौषमासके शुक्लपक्षकी रात्रिमें जहाँ कहीं भी पद्माकी प्रतिमाका दर्शन प्राप्त कर ले; काशीमें एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल स्नानकर अन्नपूर्णाजीका दर्शन कर ले; चैत्रमासकी चतुर्दशीको पुण्यदायक कामरूप देशमें भद्रकाली देवीका दर्शन और वन्दन कर ले; अयोध्यामें श्रीरामनवमीके दिन मुझ रामका पूजन, वन्दन और दर्शन कर ले तथा गयाके विष्णुपदतीर्थमें जो पिण्ड-दान एवं विष्णुका पूजन कर ले तो वह पुरुष अपने पुनर्जन्मके कष्टका निवारण कर लेता है। साथ ही गयातीर्थके श्राद्धसे वह पितरोंका भी उद्धार करता है। यदि प्रयागमें मुण्डन करके और नैमिषारण्यमें उपवास करके मनुष्य दान करे; पुष्कर अथवा बदरिकाश्रम-तीर्थमें उपवास, स्नान, पूजन एवं विग्रहका दर्शन कर ले; बदरिकाश्रममें सिद्धि प्राप्त करके बेरका फल खाय और मेरी प्रतिमाका दर्शन करे; पवित्र वृन्दावनमें झूलते हुए मुझ गोविन्दका दर्शन एवं पूजन करे; भाद्रपदमासमें मञ्चपर आसीन हुए मुझ मधुसूदनका जो भक्त दर्शन, पूजन एवं नमस्कार करे; कलियुगमें यदि मनुष्य रथयात्राके समय भक्तिभावसे रथारूढ़ जगन्नाथका दर्शन, पूजन एवं प्रणाम करे; उत्तरायणकी संक्रान्तिको प्रयागमें स्नान कर ले और वहीं मुझ वेणीमाधवका पूजन एवं नमन करे; कार्तिककी पूर्णिमाको उपवासपूर्वक मेरी शुभ प्रतिमाका दर्शन एवं पूजन कर ले; चन्द्रभागाके निकट माघकी अमावास्या एवं पूर्णिमाको राधासहित मुझ श्रीकृष्णका दर्शन और वन्दन कर ले तथा सेतुबन्धतीर्थमें आषाढ़की पूर्णिमाके दिन यदि कोई उपवासपूर्वक रामेश्वरके दर्शन एवं पूजनका सौभाग्य प्राप्त कर ले तो वह अपने पुनर्जन्मका खण्डन कर लेता है। रामेश्वरमें रातके समय गन्धर्व और किन्नर मनोहर गान करते हैं। साक्षात् माधव रामेश्वरको प्रणाम करनेके लिये वहाँ आते हैं। वहाँ साक्षात् रूपसे निवास करनेवाले सर्वेश्वर चन्द्रशेखरका दर्शन करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और अन्तमें श्रीहरिके धामको जाता है। जो उत्तरायणमें कोणार्कतीर्थके भीतर दीननाथ भगवान् सूर्यका दर्शन एवं उपवासपूर्वक पूजन करता है; वह पुनर्जन्मके कष्टको नष्ट कर देता है। कृषिगोष्ठ, सुवसन, कलविङ्क, युगन्धर, विस्यन्दक, राजकोष्ठ, नन्दक तथा पुष्पभद्रकतीर्थमें पार्वतीकी प्रतिमा तथा कार्तिकेय, गणेश, नन्दी एवं शंकरका दर्शन करके मनुष्य अपने जन्मको सफल बना लेता है। वहाँ उपवासपूर्वक पार्वती और शिवका दर्शन, पूजन तथा स्तवन करके जो दही खाकर पारणा करता है; उसका जन्म सफल हो जाता है। त्रिकूटपर, मणिभद्रतीर्थमें तथा पश्चिम समुद्रके

समीप जो उपवासपूर्वक मेरा दर्शन करके दही खाता है; वह मोक्षका भागी होता है। जो मेरी तथा पार्वतीकी प्रतिमाओंमें जीव-चैतन्यका न्यास करके उनका पूजन करता है, जो शिव और दुर्गाके तथा विशेषतः मेरे लिये मन्दिरका निर्माण करता और उन मन्दिरोंमें शिव आदिकी प्रतिमाको स्थापित करता है; वह अपने जन्मको सफल बना लेता है। जो पुष्पोद्यान, शंकु, सेतु, खात (कुआँ आदि) और सरोवरका निर्माण तथा ब्राह्मणको स्थान एवं वृत्ति देकर उसकी स्थापना करता है; उसका जन्म सफल हो जाता है।

पिताजी! ब्राह्मणकी स्थापना करनेसे जो फल होता है; उसे वेद, पुराण, संत, मुनि और देवता भी नहीं जानते। धरतीपर जो धूलिके कण हैं, वे गिने जा सकते हैं; वर्षाकी बूँदें भी गिनी जा सकती हैं; परंतु ब्राह्मणको वृत्ति और स्थान देकर बसा देनेमें जो पुण्यफल होता है; उसकी गणना विधाता भी नहीं कर सकते। ब्राह्मणको जीविका देकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, सुस्थिर सम्पत्ति पाता है और परलोकमें चारों प्रकारकी मुक्तियोंका भागी होता है। वह मेरी दास्य-भक्तिको पा लेता और वैकुण्ठमें चिरकालतक आनन्द भोगता है। मुझ परमात्माकी तरह उसका भी कभी वहाँसे पतन नहीं होता। जो उत्तम, अनाथ, दरिद्र और पूर्णतः पण्डित ब्राह्मणको सुपात्र देख उसका विवाह कर देता है; उसे निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। छत्र, चरणपादुका, शालग्राम तथा कन्याके दानका फल पृथ्वीदानके समान माना गया है। हाथीका दान करनेपर उसके रोएँके बराबर वर्षोंतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है; यह शास्त्रमें प्रसिद्ध है। गजराजके दानका फल इससे चौगुना माना गया है। श्वेत घोड़ेके दानका पुण्य गजदानसे आधा बताया गया है और अन्य घोड़ोंके दानका फल श्वेत घोड़ेके दानकी अपेक्षा आधा कहा गया है। काली गौके दानका फल गजदानके ही तुल्य है। धेनुदानका फल भी वैसा ही है। सामान्य गोदानका फल उससे आधा कहा गया है। बछड़ा व्याई हुई गौके दानसे भूमिदानका फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको भोजन कराया जाय तो उससे सम्पूर्ण दानोंका फल प्राप्त हो जाता है। अन्नदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। उसमें पात्रकी परीक्षा आवश्यक नहीं है—अन्नदान पानेके सभी अधिकारी हैं। अन्नदानके लिये कहीं किसी कालका भी नियम नहीं है—भूखेको सदा ही अन्न दिया जा सकता है। अन्नदानसे दाताको सतत पुण्यफलकी प्राप्ति होती है और उसे लेनेवाले पात्र (व्यक्ति)-को भी प्रतिग्रहका दोष नहीं लगता। भूतलपर अन्नदान धन्य है, जो वैकुण्ठकी प्राप्तिका हेतु होता है*। जो दरिद्र एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको वस्त्र देता है, उसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है। लोहेके दीपमें सोनेकी बत्ती रखकर जो परमात्मा श्रीहरिके लिये घृतसहित उस दीपका दान करता है; वह मेरे धाममें जाता है। फूलकी माला, फल, शय्या, गृह और अन्नके दानसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है। इन सभी दानोंसे दीर्घकालतकके लिये श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। यदि इन दानोंका निष्काम भावसे अनुष्ठान हो तो इनसे भगवत्प्राप्ति भी हो सकती है। व्रजराज! तुम व्रजभूमिमें जाकर प्रत्येक व्रजमें ब्राह्मणोंको भोजन कराओ। यह मैंने तुम्हें पुण्यवर्धक दानका परिचय दिया है। नीच पुरुषोंके प्रति इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। (अध्याय ७६)

---

*अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥
अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी। अन्नदानं च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम्॥
(७६। ६४-६५)

## सुस्वप्न-दर्शनके फलका विचार

**नन्दजीने पूछा**—प्रभो! किस स्वप्नसे कौन-सा पुण्य होता है और किससे मोक्ष एवं सुखकी सूचना मिलती है? कौन-कौन-सा स्वप्न शुभ बताया गया है?

**श्रीभगवान् बोले**—तात! वेदोंमें सामवेद समस्त कर्मोंके लिये श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार कण्वशाखाके मनोहर पुण्यकाण्डमें भी इस विषयका वर्णन है। जो दु:स्वप्न है और जो सदा पुण्यफल देनेवाला सुस्वप्न है, वह सब जैसा पूर्वोक्त कण्वशाखामें बताया गया है; उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। यह स्वप्नाध्याय अधिक पुण्य-फल देनेवाला है। अत: इसका वर्णन करता हूँ। इसका श्रवण करनेसे मनुष्यको गङ्गास्नानके फलकी प्राप्ति होती है। रातके पहले पहरमें देखा गया स्वप्न एक वर्षमें फल देता है। दूसरे पहरका स्वप्न आठ महीनोंमें, तीसरे पहरका स्वप्न तीन महीनोंमें और चौथे पहरका स्वप्न एक पक्षमें अपना फल प्रकट करता है। अरुणोदयकी बेलामें देखा गया स्वप्न दस दिनमें फलद होता है। प्रात:कालका स्वप्न यदि तुरंत नींद टूट जाय तो तत्काल फल देनेवाला होता है। दिनको मनमें जो कुछ देखा और समझा गया है, वह सब अवश्य सपनेमें लक्षित होता है। तात! चिन्ता या रोगसे युक्त मनुष्य जो स्वप्न देखता है, वह सब नि:संदेह निष्फल होता है। जो जडतुल्य है, मल-मूत्रके वेगसे पीड़ित है, भयसे व्याकुल है, नग्न है और बाल खोले हुए है, उसे अपने देखे हुए स्वप्नका कोई फल नहीं मिलता। निद्रालु मनुष्य स्वप्न देखकर यदि पुन: नींद लेने लग जाता है अथवा मूढ़तावश रातमें ही किसी दूसरेसे कह देता है; तब उसे उस स्वप्नका फल नहीं मिलता। किसी नीच पुरुषसे, शत्रुसे, मूर्ख मनुष्यसे, स्त्रीसे अथवा रातमें ही किसी दूसरेसे स्वप्नकी बात कह देनेपर मनुष्यको विपत्ति, दुर्गति, रोग, भय, कलह, धनहानि एवं चोर-भयका सामना करना पड़ता है।

व्रजेश्वर! स्वप्नमें गौ, हाथी, अश्व, महल, पर्वत और वृक्षोंपर चढ़ना, भोजन करना तथा रोना धनप्रद कहा गया है। हाथमें वीणा लेकर गीत गाना खेतीसे भरी हुई भूमिकी प्राप्तिका सूचक होता है। यदि स्वप्नमें शरीर अस्त्र-शस्त्रसे विद्ध हो जाय, उसमें घाव हों, कीड़े हो जायँ, विष्ठा अथवा खूनसे शरीर लिप्त हो जाय तो यह धनकी प्राप्तिका सूचक है। स्वप्नमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम भार्याप्राप्तिकी सूचना देनेवाला है। जो स्वप्नमें मूत्रसे भीग जाता, वीर्यपात करता, नरकमें प्रवेश करता, नगर या लाल समुद्रमें घुसता अथवा अमृत पान करता है; वह जगनेपर शुभ समाचार पाता है और उसे प्रचुर धनराशिका लाभ होता है। स्वप्नमें हाथी, राजा, सुवर्ण, वृषभ, धेनु, दीपक, अन्न, फल, पुष्प, कन्या, छत्र, ध्वज और रथका दर्शन करके मनुष्य कुटुम्ब, कीर्ति और विपुल सम्पत्तिका भागी होता है। भरे हुए घड़े, ब्राह्मण, अग्नि, फूल, पान, मन्दिर, श्वेत धान्य, नट एवं नर्तकीको स्वप्नमें देखनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। गोदुग्ध और घीके दर्शनका भी यही फल है। सपनेमें कमलके पत्तेपर खीर, दही, दूध, घी, मधु और स्वस्तिक नामक मिष्टान्न खानेवाला मनुष्य भविष्यमें अवश्य ही राजा होता है। छत्र, पादुका और निर्मल एवं तीखे खड्गकी प्राप्ति धान्य-लाभकी सूचना देती है। खेल-खेलमें ही पानीके ऊपर तैरनेवाला मनुष्य प्रधान होता है। फलवान् वृक्षका दर्शन और सर्पका दंशन धन-प्राप्तिका सूचक है। स्वप्नमें सूर्य और चन्द्रमाके दर्शनसे रोग दूर होता है। घोड़ी, मुर्गी और क्रौञ्चीको देखनेसे भार्याका लाभ होता है।

स्वप्नमें जिसके पैरोंमें बेड़ी पड़ गयी, उसे प्रतिष्ठा और पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो सपनेमें नदीके किनारे नये अथवा फटे-पुराने कमलके पत्तेपर दही मिला हुआ अन्न और खीर खाता है; वह भविष्यमें राजा होता है। जलौका (जोंक), बिच्छू और साँप यदि स्वप्नमें दिखायी दें तो धन, पुत्र, विजय एवं प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है। सींग और बड़ी-बड़ी दाढ़वाले पशुओं, सूअरों और वानरोंसे यदि स्वप्नमें पीडा प्राप्त हो तो मनुष्य निश्चय ही राजा होता और प्रचुर धन-राशि प्राप्त कर लेता है। जो स्वप्नमें मत्स्य, मांस, मोती, शङ्ख, चन्दन, हीरा, शराब, खून, सुवर्ण, विष्ठा तथा फले-फूले बेल और आमको देखता है; उसे धन मिलता है। प्रतिमा और शिवलिङ्गके दर्शनसे विजय और धनकी प्राप्ति होती है। प्रज्वलित अग्निको देखकर मनुष्य धन, बुद्धि और लक्ष्मी पाता है। आँवला और कमल धनप्राप्तिका सूचक है। देवता, द्विज, गौ, पितर और साम्प्रदायिक चिह्नधारी पुरुष स्वप्नमें परस्पर जिस वस्तुको देते हैं; उसका फल भी वैसा ही होता है। श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत अनुलेपनसे सुसज्जित सुन्दरियाँ स्वप्नमें जिस पुरुषका आलिङ्गन करती हैं, उसे सुख और सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष स्वप्नमें पीत वस्त्र, पीले पुष्पोंकी माला और पीले रंगका अनुलेपन धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; उसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। स्वप्नमें भस्म, रूई और हड्डीको छोड़कर शेष सभी श्वेत वस्तुएँ प्रशंसित हैं और कृष्णा गौ, हाथी, घोड़े, ब्राह्मण तथा देवताको छोड़कर शेष सभी काली वस्तुएँ अत्यन्त निन्दित हैं।

रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित दिव्य ब्राह्मणजातीय स्त्री मुस्कराती हुई जिसके घरमें आती है; उसे निश्चय ही प्रिय पदार्थकी प्राप्ति होती है। स्वप्नमें ब्राह्मण देवताका स्वरूप है और ब्राह्मणी देवकन्याका। ब्राह्मण और ब्राह्मणी संतुष्ट हो मुस्कराते हुए स्वप्नमें जिसको कोई फल दें, उसे पुत्र होता है। पिताजी! ब्राह्मण स्वप्नमें जिसे शुभाशीर्वाद देते हैं, उसे अवश्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सपनेमें संतुष्ट ब्राह्मण जिसके घर आ जाय; उसके यहाँ नारायण, शिव और ब्रह्माका प्रवेश होता है; उसे सम्पत्ति, महान् सुयश, पग-पगपर सुख, सम्मान और गौरवकी प्राप्ति होती है। यदि स्वप्नमें अकस्मात् गौ मिल जाय तो भूमि और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। स्वप्नमें जिस पुरुषको हाथी सूँड़से उठाकर अपने माथेपर बिठा ले; उसे निश्चय ही राज्य-लाभ होगा। स्वप्नमें संतुष्ट ब्राह्मण जिसे हृदयसे लगाये और फूल हाथमें दे; वह निश्चय ही सम्पत्तिशाली, विजयी, यशस्वी और सुखी होता है। साथ ही उसे तीर्थस्नानका पुण्य प्राप्त होता है।

स्वप्नमें तीर्थ, अट्टालिका और रत्नमय गृहका दर्शन हो तो उससे भी पूर्वोक्त फलकी ही प्राप्ति होती है। स्वप्नमें यदि कोई भरा हुआ कलश दे तो पुत्र और सम्पत्तिका लाभ होता है। हाथमें कुडव या आढक लेकर स्वप्नमें कोई वाराङ्गना जिसके घर आती है; उसे निश्चय ही लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जिसके घर पत्नीके साथ ब्राह्मण आता है; उसके यहाँ पार्वतीसहित शिव अथवा लक्ष्मीके साथ नारायणका शुभागमन होता है। ब्राह्मण और ब्राह्मणी स्वप्नमें जिसे धान्य, पुष्पाञ्जलि, मोतीका हार, पुष्पमाला और चन्दन देते हैं तथा जिसे स्वप्नमें गोरोचन, पताका, हल्दी, ईख और सिद्धान्नका लाभ होता है; उसे सब ओरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मण और ब्राह्मणी स्वप्नावस्थामें जिसके मस्तकपर छत्र लगाते अथवा श्वेत धान्य बिखेरते हैं या अमृत, दही और उत्तम पात्र अर्पित करते हैं अथवा जो स्वप्नमें श्वेत माला और चन्दनसे अलंकृत हो रथपर बैठकर दही या खीर खाता है; वह निश्चय ही राजा होता है। स्वप्नमें रत्नमय

आभूषणोंसे विभूषित आठ वर्षकी कुमारी कन्या जिसपर संतुष्ट हो जाती है और जिस पुण्यात्माको पुस्तक देती है; वह विश्वविख्यात कवीश्वर एवं पण्डितराज होता है। जिसे स्वप्नमें माताकी भाँति वह पढ़ाती है; वह सरस्वती-पुत्र होता है और अपने समयका सबसे बड़ा पण्डित माना जाता है। यदि विद्वान् ब्राह्मण किसीको पिताकी भाँति यत्नपूर्वक पढ़ावे या प्रसन्नतापूर्वक पुस्तक दे तो वह भी उसीके समान विद्वान् होता है। जो स्वप्नमें मार्गपर या जहाँ कहीं भी पड़ी हुई पुस्तक पाता है; वह भूतलपर विख्यात एवं यशस्वी पण्डित होता है। जिसे ब्राह्मण-ब्राह्मणी स्वप्नमें महामन्त्र दें; वह पुरुष विद्वान्, धनवान् और गुणवान् होता है। ब्राह्मण स्वप्नमें जिसे मन्त्र अथवा शिलामयी प्रतिमा देता है; उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। यदि ब्राह्मण स्वप्नमें ब्राह्मणसमूहका दर्शन एवं वन्दन करके आशीर्वाद पाता है तो वह राजाधिराज अथवा महान् कवि एवं पण्डित होता है। स्वप्नमें ब्राह्मण जिसे संतुष्ट होकर श्वेत धान्ययुक्त भूमि देता है; वह राजा होता है। ब्राह्मण जिसे स्वप्नमें रथपर बिठाकर नाना प्रकारके स्वर्ग दिखाता है; वह चिरंजीवी होता है तथा उसकी आयु एवं सम्पत्तिकी निश्चय ही वृद्धि होती है। सपनेमें संतुष्ट ब्राह्मण जिस ब्राह्मणको अपनी कन्या देता है; वह सदा धनाढ्य राजा होता है। स्वप्नमें सरोवर, समुद्र, नदी, नद, श्वेत सर्प और श्वेत पर्वतका दर्शन करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो स्वप्नमें अपनेको मरा हुआ देखता है, वह चिरंजीवी होता है। रोगी देखनेपर नीरोग होता है और सुखी देखनेपर निश्चय ही दुःखी होता है। दिव्य नारी जिससे स्वप्नमें कहती है कि आप मेरे स्वामी हैं और वह उस स्वप्नको देखकर तत्काल जाग उठता है तो अवश्य राजा होता है। स्वप्नमें कालिकाका दर्शन करके और स्फटिककी माला, इन्द्र-धनुष एवं वज्रको पाकर मनुष्य अवश्य ही प्रतिष्ठाका भागी होता है। स्वप्नमें ब्राह्मण जिससे कहे कि तुम मेरे दास हो जाओ, वह मेरी दास्यभक्ति पाकर वैष्णव हो जाता है। स्वप्नावस्थामें ब्राह्मण शिव और विष्णुका स्वरूप है। ब्राह्मणी लक्ष्मी एवं पार्वतीका प्रतीक है तथा श्वेतवर्णा स्त्री वेदमाता सावित्री, गङ्गा एवं सरस्वतीका रूप है। ग्वालिनका वेष धारण करनेवाली बालिका मेरी राधिका है और बालक बाल-गोपालका स्वरूप है। स्वप्नविज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। पिताजी! यह मैंने पुण्यदायक उत्तम स्वप्नोंका वर्णन किया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? (अध्याय ७७)

## श्रीकृष्णके द्वारा नन्दको आध्यात्मिक ज्ञानका उपदेश, बाईस प्रकारकी सिद्धि, सिद्धमन्त्र तथा अदर्शनीय वस्तुओंका वर्णन

**नन्दजी बोले**—जगन्नाथ श्रीकृष्ण! मैंने अच्छे स्वप्नोंका वर्णन सुना। यह वेदोंका सारभाग तथा लौकिक-वैदिक नीतिका सारतत्त्व है। वत्स! अब मैं उन स्वप्नोंको सुनना चाहता हूँ, जिन्हें देखनेसे पाप होता है। अथवा जिस कर्मके करनेसे पाप होता है, उसका वर्णन करो। वेदका अनुसरण करनेवाले संतप्त मनुष्य तुम्हारे मुखसे वेद-शास्त्रोंकी बातें सुनना चाहते हैं; क्योंकि तुम वेदोंके जनक हो और वैदिक सत्पुरुषों, ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनियों तथा तीनों लोकोंके भी जन्मदाता हो। वत्स! अपने वियोगसे तुमने मेरे हृदयमें दाह उत्पन्न कर दिया है; किंतु इस समय तुम्हारे मुखारविन्दसे जो प्रमाणभूत वचनामृत सुननेको मिला है, उससे मेरा तन, मन अभिषिक्त

हो उठा है। तुम्हारा जो चरणकमल सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है तथा ब्रह्मा आदि देवता स्वप्नमें भी जिसका दर्शन नहीं कर पाते हैं; वही आज मेरी आँखोंके सामने है। आजके बाद मुझ पातकीको तुम्हारे चरणारविन्दोंका दर्शन कहाँ मिलेगा? मेरा यह मलमूत्रधारी शरीर अपने कर्मबन्धनसे बँधा हुआ है। बेटा! अब ऐसा दिन कब प्राप्त होगा, जब कि ब्रह्मा आदि देवताओंके भी स्वामी तुमसे बातचीत करनेका शुभ अवसर मुझ-जैसे पापीको सुलभ होगा? महेश्वर! कृपानाथ! मुझपर कृपा करो। मैंने अपना बेटा समझकर तुम्हारे साथ जो दुर्नीतिपूर्ण व्यवहार किया है; मेरे उस अपराधको क्षमा कर दो। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और मुनि भी तुम्हारे चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सरस्वती और श्रुति भी तुम्हारी स्तुति करनेमें जडवत् हो जाती हैं; फिर मेरी क्या बिसात है?

यों कहकर नन्दजी दुःख और शोकसे व्याकुल हो गये। पुत्रवियोगसे विह्वल हो रोते-रोते उन्हें मूर्च्छा आ गयी। यह देख जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण संत्रस्त हो उन्हें यत्नपूर्वक समझाने-बुझाने लगे। उन्होंने नन्दको परम उत्तम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया।

**श्रीभगवान्‌ने कहा—**पिताजी! लोकमें जितने जन्मदाता पिता हैं, उन सबमें तुम्हारा श्रेष्ठ स्थान है। सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर! होशमें आओ और उत्तम कल्याणमय ज्ञान सुनो। यह श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान ज्ञानियोंके लिये भी परम दुर्लभ है। वेद-शास्त्रमें भी गोपनीय कहा गया है। केवल तुम्हींको इसका उपदेश दे रहा हूँ। तात! एकाग्रचित्त हो प्रसन्नतापूर्वक इस ज्ञानको सुनो और इसका मनन करो। इसके अभ्याससे जन्म, मृत्यु और जरारूपी रोगसे छुटकारा मिल जाता है। महाराज व्रजराज! सुस्थिर होओ और इस ज्ञानको पाकर शोक-मोहसे रहित एवं परमानन्दमें निमग्न हो अपने व्रजको पधारो। यह समस्त चराचर जगत् जलके बुलबुलेकी भाँति नश्वर है; प्रातःकालिक स्वप्नकी भाँति मिथ्या और मोहका ही कारण है। पाञ्चभौतिक शरीर एवं संसारके निर्माणका हेतु भी मिथ्या एवं अनित्य है। मायासे ही मनुष्य इसे सत्य मान रहा है। वह समस्त कर्मोंमें काम, क्रोध, लोभ और मोहसे वेष्टित है और मायासे सदा मोहित, ज्ञानहीन एवं दुर्बल है। निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, क्षमा, श्रद्धा, दया, लज्जा, शान्ति, धृति, पुष्टि और तुष्टि आदिसे भी वह आवृत है। जैसे वृक्ष काक आदि पक्षियोंका आश्रय है; उसी प्रकार मन, बुद्धि, चेतना, प्राण, ज्ञान और आत्मासहित सम्पूर्ण देवता शरीरका आश्रय लेकर रहते हैं। मैं सर्वेश्वर ही पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन हैं, सनातनी प्रकृति बुद्धि हैं, प्राण विष्णु हैं तथा चेतना और उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। शरीरमें मेरे रहनेसे ही सबकी स्थिति है। मेरे चले जानेपर वे भी सब-के-सब चले जाते हैं। हम सबके त्याग देनेपर शरीर तत्काल गिर जाता है; इसमें संशय नहीं है। उसके पाँचों भूत उसी क्षण समष्टिगत पाँचों भूतोंमें विलीन हो जाते हैं। नाम केवल संकेतरूप है। वह निष्फल और मोहका कारण है। तात! अज्ञानियोंको ही शरीरके लिये शोक होता है; ज्ञानियोंको किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं होता। निद्रा आदि जो शक्तियाँ हैं; वे सब प्रकृतिकी कलाएँ हैं। काम, क्रोध लोभ और मोहके साथ जो पाँचवाँ अहंकार है; वे सब अधर्मके अंश हैं। सत्त्व आदि तीन गुण क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्रके अंश हैं। ज्योतिर्मय शिव ज्ञानस्वरूप हैं और मैं निर्गुण आत्मा हूँ। जब प्रकृतिमें प्रवेश करता हूँ तो मैं सगुण कहा जाता हूँ। विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि सगुण विषय हैं। मेरे अंशभूत धर्म, शेषनाग, सूर्य और चन्द्रमा आदि विषयी कहे गये हैं। इसी प्रकार समस्त मुनि, मनु तथा देवता आदि मेरे कलांशरूप हैं।

मैं समस्त शरीरोंमें व्याप्त हूँ; तथापि उनके द्वारा सम्पादित होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंसे निर्लिप्त हूँ। मेरा भक्त जीवन्मुक्त होता है तथा वह जन्म, मृत्यु और जराका निवारण करनेवाला है। भक्त सम्पूर्ण सिद्धोंका स्वामी, श्रीमान्, कीर्तिमान्, विद्वान्, कवि, बाईस प्रकारका सिद्ध और समस्त कर्मोंका निराकरण करनेवाला है। उस सिद्ध भक्तको मैं स्वयं प्राप्त होता हूँ; क्योंकि वह मेरे सिवा दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा ही नहीं करता।

तात! सिद्धियोंका साधन करनेवाला सिद्ध उन सिद्धियोंके ही भेदसे बाईस प्रकारका होता है। मेरे मुखसे उसका परिचय सुनो और सिद्धमन्त्र ग्रहण करो। अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व, कामावसायिता, दूरश्रवण, परकायप्रवेश, मनोयायित्व, सर्वज्ञत्व, अभीष्टसिद्धि, अग्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, चिरजीवित्व, वायुस्तम्भ, क्षुत्पिपासानिद्रास्तम्भन (भूख-प्यास तथा नींदका स्तम्भन), वाक्सिद्धि, इच्छानुसार मृत प्राणीको बुला लेना, सृष्टिकरण और प्राणोंका आकर्षण—ये बाईस प्रकारकी सिद्धियाँ हैं। सिद्धमन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा**'। यह मन्त्र अत्यन्त गूढ़ है और सबकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान है। सामवेदमें इसका वर्णन है। यह सिद्धोंकी सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इस मन्त्रके जपसे योगी, मुनीन्द्र और देवता सिद्ध होते हैं। सत्पुरुषोंको एक लाख जप करनेसे ही यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि नारायणक्षेत्रमें हविष्यान्नभोजी होकर इसका जप किया जाय तो शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। तात! तुम काशीके मणिकर्णिकातीर्थमें जाकर इसका जप करो। मैं तुम्हें नारायणक्षेत्र बतलाता हूँ, सुनो। गङ्गाके जलप्रवाहसे चार हाथतककी भूमिको 'नारायणक्षेत्र' कहा है। उसके नारायण ही स्वामी हैं; दूसरा कोई कदापि नहीं है। वहाँ मनुष्यकी मृत्यु होनेपर उसे ज्ञान एवं मुक्तिकी प्राप्ति होती है। वहाँ व्रतके बिना भी मन्त्र-जप करनेसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। व्रजनाथ! व्रजको जाओ और उसे पवित्र करो।

तात! जिनके दर्शनसे पाप होता है; उन्हें बताता हूँ, सुनो। दुःस्वप्न केवल पापका बीज और विघ्नका कारण होता है। गौ और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले कृतघ्न, कुटिल, देवमूर्तिनाशक, माता-पिताके हत्यारे, पापी, विश्वासघाती, झूठी गवाही देनेवाले, अतिथिके साथ छल करनेवाले, ग्राम-पुरोहित, देवता तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाले, पीपलका पेड़ काटनेवाले, दुष्ट, शिव और विष्णुकी निन्दा करनेवाले, दीक्षारहित, आचारहीन, संध्यारहित द्विज, देवताके चढ़ावेपर गुजारा करनेवाले और बैल जोतनेवाले ब्राह्मणको देखनेसे पाप लगता है। पति-पुत्रसे रहित, कटी नाकवाली, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाली, पतिभक्तिहीना, विष्णुभक्तिशून्या तथा व्यभिचारिणी स्त्रीके दर्शनसे भी पाप होता है। सदा क्रोधी, जारज, चोर, मिथ्यावादी, शरणागतको यातना देनेवाले, मांस चुरानेवाले, शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण, ब्राह्मणीगामी शूद्र, सूदखोर द्विज और अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले दुष्ट नराधमको भी देखनेसे पाप लगता है। माता, सौतेली माँ, सास, बहिन, गुरुपत्नी, पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, मौसी, बूआ, भांजेकी स्त्री, मामी, परायी नवोढा, चाची, रजस्वला, पितामही और नानी—ये सामवेदमें अगम्या बतायी गयी हैं। सत्पुरुषोंको इन सबकी रक्षा करनी चाहिये। कामभावसे इनका दर्शन और स्पर्श करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्याका भागी होता है; अतः दैववश यदि इनकी ओर दृष्टि चली जाय तो सूर्यदेवका दर्शन करके श्रीहरिका स्मरण करे। जो कामनापूर्वक इनपर कुदृष्टि डालते हैं, वे निन्दनीय होते हैं। व्रजेश्वर! इसलिये शापसे डरे हुए साधु पुरुष

इनकी ओर कुदृष्टि नहीं डालते। विद्वान् पुरुष ग्रहणके समय सूर्य और चन्द्रमाको नहीं देखते। प्रथम, अष्टम, सप्तम, द्वादश, नवम और दशम स्थानमें सूर्य हों तो सूर्यका तथा जन्म-नक्षत्रमें और अष्टम एवं चतुर्थ स्थानमें चन्द्रमा हों तो चन्द्रमाका दर्शन नहीं करना चाहिये। भाद्रपदमासके शुक्ल और कृष्णपक्षकी चतुर्थीको उदित हुए चन्द्रमाको नष्टचन्द्र कहा गया है; अतः उसका दर्शन नहीं करना चाहिये। मनीषी पुरुषोंने ऐसे चन्द्रमाका परित्याग किया है। तात! यदि कोई उस दिन जान-बूझकर चन्द्रमाको देखता है तो वह उसे अत्यन्त दुष्कर कलङ्क देता है। यदि कोई मनुष्य अनिच्छासे उक्त चतुर्थीके चन्द्रमाको देख ले तो उसे मन्त्रसे पवित्र किया हुआ जल पीना चाहिये। ऐसा करनेसे वह तत्काल शुद्ध हो भूतलपर निष्कलङ्क बना रहता है। जलको पवित्र करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

**सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।**
**सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥**

'सुन्दर सलोने कुमार! इस मणिके लिये सिंहने प्रसेनको मारा है और जाम्बवान्‌ने उस सिंहका संहार किया है; अतः तुम रोओ मत। अब इस स्यमन्तकमणिपर तुम्हारा ही अधिकार है।'

इस मन्त्रसे पवित्र किया हुआ उत्तम जल अवश्य पीना चाहिये। तात! ये सारी बातें तुम्हें बतायी गयीं। अब तुमसे और क्या कहूँ?

(अध्याय ७८)

## दुःस्वप्न, उनके फल तथा उनकी शान्तिके उपायका वर्णन

तदनन्तर सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहणादिके विषयमें कहकर नन्द बाबाके पूछनेपर भगवान् कहने लगे।

**श्रीभगवान् बोले**--नन्दजी! जो स्वप्नमें हर्षातिरेकसे अट्टहास करता है अथवा यदि विवाह और मनोऽनुकूल नाच-गान देखता है तो उसके लिये विपत्ति निश्चित है। स्वप्नमें जिसके दाँत तोड़े जाते हैं और वह उन्हें गिरते हुए देखता है तो उसके धनकी हानि होती है और उसे शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है। जो तेलसे स्नान करके गदहे, ऊँट और भैंसेपर सवार हो दक्षिण दिशाकी ओर जाता है; निःसंदेह उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि स्वप्नमें कानमें लगे हुए अड़हुल, अशोक और करवीरके पुष्पको तथा तेल और नमकको देखता है तो उसे विपत्तिका सामना करना पड़ता है। नंगी, काली, नक-कटी, शूद्र-विधवा तथा जटा और ताड़के फलको देखकर मनुष्य शोकको प्राप्त होता है। स्वप्नमें कुपित हुए ब्राह्मण तथा क्रुद्ध हुई ब्राह्मणीको देखनेवाले मनुष्यपर निश्चय ही विपत्ति आती है और लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं। जंगली पुष्प, लाल फूल, भलीभाँति पुष्पोंसे लदा पलाश, कपास और सफेद वस्त्रको देखकर मनुष्य दुःखका भागी होता है। काला वस्त्र धारण करनेवाली काले रंगकी विधवा स्त्रीको हँसती और गाती हुई देखकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जिसे स्वप्नमें देवगण नाचते, गाते, हँसते, ताल ठोंकते और दौड़ते हुए दीख पड़ते हैं; उसका शरीर मृत्युका शिकार हो जायगा। जो स्वप्नमें काले पुष्पोंकी माला और कृष्णाङ्गरागसे सुशोभित एवं काला वस्त्र धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; उसकी मृत्यु हो जायगी। जो स्वप्नमें मृगका मरा हुआ छौना, मनुष्यका मस्तक और हड्डियोंकी माला पाता है; उसके लिये विपत्ति निश्चित है। जो ऐसे रथपर, जिसमें गदहे और ऊँट जुते हुए हों, अकेले सवार होता है और उसपर बैठकर फिर जागता है तो निःसंदेह वह मौतका ग्रास बन जाता है। जो अपनेको हवि, दूध, मधु, मट्ठा और गुड़से सराबोर देखता है; वह निश्चय ही

पीड़ित होता है। जो स्वप्नमें लाल पुष्पोंकी माला एवं लाल अङ्गरागसे युक्त तथा लाल वस्त्र धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; वह रोगग्रस्त हो जाता है, यह निश्चित है। गिरे हुए नख और केश, बुझा हुआ अंगार और भस्मपूर्ण चिताको देखकर मनुष्य अवश्य ही मृत्युका शिकार बन जाता है। श्मशान, काष्ठ, सूखा घास-फूस, लोहा, काली स्याही और कुछ-कुछ काले रंगवाले घोड़ेको देखनेसे अवश्यमेव दुःखकी प्राप्ति होती है। पादुका, ललाटकी हड्डी, लाल पुष्पोंकी भयावनी माला, उड़द, मसूर और मूँग देखनेसे तुरंत शरीरमें घाव या फोड़ा हो जाता है। स्वप्नमें सेना, गिरगिट, कौआ, भालू, वानर, नीलगाय, पीब और शरीरके मलका देखा जाना केवल व्याधिका कारण होता है। स्वप्नमें फूटा बर्तन, घाव, शूद्र, गलत्कुष्ठी, रोगी, लाल वस्त्र, जटाधारी, सूअर, भैंसा, गदहा, महाघोर अन्धकार, मरा हुआ भयंकर जीव और योनि-चिह्न देखकर मनुष्य निश्चय ही विपत्तिमें फँस जाता है। कुवेषधारी म्लेच्छ और पाश ही जिसका शस्त्र है, ऐसे पाशधारी भयंकर यमदूतको देखकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण, ब्राह्मणी, छोटी कन्या और बालक-पुत्र क्रोधवश विलाप करते हों तो उन्हें देखकर दुःखकी प्राप्ति होती है। काला फूल, काले फूलोंकी माला, शस्त्रास्त्रधारी सेना और विकृत आकारवाली म्लेच्छवर्णकी स्त्रीको देखनेसे निस्संदेह मृत्यु गले लग जाती है। बाजा, नाच, गान, गवैया, लाल वस्त्र, बजाया जाता हुआ मृदङ्ग—इन्हें देखकर अवश्यमेव दुःख मिलता है। प्राणरहित (मुर्दे)-को देखकर निश्चय ही मृत्यु होती है और जो मत्स्य आदिको धारण करता है, उसके भाईका मरण ध्रुव है। घायल अथवा बिना सिरका धड़ अथवा मुण्डित सिरवाले एवं शीघ्रतापूर्वक नाचते हुए बेडौल प्राणीको देखकर मनुष्य मौतका भागी हो जाता है। मरा हुआ पुरुष अथवा मरी हुई काले रंगकी भयानक म्लेच्छनारी जिसका स्वप्नमें आलिङ्गन करती है; उसका मर जाना निश्चित है। स्वप्नमें जिनके दाँत टूट जायँ और बाल गिर रहे हों तो उसके धनकी हानि होती है अथवा वह शारीरिक पीड़ासे दुःखी होता है। स्वप्नमें जिसके ऊपर सींगधारी अथवा दंष्ट्रावाले जीव तथा बालक और मनुष्य टूटे पड़ते हों; उसे राजाकी ओरसे भय प्राप्त होता है। गिरता हुआ कटा वृक्ष, शिलावृष्टि, भूसी, छूरा, लाल अङ्गारा और राखकी वर्षा देखनेसे दुःखकी प्राप्ति होती है। गिरते हुए ग्रह अथवा पर्वत, भयानक धूमकेतु अथवा टूटे हुए कंधेवाले मनुष्यको देखकर स्वप्नद्रष्टा दुःखका भागी होता है। जो स्वप्नमें रथ, घर, पर्वत, वृक्ष, गौ, हाथी और घोड़ा आकाशसे भूतलपर गिरता देखता है; उसके लिये विपत्ति निश्चित है। जो भस्म और अङ्गारयुक्त गड्ढोंमें, क्षारकुण्डोंमें तथा धूलिकी राशिपर ऊँचाईसे गिरते हैं; निस्संदेह उनकी मृत्यु होती है। जिसके मस्तकपरसे कोई दुष्ट बलपूर्वक छत्र खींच लेता है; उसके पिता, गुरु अथवा राजाका नाश हो जाता है। जिसके घरसे भयभीत हुई गौ बछड़ेसहित चली जाती है; उस पापीकी लक्ष्मी और पृथ्वी भी नष्ट हो जाती है। म्लेच्छ यमदूत जिसे पाशसे बाँधकर ले जाते हैं; उसकी मृत्यु निश्चित है। जिसे ज्योतिषी ब्राह्मण, ब्राह्मणी तथा गुरु रुष्ट होकर शाप देते हैं; उसे निश्चय ही विपत्ति भोगनी पड़ती है। जिसके शरीरपर शत्रुदल, कौए, मुर्गे और रीछ आकर टूट पड़ते हैं; उसकी अवश्य मृत्यु हो जाती है और स्वप्नमें जिसके ऊपर भैंसे, भालू, ऊँट, सूअर और गदहे क्रुद्ध होकर धावा करते हैं; वह निश्चय ही रोगी हो जाता है।

जो लाल चन्दनकी लकड़ीको घीमें डुबोकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रद्वारा अग्निमें हवन करता है; उसका दुःस्वप्नजनित दोष शान्त हो जाता है। जो भक्तिपूर्वक इन मधुसूदनका एक हजार जप

करता है; वह निष्पाप हो जाता है और उसका दुःस्वप्न भी सुखदायक हो जाता है। जो विद्वान् पवित्र हो पूर्वकी ओर मुख करके अच्युत, केशव, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस, नारायण—इन आठ शुभ नामोंका दस बार जप करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है तथा दुःस्वप्न भी शुभकारक हो जाता है। जो भक्त भक्तिपूर्वक विष्णु, नारायण, कृष्ण, माधव, मधुसूदन, हरि, नरहरि, राम, गोविन्द, दधिवामन—इन दस माङ्गलिक नामोंको जपता है; वह सौ बार जप करके नीरोग हो जाता है। जो एक लाख जप करता है; वह निश्चय ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। दस लाख जप करके महावन्ध्या पुत्रको जन्म देती है। शुद्ध एवं हविष्यका भोजन करके जपनेवाला दरिद्र इनके जपसे धनी हो जाता है। एक करोड़ जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। नारायणक्षेत्रमें शुद्धतापूर्वक जप करनेवाले मनुष्यको सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं*। जो जलमें स्नान करके '**ॐ नमः**' के साथ शिव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय, दिनेश्वर, धर्म, गङ्गा, तुलसी, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती—इन मङ्गल-नामोंका जप करता है; उसका मनोरथ सिद्ध हो जाता है और दुःस्वप्न भी शुभदायक हो जाता है। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा**'—यह सप्तदशाक्षर-मन्त्र लोगोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। इसका पवित्रतापूर्वक दस बार जप करनेसे दुःस्वप्न सुखदायक हो जाता है†। एक करोड़ जप करनेसे मनुष्योंको मन्त्र सिद्ध हो जाता है और सिद्धमन्त्रवाला मनुष्य अपनी सारी अभीष्ट सिद्धियोंको पा लेता है। जो मनुष्य '**ॐ नमो मृत्युञ्जयाय स्वाहा**'—इस मन्त्रका एक लाख जप करता है, वह स्वप्नमें मरणको देखकर भी सौ वर्षकी आयुवाला हो जाता है‡। पूर्वोत्तरमुख होकर किसी विद्वान्से ही अपने स्वप्नको कहना चाहिये; किंतु जो शराबी, दुर्गतिप्राप्त, नीच, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, मूर्ख और (स्वप्नके शुभाशुभ फलका) अनभिज्ञ हो; उसके सामने स्वप्नको नहीं प्रकट करना चाहिये। पीपलका वृक्ष, ज्योतिषी, ब्राह्मण, पितृस्थान, देवस्थान, आर्यपुरुष, वैष्णव और मित्रके सामने दिनमें देखा हुआ स्वप्न प्रकाशित करना चाहिये। इस प्रकार मैंने आपसे इस पवित्र प्रसङ्गका वर्णन कर दिया; यह पापनाशक, धनकी वृद्धि करनेवाला, यशोवर्धक और आयु बढ़ानेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हैं? (अध्याय ७९—८२)

---

*अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्। हंसं नारायणं चैव ह्येतन्नामाष्टकं शुभम्॥
शुचिः पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत्। निष्पापोऽपि भवेत् सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥
विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम्। हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम्॥
भक्त्या चेमानि भद्राणि दश नामानि यो जपेत्। शतकृत्वो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत्॥
लक्षधा हि जपेद् यो हि बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्। जप्त्वा च दशलक्षं च महावन्ध्या प्रसूयते॥
हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान् भवेत्। शतलक्षं च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥
शुद्धो नारायणक्षेत्रे सर्वसिद्धिं लभेन्नरः॥ (८२। ४४—४९)

† ॐ नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम्। धर्मं गङ्गां च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत्। वाञ्छितं च लभेत् सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा। कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः॥
शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत्॥ (८२। ५०—५२)

‡ ॐ नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधा जपेत्। दृष्ट्वा च मरणं स्वप्ने शतायुश्च भवेन्नरः॥
(८२। ५४)

## ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संन्यासी तथा विधवा और पतिव्रता नारियोंके धर्मका वर्णन

**नन्दजीने पूछा**—बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम वेदों तथा ब्रह्मा आदिकी उत्पत्तिका सारा कारण वर्णन करो; क्योंकि तुम्हारे सिवा मैं और किससे पूछूँ? साथ ही ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंका कार्य करनेवालोंके जो धर्म हैं तथा संन्यासियों, यतियों, ब्रह्मचारियों, वैष्णव-ब्राह्मणों, सत्पुरुषों, विधवाओं एवं पतिव्रता नारियों, गृहस्थों, गृहस्थपत्नियों, विशेषतया शिष्यों और माता-पिताके प्रति पुत्रों एवं कन्याओंके जो धर्म हैं; उन सबको बतलानेकी कृपा करो। प्रभो! स्त्रियोंकी कितनी जातियाँ होती हैं? भक्तोंके कितने भेद हैं? ब्रह्माण्ड कितने प्रकारका है? वदन (बोली या मुख) किस प्रकारका होता है? नित्य क्या है और कृत्रिम क्या है? क्रमशः यह सब बतलाओ।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—नन्दजी! ब्राह्मण सदा संध्यावन्दनसे पवित्र होकर मेरी सेवा करता है और नित्य मेरे प्रसादको खाता है। वह मुझे निवेदन किये बिना कभी भी नहीं खाता; क्योंकि जो विष्णुको अर्पित नहीं किया गया है, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्रके समान माना जाता है। अतः विष्णुके प्रसादको खानेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त हो जाता है। नित्य तपस्यामें संलग्न रहनेवाला, पवित्र, शमपरायण, शास्त्रज्ञ, व्रतों और तीर्थोंका सेवी, नाना प्रकारके अध्यापन-कार्यसे संयुक्त धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णु-मन्त्रसे दीक्षित होकर गुरुकी सेवा करता है; तत्पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर संग्रहवान् (गृहस्थ) बनता है। उसे गुरुको नित्य-पूजनकी दक्षिणा देनी चाहिये तथा निःसंदेह नित्य गुरुजनोंका पालन-पोषण करना चाहिये; क्योंकि समस्त वन्दनीयोंमें पिता ही महान् गुरु माना जाता है, परंतु पितासे सौगुनी माता, मातासे सौगुना अभीष्टदेव और अभीष्टदेवसे चारगुना मन्त्रतन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है। गुरु प्रत्यक्षरूपमें ऐश्वर्यशाली भगवान् नारायण हैं। गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु और गुरु ही स्वयं शिव हैं। सभी देवता गुरुमें सदा हर्षपूर्वक निवास करते हैं। जिसके संतुष्ट होनेपर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्रीहरि भी गुरुके प्रसन्न होनेपर प्रसन्न हो जाते हैं। गुरु यदि शिष्योंपर पुत्रके समान स्नेह नहीं करते तो उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है और आशीर्वाद न देनेसे उन्हें भी वह फल भोगना पड़ता है।

जो विप्र सदा अपने धर्ममें तत्पर, ब्रह्मज्ञ तथा सदा विष्णुकी सेवा करनेवाला है; वही पवित्र है। उसके अतिरिक्त अन्य विप्र सदा अपवित्र रहता है। जो ब्राह्मण होकर बैलोंको जोतता है, शूद्रोंकी रसोई बनाता है, देवमूर्तियोंपर चढ़े हुए द्रव्यसे जीवन-निर्वाह करता है, संध्या नहीं करता, उत्साहहीन है, दिनमें नींद लेता है, शूद्रके श्राद्धान्नको खाता है, शूद्रोंके मुर्दोंका दाह करता है; ऐसे सभी ब्राह्मण शूद्रके समान माने जाते हैं। जो विधिपूर्वक शालग्राम महायन्त्रकी पूजा करके उनके अर्पित किये हुए नैवेद्यको खाता है तथा उनके चरणोदकको पीता है; वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है; क्योंकि श्रीहरिका चरणोदक पीकर मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। जो शालग्राम-शिलाके जलसे अपनेको अभिषिक्त करता है; उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और समस्त यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली। व्रजेश्वर! शालग्राम-शिलाका जल गङ्गाजलसे दसगुना बढ़कर है। जो ब्राह्मण उसे नित्य पान करता है; वह जीवन्मुक्त एवं देवताओंके समान हो जाता है। जो ब्राह्मणोंका नित्यकर्म, विष्णुके निवेदित नैवेद्यका भोजन, उनकी यत्नपूर्वक पूजा, उनके

चरणोदकका सेवन, नित्य त्रिकाल संध्या और भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है, मेरे जन्मके दिन तथा एकादशीको भोजन नहीं करता; हे तात! जो व्रतपरायण होकर शिवरात्रि तथा श्रीरामनवमीके दिन आहार नहीं करता; वह ब्राह्मण जीवन्मुक्त है। भूतलपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी उस विप्रके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं; अतः उस ब्राह्मणका चरणोदक पीकर मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। जबतक उस ब्राह्मणके चरणोदकसे पृथ्वी भीगी रहती है, तबतक उसके पितर कमलपत्रके पात्रमें जल पीते हैं। विष्णुके प्रसादको खानेवाला ब्राह्मण पृथ्वीको, तीर्थोंको और मनुष्योंको पवित्र कर देता है तथा स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मण विष्णुमन्त्रका उपासक है; वही वैष्णव है। उस वैष्णव ब्राह्मणकी बुद्धि उत्कृष्ट होती है; अतः उससे बढ़कर पुरुष दूसरा नहीं है। जो किसी क्षेत्रमें जाकर पुरश्चरणपूर्वक नारायणका जप करता है; वह अनायास ही अपने-आपका तथा अपनी एक हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जिसके संकल्प तो बाहर होते हैं, परंतु क्रियाएँ विष्णुपदमें होती हैं; वह एकनिष्ठ वैष्णव अपने एक लाख पूर्वपुरुषोंका उद्धार कर देता है।

**(भगवान् कहते हैं—)** ब्राह्मण और देवता मेरे प्राण हैं, परंतु भक्त प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। समस्त लोकोंमें जितने प्रिय पात्र हैं, उनमें भक्तसे अधिक प्यारा मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है। इसलिये विष्णु-भक्तिसे रहित होकर विष्णु-मन्त्रकी दीक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिये। उत्तम बुद्धिसम्पन्न पुरुषको चाहिये कि वह उदासीन एवं दुराचारी गुरुसे मन्त्रकी दीक्षा न ग्रहण करे। यदि दैववश ग्रहण कर लेता है तो वह निश्चय ही धनहीन हो जाता है। ब्राह्मणोंका भोजन सदा मांसरहित हविष्यान्न है; क्योंकि मांसका परित्याग कर देनेसे ब्राह्मण तेजमें सूर्यके तुल्य हो जाता है। पूजक ब्राह्मण पहले स्थानको भलीभाँति संस्कृत करके तब भोजन तैयार करता है, फिर लिपे-पुते स्वच्छ स्थानपर भक्तिपूर्वक मुझे निवेदित करके तत्पश्चात् आदरपूर्वक ब्राह्मणको देकर तब स्वयं भोजन करता है। जो ब्राह्मणको अर्पण न करके स्वयं खा जाता है; वह शराबीके समान माना जाता है। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय अथवा जननाशौच या मरणाशौचमें अपवित्र मनुष्यसे स्पर्श हो जानेपर भोजन-पात्र, भ्रष्ट-द्रव्य तथा अन्नका तुरंत परित्याग कर देना चाहिये। फिर धुली हुई धोती और गमछा धारण करके पैर धोकर शुद्ध स्थानपर भोजन करना चाहिये। द्विजातियोंको चाहिये कि सूर्यके रहते अर्थात् दिनमें दो बार भोजन न करें; क्योंकि वैसा करनेसे वह कर्म निष्फल हो जाता है और भोक्ता नरकगामी होता है। हविष्यान्नका भोजन करनेवाले संयमीको उचित है कि वह श्राद्धके दिन यात्रा, युद्ध, नदी-तट, दुबारा भोजन और मैथुनका परित्याग कर दे। जो विष्णुभक्त एवं बुद्धिमान् हो, उसी ब्राह्मणको पात्रका दान देना चाहिये; किंतु जो शूद्राका पति, शूद्रका पुरोहित, संध्याहीन, दुष्ट, बैलोंको जोतनेवाला, शुक्र बेचनेवाला और देव-प्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका चलानेवाला हो; उसे यत्न करके कभी भी नहीं देना चाहिये। इन लोगोंको पात्र प्रदान करनेसे ब्राह्मण नरकगामी होता है। उस दिन पात्रका उपभोग करके मैथुन करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। तात! कन्या बेचनेवाला सबसे बढ़कर पापी होता है। जो मूल्य लेकर कन्यादान करता है, वह महारौरव नामक नरकमें जाता है, फिर कन्याके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक पितरोंसहित वह, उसका पुत्र और पुरोहित भी कुम्भीपाक नरकमें कष्ट भोगते हैं। इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये कि योग्य वरको ही कन्या प्रदान करें। व्रजेश्वर! जो पुराणों तथा चारों वेदोंद्वारा वर्णित है, वह ब्राह्मणों तथा वैष्णवोंका धर्म मैंने कह दिया।

(अब क्षत्रियोंके धर्म बतलाता हूँ—)क्षत्रियोंको सदा यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन, नारायणकी अर्चा, राज्योंका पालन, युद्धमें निर्भीकता, ब्राह्मणोंको नित्य दान, शरणागतकी रक्षा, प्रजाओं और दुःखियोंका पुत्रवत् पालन, शस्त्रास्त्रकी निपुणता, रणमें पराक्रम, तपस्या और धर्मकार्य करना चाहिये। जो सदसद्विवेकवाली बुद्धिसे युक्त तथा नीति-शास्त्रका ज्ञाता हो, उसका सदा पालन करना चाहिये और सत्पुरुषोंसे भरी हुई सभामें उसे नित्य नियुक्त करना चाहिये। प्रतापी एवं यशस्वी क्षत्रिय हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाका नित्य यत्नपूर्वक पालन करता है। युद्धके लिये बुलाये जानेपर वह युद्ध-दानसे विमुख नहीं होता; क्योंकि जो क्षत्रिय युद्धमें प्राण-विसर्जन करता है, उसे यशस्कर स्वर्गकी प्राप्ति होती है*।

वैश्योंका धर्म व्यापार, खेती करना, ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन, दान, तपस्या और व्रतका पालन है। नित्य ब्राह्मणोंकी पूजा करना शूद्रका धर्म कहा गया है। ब्राह्मणको कष्ट देनेवाला तथा उसके धनपर अधिकार कर लेनेवाला शूद्र चाण्डालताको प्राप्त हो जाता है। विप्रके धनका अपहरण करनेवाला शूद्र असंख्य जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर और फिर सौ जन्मोंतक हिंसक पशुओंकी योनिमें जन्म लेता है। जो शूद्र ब्राह्मणी तथा अपनी माताके साथ व्यभिचार करता है; वह पापी जबतक सौ ब्रह्मा नहीं बीत जाते, तबतक कुम्भीपाकमें कष्ट भोगता है। वहाँ वह खौलते हुए तैलमें डुबाया जाता है, रात-दिन उसे साँप काटते रहते हैं; इस प्रकार यम-यातनासे दुःखी होकर वह चीत्कार करता रहता है। तत्पश्चात् वह पापी सात जन्मोंतक चाण्डाल-योनिमें, सात जन्मोंतक सर्प-योनिमें और सात जन्मोंतक जल-जन्तुओंकी योनिमें उत्पन्न होता है। फिर वह असंख्य जन्मोंतक विष्ठाका कीड़ा तथा सात जन्मोंतक कुलटा स्त्रियोंकी योनिका कीट होता है। पुनः वह पापी सात जन्मोंतक गौओंके घावका कीड़ा होता है। इस प्रकार उसे अनेक योनिमें भ्रमण करते ही बीतता है; परंतु मनुष्यकी योनि नहीं मिलती।

अब संन्यासियोंका जो धर्म है, वह मेरे मुखसे श्रवण करो। मनुष्य दण्ड-ग्रहणमात्रसे नारायणस्वरूप हो जाता है। जो संन्यासी मेरा ध्यान करता है; वह अपने पूर्वकर्मोंको जलाकर वर्तमान-जन्मके कर्मोंका उच्छेद कर डालता है और अन्तमें उसे मेरे लोककी प्राप्ति होती है। व्रजराज! जैसे वैष्णवके चरणस्पर्शसे तीर्थ तत्काल पवित्र हो जाते हैं; वैसे ही संन्यासीके पादस्पर्शसे पृथ्वी तुरंत पावन हो जाती है। मनुष्य संन्यासीका स्पर्श करनेसे पापरहित हो जाता है। संन्यासीको भोजन कराकर अश्वमेधयज्ञका फल तथा अकस्मात् संन्यासीको देखकर उसे नमस्कार करके राजसूय-यज्ञका फल पाता है। संन्यासी, यति और ब्रह्मचारी—इन सबके दर्शन-स्पर्शका फल एक-सा होता है।

संन्यासीको चाहिये कि वह भूखसे व्याकुल होनेपर सायंकाल गृहस्थोंके घर जाय और वहाँ गृहस्थ उसे सदन्न अथवा कदन्न जो कुछ भी दे; उसका परित्याग न करे। न तो मिष्टान्नकी याचना करे, न क्रोध करे और न धन ग्रहण करे। एक वस्त्र धारण करे, इच्छारहित हो जाय, जाड़ा-गरमीमें एक-सा रहे और लोभ-मोहका परित्याग कर दे। इस प्रकार वहाँ एक रात ठहरकर प्रातःकाल दूसरे स्थानको चला जाय।

---

* हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं च चतुष्टयम्। पालयेद् यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान्॥
रणे निमन्त्रितश्चैव दाने न विमुखो भवेत्। रणे यो वा त्यजेत् प्राणांस्तस्य स्वर्गो यशस्करः॥
(८३। ७१-७२)

जो संन्यासी सवारीपर चढ़ता है, गृहस्थका धन ग्रहण करता है और घर बनाकर स्वयं गृहस्थ हो जाता है; वह अपने रमणीय धर्मसे पतित हो जाता है। जो संन्यासी खेती और व्यापार करके कुकर्म करता है, उसका आचरण भ्रष्ट हो जाता है और वह अपने धर्मसे गिर जाता है। यदि वह स्वधर्मी अपना शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है तो धर्म-बहिष्कृत अथवा उपहासका पात्र होता है।

जो ब्राह्मणी विधवा हो जाय—उसे सदा कामनारहित, दिनके अन्तमें एक बार भोजन करनेवाली और सदा हविष्यान्नपरायण होना चाहिये। उसे दिव्य माङ्गलिक वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये; बल्कि सुगन्धित द्रव्य, सुवासित तेल, माला, चन्दन और चूड़ी-सिन्दूर-आभूषणका त्याग करके मलिन वस्त्र पहनना चाहिये। नित्य नारायणका स्मरण तथा नित्य नारायणकी सेवा करनी चाहिये। वह अनन्यभक्तिपूर्वक नारायणके नामोंका कीर्तन करती है और सदा धर्मानुसार पर-पुरुषको पुत्रके समान देखती है। व्रजेश्वर! वह न तो मिष्टान्नका भोजन करती है और न भोग-विलासकी वस्तुओंका संग्रह करती है। उसे पवित्र रहकर एकादशी, कृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, शिवरात्रि, भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नरक-चतुर्दशी तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय भोजन नहीं करना चाहिये। वह भ्रष्ट पदार्थोंका परित्याग करके उसके अतिरिक्त उत्तम पदार्थोंको खाती है। श्रुतियोंमें सुना गया है कि विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और संन्यासियोंके लिये पान मदिराके समान है। इन सभी लोगोंको रक्तवर्णका शाक, मसूर, जँभीरी नीबू, पान और गोल लौकीका परित्याग कर देना चाहिये। विधवा नारी पलङ्गपर सोनेसे पतिको (स्वर्गसे) नीचे गिरा देती है और सवारीपर चढ़कर वह स्वयं नरकगामिनी होती है। उसे बाल और शरीरका शृङ्गार नहीं करना चाहिये। जटारूपमें परिवर्तित हुई केश-वेणीको तीर्थमें गये बिना कटाना नहीं चाहिये और न शरीरमें तेल लगाना चाहिये। वह दर्पण, पर-पुरुषका मुख, यात्रा, नृत्य, महोत्सव, नाच-गान और सुन्दर वेषधारी रूपवान् पुरुषको नहीं देखती। उसे सामवेदमें निरूपण किये गये सत्पुरुषोंका धर्म श्रवण करना चाहिये।

अब मैं आपसे परमोत्कृष्ट परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो। सदा अध्यापन, अध्ययन, शिष्योंका परिपालन, गुरुजनोंकी सेवा, नित्य देवता और ब्राह्मणका पूजन, सिद्धान्तशास्त्रमें निपुणताका उत्पादन, अपने-आपमें संतोष, सर्वथा शुद्ध व्याख्यान, निरन्तर ग्रन्थका अभ्यास, व्यवस्थाके सुधारके लिये वेदसम्मत विचार, स्वयं शास्त्रानुसार आचरण, देवकार्य और नित्यकर्मोंमें निपुणता, वेदानुसार अभीष्ट आचार-व्यवहार, वेदोक्त पदार्थोंका भोजन और पवित्र आचरण करना चाहिये।

व्रजेश्वर! अब पतिव्रताओंका जो धर्म है, उसे श्रवण करो। पतिव्रताको चाहिये कि नित्य पतिके प्रति उत्सुकता रखकर उनका चरणोदक पान करे; सदा भक्तिभावपूर्वक उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे। प्रयत्नपूर्वक व्रत, तपस्या और देवार्चनका परित्याग करके चरण-सेवा, स्तुति और सब प्रकारसे पतिकी संतुष्टि करे। सतीको पतिकी आज्ञाके बिना वैरभावसे कोई कर्म नहीं करना चाहिये। सती अपने पतिको सदा नारायणसे बढ़कर समझती है। व्रजनाथ! उत्तम व्रतपरायणा सती पर-पुरुषके मुख, सुन्दर-वेषधारी सौन्दर्यशाली पुरुष, यात्रा, महोत्सव, नाच, नाचनेवाले, गवैया और पर-पुरुषकी क्रीड़ाकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालती। जो आहार पतियोंको प्रिय होता है, वही सदा पतिव्रताओंको भी मान्य होता है। पतिव्रता क्षणभर भी पतिसे वियुक्त नहीं होती। वह पतिसे उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं करती। ताड़ना मिलनेपर भी उसका स्वभाव शुद्ध ही बना रहता है; वह

क्रोधके वशीभूत नहीं होती। पतिव्रताको चाहिये कि पतिके भूखे होनेपर उसे भोजन कराये; भोजनके लिये उत्तम-उत्तम पदार्थ और पीनेके लिये शुद्ध जल दे; नींदसे माते हुए पतिको न जगावे और उसे काम करनेके लिये आज्ञा न दे। सतीको पतिके साथ पुत्रोंसे भी सौगुना अधिक प्रेम करना चाहिये; क्योंकि कुलाङ्गनाके लिये पति ही बन्धु, आश्रय, भरण-पोषण करनेवाला और देवता है। वह सुन्दरी अमृतके समान शुभकारक अपने पतिको देखकर बड़े यत्नसे भक्तिभावपूर्वक मुस्कराते हुए उसकी ओर निहारती है। सती नारी अपनी एक हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है। पतिव्रताओंके पति समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि सतियोंके पातिव्रत्यके तेजसे उनका कर्मभोग समाप्त हो जाता है। इस प्रकार वे कर्मरहित होकर अपनी पतिव्रता पत्नीके साथ श्रीहरिके भवनमें आनन्द प्राप्त करते हैं।

व्रजेश! पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सतीके चरणोंमें निवास करते हैं। सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंका तेज सतियोंमें वर्तमान रहता है। तपस्वियोंकी सारी तपस्या तथा व्रतोपवाससे व्रतियोंको एवं दान देनेसे दाताओंको जो फल प्राप्त होता है; वह सारा-का-सारा सदा पतिव्रताओंमें विद्यमान रहता है। स्वयं नारायण, शम्भु, लोकोंके विधाता ब्रह्मा, सारे देवता और मुनि भी सदा पतिव्रताओंसे डरते रहते हैं। सतियोंकी चरण-धूलिके स्पर्शसे पृथ्वी तत्काल ही पावन हो जाती है। पतिव्रताको नमस्कार करके मनुष्य पापसे छूट जाता है। पतिव्रता अपने तेजसे क्षणभरमें ही त्रिलोकीको भस्मसात् कर डालनेमें समर्थ है; क्योंकि वह सदा महान् पुण्यसे सम्पन्न रहती है। सतियोंके पति और पुत्र साधु एवं निःशङ्क हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें देवताओं तथा यमराजसे भी कुछ भय नहीं रह जाता। सौ जन्मोंतक पुण्य संग्रह करनेवाले पुण्यवानोंके घरमें पतिव्रता जन्म लेती है। पतिव्रताके पैदा होनेसे उसकी माता पावन हो जाती है तथा पिता जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

सती स्त्री प्रातःकाल उठकर रात्रिमें पहने हुए वस्त्रको छोड़कर पतिको नमस्कार करके हर्षपूर्वक स्तवन करती है। तत्पश्चात् गृहकार्य सम्पन्न करके नहाकर धुली हुई साड़ी और कंचुकी धारण करती है। फिर श्वेत पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक पतिका पूजन करती है। पवित्र निर्मल जलसे स्नान कराकर उसे धौत-वस्त्र देकर वह हर्षपूर्वक पतिका पादप्रक्षालन करती है। फिर आसनपर बिठाकर, ललाटमें चन्दनका तिलक लगाकर, सर्वाङ्गमें (इत्र आदिका) अनुलेप करके गलेमें माला पहनाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अमृतोपम भोग-पदार्थोंद्वारा भक्तिभावसहित भलीभाँति पूजन और स्तवन करके हर्षके साथ पतिके चरणोंमें नमस्कार करती है। **'ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा'**—इसी मन्त्रसे पुष्प, चन्दन, पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, वस्त्र, उत्तम नैवेद्य, शुद्ध सुगन्धित जल और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके स्तोत्र-पाठ करना चाहिये। जो-जो कर्म किया जाय, सभीमें इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये।

ॐ चन्द्रशेखरस्वरूप प्रियतम पतिको नमस्कार है। आप शान्त, उदार और सम्पूर्ण देवताओंके आश्रय हैं; आपको प्रणाम है। सतीके प्राणाधार एवं ब्रह्मस्वरूप आपको अभिवादन है। आप नमस्कारके योग्य, पूजनीय, हृदयके आधार, पञ्च प्राणोंके अधिदेवता, आँखकी पुतली, ज्ञानाधार और पत्नियोंके लिये परमानन्दस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु, पति ही महेश्वर और पति ही निर्गुणाधार ब्रह्मरूप हैं; आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। भगवन्! मुझसे जानमें अथवा अनजानमें जो कुछ दोष घटित हुआ है; उसे क्षमा कर दीजिये। पत्नीबन्धो! आप

तो दयाके सागर हैं; अतः मुझ दासीका अपराध क्षमा कर दें। व्रजेश्वर! पूर्वकालमें सृष्टिके प्रारम्भमें लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी और गङ्गाने इस महान् पुण्यमय स्तोत्रका पाठ किया था। पूर्वकालमें सावित्रीने भी नित्यशः इस स्तोत्रद्वारा ब्रह्माका स्तवन किया था। कैलासपर पार्वतीने भक्तिपूर्वक शंकरके लिये इस स्तोत्रका पाठ किया था। प्राचीनकालमें मुनिपत्नियों तथा देवाङ्गनाओंने भी इसके द्वारा स्तुति की थी। अतः सभी पतिव्रताओंके लिये यह स्तोत्र शुभदायक है। जो पतिव्रता अथवा अन्य पुरुष या नारी इस महान् पुण्यदायक स्तोत्रको सुनती है; उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त हो जाता है, निर्धनको धन मिल जाता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है। व्रजेश्वर! पतिव्रता इसके द्वारा स्तवन करके तीर्थस्नानका फल तथा सम्पूर्ण तपस्याओं और व्रतोंका फल पाती है*। इस प्रकार स्तुति-नमस्कार करके पतिकी आज्ञासे वह भोजन करती है। व्रजराज! इस प्रकार मैंने पतिव्रताके धर्मका वर्णन कर दिया, अब गृहस्थोंका धर्म सुनिये। (अध्याय ८३)

## गृहस्थ, गृहस्थ-पत्नी, पुत्र और शिष्यके धर्मका वर्णन, नारियों और भक्तोंके त्रिविध भेद, ब्रह्माण्ड-रचनाके वर्णन-प्रसङ्गमें राधाकी उत्पत्तिका कथन

**श्रीभगवान् कहते हैं**—नन्दजी! गृहस्थ पुरुष सदा ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन करता है तथा चारों वर्णोंके धर्मानुसार अपने वर्ण-धर्मके पालनमें तत्पर रहता है। इसीलिये देवता आदि सभी प्राणी गृहस्थोंकी आशा करते हैं। गृहस्थ अतिथिका आदर-सत्कार करके सदा पवित्र बना रहता है। (पिण्डदान आदि) कर्मके अवसरपर पितर और अतिथि-पूजनके समय सारे देवता उसी प्रकार गृहस्थके पास आते हैं, जैसे गौएँ पानीसे भरे हुए हौजके पास जाती हैं। भूखा अतिथि सायंकाल प्रयत्नपूर्वक गृहस्थके घर आता है और वहाँ आदर-सत्कार पाकर उसे आशीर्वाद देनेके पश्चात् उस गृहस्थके घरसे बिदा होता है। अतिथिका पूजन न करनेसे गृहस्थ पापका भागी होता है और उसे त्रिलोकीमें उत्पन्न सारे पाप भोगने पड़ते हैं; इसमें तनिक भी संशय नहीं है। अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौट जाता है, उसके घरका उसके पितर, देवता और अग्नियाँ भी परित्याग कर देती हैं तथा वह अतिथि उसे अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर

---

* ॐ नमः कान्ताय भर्त्रे च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे। नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च। नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः॥
पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च। ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः। पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते॥
क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्। पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व मे॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम्। सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज॥
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः। पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शंकराय च॥
मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा। पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता। नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्। रोगी च मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥
पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत्। फलं च सर्वतपसां व्रतानां च व्रजेश्वर।
(८३। १३६—१४६)

चला जाता है। इसलिये उत्तम विचारसम्पन्न धर्मज्ञ गृहस्थ पहले देवता आदि सबकी सेवा करके फिर आश्रितवर्गका भरण-पोषण करनेके पश्चात् स्वयं भोजन करता है। जिसके घरमें माता नहीं है और पत्नी पुंश्चली है, उसे वनवासी हो जाना चाहिये; क्योंकि उसके लिये वह गृह वनसे भी बढ़कर दुःखदायक है। वह दुष्टा सदा पतिसे द्वेष करती है और उसे विष-तुल्य समझती है। वह उसे भोजन तो देती नहीं; उलटे सदा डाँट-फटकार सुनाती रहती है।

व्रजेश! अब गृहस्थ-पत्नियोंका जो सदाचार श्रुतिमें वर्णित है, उसे श्रवण करो। गृहिणी नारी पतिपरायणा तथा देव-ब्राह्मणकी पूजा करनेवाली होती है। उस शुद्धाचारिणीको चाहिये कि प्रातःकाल उठकर देवता और पतिको नमस्कार करके आँगनमें गोबर और जलसे लीपकर मङ्गल-कार्य सम्पन्न करे। फिर गृह-कार्य करके स्नान करे और घरमें आकर देवता, ब्राह्मण और पतिको नमस्कार करके गृहदेवताकी पूजा करे। इस प्रकार सती नारी घरके सारे कार्योंसे निवृत्त होकर पतिको भोजन कराती है और अतिथि-सेवा करनेके पश्चात् स्वयं सुखपूर्वक भोजन करती है।

पुत्रोंको चाहिये कि वे पिताको स्नान कराकर उनकी पूजा करें। यों ही शिष्योंको गुरुका पूजन करना चाहिये। पुत्र और शिष्यको सेवककी भाँति उनके आज्ञानुसार सारा कार्य करना उचित है। पिता और गुरुमें कभी मनुष्य-बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, गुरु, भार्या, शिष्य, स्वयं अपना निर्वाह करनेमें असमर्थ पुत्र, अनाथ बहिन, कन्या और गुरु-पत्नीका नित्य भरण-पोषण करना कर्तव्य है। तात! इस प्रकार मैंने सबके उत्तम धर्मका वर्णन कर दिया।

व्रजेश! स्त्री-जाति तो वस्तुतः शुद्ध है। उसमें वे सारी पतिव्रताएँ और भी पावन मानी जाती हैं। सृष्टिके आदिमें ब्रह्माने एक ही प्रकारसे सारी जातियोंकी रचना की थी। वे सभी उत्तम बुद्धिवाली पवित्र नारियाँ प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं। जब केदार-कन्याके* शापसे वह धर्म नष्ट हो गया, तब ब्रह्माने कुपित होकर पुनः स्त्री-जातिका निर्माण किया और उसे तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। उनमें पहली उत्तमा, दूसरी मध्यमा और तीसरी अधमा कही जाती है। धर्मसम्पन्ना उत्तमा स्त्री पतिकी भक्त होती है। वह प्राणोंपर आ बीतनेपर भी अपकीर्ति पैदा करनेवाले जार पुरुषको नहीं स्वीकार करती। जो गुरुजनोंद्वारा यत्नपूर्वक रक्षित होनेके कारण भयवश जार पुरुषके पास नहीं जाती और अपने पतिको कुछ-कुछ मानती है, वह कृत्रिमा नारी मध्यमा कही जाती है। नन्दजी! ऐसी नारियोंका सतीत्व जहाँ स्थानाभाव है, समय नहीं मिलता है और प्रार्थना करनेवाला जार पुरुष नहीं है; वहीं स्थिर रह सकता है। अत्यन्त नीच कुलमें उत्पन्न हुई अधमा स्त्री परम दुष्टा, अधर्मपरायणा, दुष्ट स्वभाववाली, कटुवादिनी और झगड़ालू होती है। वह सदा उपपतिकी सेवा करती है और अपने पतिकी नित्य भर्त्सना करती रहती है, उसे दुःख देती है और विष-तुल्य समझती है। उसका पति भले ही भूतलपर रूपवान्, धर्मात्मा, प्रशंसनीय और महापुरुष हो; परंतु वह उपाय करके उपपतिद्वारा उसे मरवा डालती है। उसकी प्रीति बिजलीकी चमक और जलपर खिंची हुई रेखाके समान क्षणभङ्गुर होती है। वह सदा अधर्ममें तत्पर रहकर निश्चित रूपसे कपटपूर्ण वचन ही बोलती है। उसका मन न तो व्रत, तपस्या, धर्म और गृहकार्यमें ही लगता है और न गुरु तथा देवताओंकी ओर ही झुकता है।

---

* केदार-कन्याका उपाख्यान इसी खण्डमें अन्यत्र देखना चाहिये।

नन्दजी! इस प्रकार तीन भेदोंवाली स्त्रीजातिकी कथा मैंने कह दी, अब विभिन्न प्रकारके भक्तोंका लक्षण सुनिये।

तृणकी शय्याका प्रेमी भक्त सांसारिक सुखोंके कारणोंका त्याग करके अपने मनको मेरे नाम और गुणके कीर्तनमें लगाता है। वह मेरे चरणकमलका ध्यान करता है और भक्तिभावसहित उसका पूजन करता है। देवगण उस निष्काम भक्तकी अहैतुकी पूजाको ग्रहण करते हैं। ऐसे भक्त अणिमा आदि सारी अभीष्ट सिद्धियोंकी तथा सुखके कारणभूत ब्रह्मत्व, अमरत्व अथवा देवत्वकी कामना नहीं करते। उन्हें हरिकी दासताके बिना सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य आदि चारों मुक्तियोंकी अभिलाषा नहीं रहती और न वे निर्वाण-मुक्ति तथा अभीप्सित अमृत-पानकी ही स्पृहा करते हैं। उन्हें मेरी अतुलनीय निश्चल भक्तिकी ही लालसा रहती है। व्रजेश्वर! उन श्रेष्ठ सिद्धेश्वरोंमें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं रहता और न समस्त जीवोंमें भिन्नता रहती है। वे दिगम्बर होकर भूख-प्यास आदि तथा निद्रा, लोभ, मोह आदि शत्रुओंका त्याग करके रात-दिन मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं। नन्दजी! यह मेरे सर्वश्रेष्ठ भक्तके लक्षण हैं। अब मध्यम आदि भक्तोंका लक्षण श्रवण करो। पूर्वजन्मोंके शुभ कर्मके प्रभावसे पवित्र हुआ गृहस्थ कर्मोंमें आसक्त न होकर सदा पूर्वकर्मका उच्छेदक कर्म ही करता है; वह यत्नपूर्वक कोई दूसरा कर्म नहीं करता; क्योंकि उसे किसी कर्मकी कामना ही नहीं रहती। वह मन, वाणी और कर्मसे सदा ऐसा चिन्तन करता रहता है कि जो कुछ कर्म है, वह सब श्रीकृष्णका है, मैं कर्मका कर्ता नहीं हूँ। ऐसा भक्त मध्यम श्रेणीका होता है। जो उससे भी नीची कोटिका है; वह श्रुतिमें प्राकृतिक अर्थात् अधम कहा गया है। उत्तम कोटिका भक्त अपने हजारों पूर्वपुरुषोंका उद्धार कर देता है। उसे स्वप्नमें भी यमराज अथवा यमदूतका दर्शन नहीं होता। मध्यम कोटिका भक्त अपनी सौ पीढ़ियोंका तथा प्राकृत भक्त पचीस पीढ़ियोंका उद्धारक होता है। तात! इस प्रकार मैंने आपके आज्ञानुसार तीन प्रकारके भक्तोंका वर्णन कर दिया। अब सावधानतया ब्रह्माण्डकी रचनाका आख्यान श्रवण कीजिये।

नन्दजी! भक्तलोग यत्न करनेपर ब्रह्माण्ड-रचनाका प्रयोजन जान लेते हैं। मुनियों, देवताओं और संतोंको बड़े दुःखसे कुछ-कुछ ज्ञात होता है। पूर्णरूपसे विश्वका ज्ञान तो अनन्तस्वरूप मुझको, ब्रह्मा और महेश्वरको है। हमारे अतिरिक्त धर्म, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता सावित्री, स्वयं सर्वज्ञा राधिका—ये लोग भी विश्व-रचनाका अभिप्राय जानते हैं, इनके अतिरिक्त और किसीको पता नहीं है। उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न सभी विद्वान् इसके वैषम्यार्थको पूर्णरूपसे जाननेमें असमर्थ हैं। जैसे आकाश और आत्मा नित्य हैं; उसी प्रकार दसों दिशाएँ नित्य हैं। जैसे प्रकृति नित्य है, वैसे ही विश्वगोलक नित्य है। जैसे गोलोक नित्य है, उसी तरह वैकुण्ठ भी नित्य है। एक समयकी बात है। जब मैं गोलोकमें रास-क्रीड़ा कर रहा था, उसी समय मेरे वामाङ्गसे एक षोडशवर्षीया नारी प्रकट हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी बाला रमणियोंमें सर्वश्रेष्ठ थी। उसके शरीरका रंग श्वेत चम्पकके समान गौर था। उसकी कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाको लज्जित कर रही थी। वह रत्नाभरणोंसे भूषित थी और उसके अङ्गपर अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ी शोभा पा रही थी। उसके सभी अङ्ग मनोहर और कोमल थे तथा उसका प्रसन्नमुख मन्द-मन्द मुस्कानसे सुशोभित था। उसके चरणोंका अधोभाग सुन्दर महावरसे उद्भासित हो रहा था। वह सुन्दर नेत्रोंवाली सौन्दर्यशालिनी बाला गजेन्द्रकी-सी

चाल चल रही थी। उस कामिनीने रासक्रीड़ाके अवसरपर प्रकट होकर मुझे आगेसे पकड़ लिया। इसी कारण पुरातत्त्ववेत्ताओंने उसका 'राधा' नाम रखा और उसकी पूजा की। उसकी प्रकृति परम प्रसन्न थी; इसलिये वह ईश्वरी 'प्रकृति' कहलायी। समस्त कार्योंमें समर्थ होनेके कारण वह 'शक्ति' नामसे कही जाती है। वह सबकी आधारस्वरूपा, सर्वरूपा और सब तरहसे मङ्गलके योग्य है; सम्पूर्ण मङ्गलोंके दानमें दक्ष होनेके कारण वह 'सर्वमङ्गला' है। वह वैकुण्ठमें 'महालक्ष्मी' और मूर्तिभेदसे 'सरस्वती' है। वेदोंको उत्पन्न करनेके कारण वह 'वेदमाता' नामसे प्रसिद्ध है। वह 'सावित्री' और तीनों लोकोंका धारण-पोषण करनेवाली 'गायत्री' भी है। पूर्वकालमें उसने दुर्गका संहार किया था; इसी कारण वह 'दुर्गा' नामसे विख्यात है। यह सती प्राचीनकालमें समस्त देवताओंके तेजसे आविर्भूत हुई थी, इसीसे यह 'आद्याप्रकृति' कहलाती है। यह समस्त असुरोंका मर्दन करनेवाली, सम्पूर्ण आनन्दकी दाता, आनन्दस्वरूपा, दुःख और दरिद्रताका विनाश करनेवाली, शत्रुओंको भय प्रदान करनेवाली और भक्तोंके भयकी विनाशिका है। वही 'सती' रूपसे दक्षकी कन्या हुई और पुनः हिमालयसे उत्पन्न होकर 'पार्वती' कहलाती है। वह सबकी आधारस्वरूपा है। पृथ्वी उसकी एक कला है। तुलसी और गङ्गा उसीकी कलासे उत्पन्न हुई हैं। यहाँतक कि सम्पूर्ण स्त्रियोंका आविर्भाव उसकी कलासे ही हुआ है। तात! जिस शक्तिसे सम्पन्न होकर मैं बारंबार सृष्टि-रचना करता हूँ, उसे रासके मध्य स्थित देखकर मैंने उसके साथ क्रीड़ा की। उस समय रासमण्डलमें उन दोनोंके शरीरसे जो पसीनेकी बूँदें भूतलपर गिरीं, उनसे एक मनोहर सरोवर उत्पन्न हो गया, जो राधाके नामके सदृश था (अर्थात् उसका नाम राधासरोवर हुआ)। उस सरोवरसे जो पसीनेकी धारा वेगपूर्वक नीचे विश्व-गोलकमें गिरी, उससे सारा ब्रह्माण्डगोलक जलसे भर गया। व्रजेश्वर! पहले-पहल सब कुछ जलमग्न था; उस समय सृष्टि नहीं हुई थी। तब शृङ्गारके समाप्त होनेपर मैंने राधामें वीर्यका आधान किया। तत्पश्चात् श्रीराधिकाने गर्भ धारण करके दीर्घकालके बाद एक परम अद्भुत डिम्ब प्रसव किया। उसे देखकर देवीको क्रोध आ गया; तब उन्होंने उसे पैरसे नीचे विश्व-गोलकमें ढकेल दिया। तात! वह जलमें गिर पड़ा और सबका आधारस्वरूप 'महान् विराट्' हो गया। तब अपनी संतानको जलमें पड़ा हुआ देखकर मैंने राधाको शाप दे दिया। विभो! मेरे शापके कारण राधा संतानहीन हो गयी। व्रजेश्वर! इसलिये जिस डिम्बसे कलाका आश्रय लेकर वह महान् विराट् पैदा हुआ था, उसीसे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्यान्य जो देवियाँ और स्त्रियाँ हैं; वे सभी क्रमशः कला, कलांश और कलांशके अंशसे उत्पन्न हुई हैं।

व्रजेश! उस महान् विराट्ने मेरे द्वारा दिये गये अंगुष्ठामृतका पान किया और फिर स्वकर्मानुसार स्थावर-रूप होकर वह जलमें शयन करने लगा। योगबलसे जल ही उसकी शय्या और उपाधान था तथा उसके रोमकूप सदा जलसे भरे रहते थे। पुनः उनमें 'क्षुद्र विराट्' शयन करने लगा। उस क्षुद्र विराट्की नाभिसे सहस्रदल कमल उत्पन्न हुआ। उस कमलपर सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने जन्म लिया; इसी कारण वे कमलोद्भव कहे जाते हैं। वहाँ आविर्भूत होकर वे ब्रह्मा चिन्ताग्रस्त हो यों सोचने लगे—'यह देह किससे उत्पन्न हुई है तथा मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु कहाँ हैं?' इसी चिन्तामें वे तीन लाख दिव्य वर्षोंतक उस कमलके भीतर चक्कर काटते रहे। तत्पश्चात् पाँच लाख दिव्य वर्षोंतक उन्होंने तपस्याद्वारा मेरा स्मरण किया, तब मैंने उन्हें मन्त्र प्रदान किया, जिसका वे पवित्रतापूर्वक इन्द्रियोंको काबूमें करके

नियतरूपसे सात लाख दिव्य वर्षोंतक उस कमलके अंदर जप करते रहे। इसके बाद मुझसे वर पाकर उन सृष्टिकर्ताने सृष्टिकी रचना की। मेरी मायाके बलसे ब्रह्माने प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, नौ ग्रह, आठ वसु, तीन करोड़ देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, भूत-प्रेत आदि राक्षस एवं चराचर जगत्की रचना की। उन्होंने प्रत्येक विश्वमें क्रमशः सात स्वर्ग, सात सागरोंसे संयुक्त स्वर्णभूमिवाली सप्तद्वीपवती पृथ्वी, अन्धकारमय स्थान, सात पाताल तथा इनसे युक्त ब्रह्माण्डका निर्माण किया। प्रत्येक विश्वमें चन्द्रमा, सूर्य, पुण्यक्षेत्र भारत और इन गङ्गा आदि तीर्थोंकी सृष्टि की। व्रजेश्वर! महाविष्णुके शरीरमें जितने रोमकूप हैं, क्रमशः उतने ही असंख्य विश्व हैं। उन विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें वैकुण्ठ है, जो निराश्रय है तथा मेरी इच्छासे जिसका निर्माण हुआ है। वेद भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सकते। निश्चय ही कुयोगियों तथा भक्तिहीनोंके लिये उसका दर्शन दुर्लभ है। इससे ऊपर गोलोक है। वह परम विचित्र आश्रयस्थान वायुके आधारपर टिका हुआ है। मेरी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय अविनाशी लोकका निर्माण हुआ है। वह शतशृङ्ग पर्वत, पुण्यमय वृन्दावन, रमणीय रासमण्डल तथा विरजा नदीसे युक्त है। विरजा अमूल्य रत्नसमूहों, हीरा, माणिक्य तथा कौस्तुभ आदि असंख्यों मणियोंसे युक्त होनेके कारण बड़ी मनोहर है। उस गोलोकमें प्रत्येक महल अमूल्य रत्नोंके बने हुए हैं। उसमें ऐसा मनोहर परकोटा है, जिसे विश्वकर्माने भी नहीं देखा है। वे महल गोपियों, गोपगणों तथा कामधेनुओंसे परिवेष्टित हैं। वहाँ रास-मण्डल असंख्यों कल्पवृक्षों, पारिजातके तरुओं, सरोवरों तथा पुष्पोद्यानोंसे समावृत है। वह गोपों, मन्दिरों, रत्नप्रदीपों, पुष्प-शय्याओं, कस्तूरी-कुङ्कुमयुक्त सुगन्धित चन्दनके गन्धों, क्रीडोपयुक्त भोगपदार्थों, सुवासित जल और पान-बीड़ाओं, रमणीय सुगन्धियुक्त धूपों, पुष्पमालाओं और रत्नजटित दर्पणोंसे भरा-पूरा है। अमूल्य रत्नाभरणों तथा अग्नि-शुद्ध वस्त्रोंसे अलंकृत राधाकी दासियाँ सदा उसकी रक्षा करती रहती हैं। नवयौवनसम्पन्न तथा अनुपम सौन्दर्यशाली गजेन्द्रोंकी सेना क्रमशः उसे घेरे हुए है। व्रजराज! वह रमणीय तथा चन्द्रमण्डलके समान गोल है। उस विस्तृत मण्डलकी रचना बहुमूल्य रत्नोंद्वारा हुई है। वह कस्तूरी-कुङ्कुमयुक्त सुन्दर एवं सुगन्धित चन्दनसे समर्चित है। वह फल-पल्लवयुक्त मङ्गल-कलशों, दही और खीलों, पत्तों, कोमल दूर्वाङ्कुरों, फलों, असंख्यों केलेके मनोहर खम्भों तथा रेशमी सूत्रमें बँधे हुए कोमल चन्दन-पल्लवोंकी वन्दनवारोंसे आच्छादित है और चन्दनयुक्त पुष्पमालाओं एवं आभूषणोंसे विभूषित है। वहाँ बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ शतशृङ्ग पर्वत मनको खींचे लेता है। वह अत्यन्त सुन्दर है। वेद भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। वह हीरेके हारसे युक्त होनेके कारण रमणीय है तथा मनोहर परकोटेकी तरह उस गोलोकको चारों ओरसे घेरे हुए है।

वहाँ चन्दनके वृक्षोंसे युक्त रमणीय वृन्दावन है, जो कल्पवृक्षों, सुन्दर मन्दार-पुष्पों, कामधेनुओं, शोभाशाली मनोहर पुष्पवाटिकाओं, रमणीय क्रीड़ा-सरोवरों और परम सुन्दर क्रीड़ाभवनोंसे सुशोभित है। उसके एकान्तमें रास-क्रीड़ाके योग्य अत्यन्त सुन्दर स्थान है, जो चारों ओरसे गोलाकार है। रक्षकरूपमें नियुक्त हुई असंख्यों सुन्दरी गोपिकाएँ उसकी रक्षा करती हैं। वहाँ कोकिल कूजते रहते हैं तथा भौंरोंका गुंजार होता रहता है। उसीके एकान्त स्थलमें एक रमणीय अक्षयवट है, जिसकी लंबाई-चौड़ाई विशाल है। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह अक्षयवट गोपियोंके लिये कल्पवृक्ष है। वहाँ राधाकी दासियाँ

क्रीड़ा करती रहती हैं। विरजाके तटप्रान्तके जलका स्पर्श करके बहती हुई शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु उसे पवित्र करती रहती है। उस अक्षयवटके नीचे वृन्दावनमें विनोद करनेवाली मेरे प्राणोंकी अधिदेवता वह राधा असंख्यों दासीगणोंके साथ क्रीड़ा करती है। वही राधा इस समय वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट हुई है। व्रजेश! ब्रह्मादि देवता, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र और सिद्धगण गुण, बल, बुद्धि, ज्ञानयोग और विद्याद्वारा उसकी पूजा करते हैं। तात! यह मेरी प्रिया मेरे ही समान है; अतः सब तरहसे वन्दनीया है। नन्दजी! इस प्रकार मैंने यथोचित एवं परिमित रूपसे ब्रह्माण्डोंका वर्णन कर दिया। अब पुनः आपकी और क्या सुननेकी इच्छा है? (अध्याय ८४)

## चारों वर्णोंके भक्ष्याभक्ष्यका निरूपण तथा कर्मविपाकका वर्णन

**नन्दजीने कहा**—महाभाग! अब चारों वर्णोंके भक्ष्याभक्ष्यका तथा समस्त प्राणियोंके कर्मविपाकका वर्णन कीजिये।

**श्रीभगवान् बोले**—तात! मैं चारों वर्णोंके वेदोक्त भक्ष्याभक्ष्यका यथोचितरूपसे वर्णन करता हूँ, उसे सावधान होकर श्रवण करो। मनुका कथन है कि लोहेके बर्तनमें जलपान, उसमें रखा हुआ गौका दूध-दही-घी, पकाया हुआ अन्न भ्रष्टादिक (भुना हुआ पदार्थ), मधु, गुड़, नारियलका जल, फल, मूल आदि सभी पदार्थ अभक्ष्य हो जाते हैं। जला हुआ अन्न तथा गरमाया हुआ बदरीफल या खट्टी काँजीको भी अभक्ष्य कहा गया है। काँसेके बर्तनमें नारियलका जल और ताम्रपात्रमें स्थित मधु तथा घृतके अतिरिक्त सभी गव्य पदार्थ (दूध-दही आदि) मदिरा-तुल्य हो जाते हैं। ताम्रपात्रमें दूध पीना, जूठा रखना, घीका भोजन करना और नमकसहित दूध खाना तुरंत ही अभक्ष्यके समान पापकारक हो जाता है। मधु मिला हुआ घी, तेल और गुड़ अभक्ष्य है तथा शास्त्रके मतानुसार गुड़मिश्रित अदरक भी अभक्ष्य है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पीनेसे अवशिष्ट जल, माघमासमें मूली और शय्यापर बैठकर जप आदिका सदा परित्याग कर दे। उत्तम बुद्धिसम्पन्न पुरुषको दिनमें दो बार तथा दोनों संध्याओंमें और रात्रिके पिछले पहरमें भोजन नहीं करना चाहिये। पीनेका जल, खीर, चूर्ण, घी, नमक, स्वस्तिकके आकारकी मिठाई, गुड़, दूध, मट्ठा तथा मधु—ये एक हाथसे दूसरे हाथपर ग्रहण करनेसे तत्काल ही अभक्ष्य हो जाते हैं। श्रुतिकी सम्मतिसे चाँदीके पात्रमें रखा हुआ कपूर अभक्ष्य हो जाता है। यदि परोसनेवाला व्यक्ति भोजन करनेवालेको छू दे तो वह अन्न अभक्ष्य हो जाता है—यह सभीको सम्मत है। ब्राह्मणोंको भैंसका दूध, दही, घी, स्वस्तिक और माखन नहीं खाना चाहिये। रविवारको अदरक सभीके लिये अभक्ष्य है। ब्राह्मणोंके लिये बासी अन्न, जल और दूध निषिद्ध है। असंस्कृत नमक और तेल अभक्ष्य है; परंतु अग्निद्वारा संस्कृत पवित्र व्यञ्जन सभीके खाने योग्य है। एक हाथसे धारण किया हुआ, गँदला, कृमियुक्त और अपवित्र जल अपेय होता है—यह सर्वसम्मत है। श्रीहरिको निवेदित किये बिना कोई भी पदार्थ ब्राह्मणों, यतियों, ब्रह्मचारियों, विशेष करके वैष्णवोंको नहीं खाना चाहिये। तात! जिस-किसी वस्तुमें अथवा मधु, दूध, दही, घी और गुड़में यदि चींटियाँ पड़ गयी हों तो उसे कभी नहीं खाना चाहिये। ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। पका हुआ शुद्ध फल, जिसे पक्षीने काट दिया हो अथवा उसमें कीड़े पड़ गये हों तथा कौवेद्वारा उच्छिष्ट किया हुआ पदार्थ सभीके लिये अभक्ष्य होता है। घी अथवा तेलमें पकाया हुआ

मिष्टान्न तथा पीठक, यदि उसे शूद्रने बनाकर तैयार किया हो तो वह शूद्रोंके ही खाने योग्य होता है, ब्राह्मणोंके लिये नहीं। जो अपवित्र हैं, उन सबके अन्न-जलका परित्याग कर देना चाहिये। अशौचान्तके दूसरे दिन सब शुद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। व्रजेश्वर! इस प्रकार मैंने अपनी जानकारीके अनुसार भक्ष्याभक्ष्यका वर्णन कर दिया।

पिताजी! श्रुतिके मतानुसार कर्मोंका विपाक बड़ा दुष्कर होता है। इस विषयमें क्रमशः चारों वेदोंमें चार प्रकारके मत बतलाये गये हैं; उनका सारभूत रहस्य मैं कह रहा हूँ, सुनिये। चाहे अरबों कल्प बीत जायँ तो भी भोग किये बिना कर्मका क्षय नहीं होता; अतः अपने द्वारा किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है*। तीर्थों और देवताओंके सहयोगसे मनुष्योंकी भी कुछ सहायता हो जाती है; परंतु तात! जो मुझसे विमुख है, उसे निश्चय ही उसके द्वारा किये गये प्रायश्चित्त उसी प्रकार पवित्र नहीं कर सकते, जैसे नदियाँ मदिराके घड़ेको पावन नहीं कर सकतीं। न तो उत्तम कर्मसे दुष्कर्मका नाश होता है और न दुष्कर्म करनेसे सुकर्म ही नष्ट होता है। यहाँतक कि यज्ञ, तप, व्रत, उपवास, तीर्थस्नान, दान, जप, नियम, पृथ्वीकी परिक्रमा, पुराण-श्रवण, पुण्योपदेश, गुरु और देवताकी पूजा, स्वधर्माचरण, अतिथि-सत्कार, ब्राह्मणोंका पूजन एवं विशेषतया उन्हें भोजन करानेसे भी दुष्कर्मका विनाश नहीं होता। ब्राह्मणको जो दिया जाता है, वह पूर्णरूपसे प्राप्त होता है; क्योंकि ब्राह्मण क्षेत्ररूप है और वह दान बीजके समान है। तात! मनुष्य एक कर्मद्वारा स्वर्गको प्राप्त कर लेता है; परंतु मोक्ष कर्मसे नहीं मिलता। वह तो मेरी सेवासे सुलभ होता है। पुण्यकर्म करनेसे स्वर्ग, दुष्कर्म करनेसे नरक तथा कुत्सित कर्म करनेसे व्याधि और नीच योनिमें जन्म प्राप्त होता है, तत्पश्चात् वह पवित्र होता है।

जो इच्छानुसार छोटे-बड़े पाप करनेवाला तथा गोहत्यारा है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षोंतक दन्दशूक नामक नरकमें निवास करता है। वहाँ वह सर्पके डसनेके कारण विषकी ज्वालासे तृषित एवं पीड़ित होता है तथा आहार न मिलनेसे उसका पेट सट जाता है। तत्पश्चात् उस कुण्डसे निकलकर गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक वह गौकी योनिमें उत्पन्न होता है। तदनन्तर एक लाख वर्षतक वह कोढ़ी और चाण्डाल होता है, इसके बाद मनुष्य होता है। उस समय वह कर्मानुसार कुष्ठरोगयुक्त ब्राह्मण होता है। तब एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वह नीरोग तथा पवित्र हो जाता है। गो-हत्या करनेवाला निश्चय ही उतने वर्षोंतक गौ होता है, जितने उस गौके शरीरमें रोएँ होते हैं। ब्रह्मघाती उनसे भी चौगुने वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है, तदनन्तर उससे चौगुने वर्षोंतक म्लेच्छ होता है। तत्पश्चात् उनसे चौगुने वर्षोंतक अंधा होकर ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वहाँ चार लाख विप्रोंको भोजन करानेसे वह उस महान् पातकसे मुक्त होकर पवित्र नेत्रयुक्त और यशस्वी हो जाता है। चारों वर्णोंमें जो स्त्रीकी हत्या करनेवाला है, उसे वेदमें महापातकी कहा गया है। वह उस स्त्रीके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षोंतक कालसूत्र नरकमें वास करता है। वहाँ उसे कीड़े काटते रहते हैं, आहार नहीं मिलता और नरक-यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर वह पापी उतने ही वर्षोंतक जगत्में जन्म लेता है। वहाँ वह कर्मानुसार पापपरायण तथा राजयक्ष्मासे ग्रस्त रहता है। फिर सौ वर्षोंतक

* नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ (८५। ३६)

एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे शुद्ध होकर वह विद्वान् एवं तपःपरायण विप्र होता है। उस जन्ममें वह भी कुछ बचे-खुचे पापोंको भोगता है तथा सोना दान करनेसे शुद्ध हो जाता है। भ्रूणहत्या करनेवाला महापापी शुनीमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँ वह सौ वर्षोंतक सूक्ष्म शस्त्रद्वारा पीड़ित किया जाता है। फिर उसे निश्चय ही सौ वर्षोंतक घोड़ेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। इसके बाद वह पापी अपने कर्मके फलस्वरूप दादके रोगसे युक्त वैश्य होता है और पचास वर्षोंतक वह कष्ट भोगकर पुनः स्वर्णदानसे शुद्ध होता है। इसके बाद अपने कुलमें उत्पन्न होनेपर भी वह नीरोग होता है और फिर पवित्र ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। युद्धके बिना क्षत्रियको मारनेवाला ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय तप्तशूल नरकमें जाता है। वहाँ उसे एक हजार वर्षतक तपाये हुए लोहेसे काढ़ेकी भाँति पकाया जाता है और वह आर्तनाद करता है। तदनन्तर वह सौ वर्षोंतक मदमत्त गजराज होता है। इसके बाद सौ वर्षोंतक रक्तदोषयुक्त शूद्र होता है। वहाँ वह हाथी दान करनेसे रोगमुक्त होकर फिर ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वैश्य और शूद्रकी हत्या करनेवाला वैश्य तथा वैश्यकी हिंसा करनेवाला शूद्र—ये निश्चय ही समान पापके भागी होते हैं। इन्हें सौ वर्षोंतक कृमिकुण्ड नामक नरकमें वास करना पड़ता है। वहाँ कीड़ोंके काटनेसे वह महान् दुःखी होता है। इसके बाद वह कृमिरोगसे युक्त होकर सौ वर्षोंतक किरात होता है। व्रजेश्वर! तदनन्तर वह पचास वर्षोंतक मन्दाग्नियुक्त, दुर्बल, कृशोदर, गरीब ब्राह्मण होता है। फिर तीर्थमें घोड़ेका दान करनेसे उसकी मुक्ति हो जाती है।

तात! चारों वर्णोंमें किसी भी वर्णका मनुष्य जो पीपलका वृक्ष काटता है, वह ब्रह्महत्याके चौथाई पापका भागी होता है और उसे निश्चय ही असिपत्र नामक नरकमें जाना पड़ता है। झूठी गवाही देनेवाले, कृतघ्न, अतिकृतघ्न, विश्वासघाती, मित्रघाती और ब्राह्मणोंका धन हरण करनेवाला—ये महापापी कहलाते हैं। इन्हें हजारों वर्षोंतक कुम्भीपाकमें रहना पड़ता है। वहाँ वे रात-दिन खौलते हुए तेलसे संतप्त किये जाते हैं, उन्हें व्याधियाँ घेरे रहती हैं और सर्पाकार जन्तु काटता रहता है। तदनन्तर वह पापी हजार करोड़ जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर और सौ जन्मोंतक हिंसक पशु होनेके बाद रोगग्रस्त शूद्र होता है। उस जन्ममें वह मन्दाग्नि तथा ज्वरसे पीड़ित रहता है तथा सौ पल सोना दान करके अवश्य ही शुद्ध हो जाता है। चारों वर्णोंमें जो मनुष्य वस्त्र चुरानेवाला, गव्य (दूध-दही-घी)-की चोरी करनेवाला, चाँदी और मुक्ताका अपहरण करनेवाला तथा शूद्रके धनको लूट लेनेवाला होता है; वह सौ वर्षोंतक मूत्रकुण्डका भोग करके पुनः हजार वर्षोंतक बगुलेकी योनिमें उत्पन्न होता है—यह ध्रुव है। व्रजराज! तदनन्तर वह सौ वर्षोंतक शूद्रजातिमें जन्म लेता है। वहाँ वह पापी कुष्ठरोगसे युक्त होता है और उसके घावसे मवाद निकलती रहती है। तत्पश्चात् थोड़ा-बहुत कोढ़से युक्त होकर ब्राह्मण होता है और छः पल सोना दान करनेसे पवित्र होकर रोगमुक्त हो जाता है। जो खजाना लूटनेवाला, फल चुरानेवाला तथा खेल-ही-खेलमें धनका अपहरण करनेवाला है, वह भूतलपर यक्ष होता है। फिर सौ वर्षोंतक नीलकण्ठ पक्षी होता है। तत्पश्चात् भारतभूमिपर काले रंगवाला शूद्र होता है। फिर जन्म-जन्मान्तरके बाद अधिक अङ्गोंवाला ब्राह्मण होता है। वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पुनः ब्राह्मण होकर मुक्त हो जाता है। पके हुए पदार्थोंकी चोरी करनेवाला निश्चय ही पशुयोनिमें उत्पन्न होता है। वहाँ वह सात जन्मोंतक जिसका अण्डकोश गन्धयुक्त होता है तथा जिसे कस्तूरी नामसे पुकारा जाता है; वह कस्तूरी-मृग होकर पुनः एक

जन्मतक गन्धक होता है। फिर गलितकुष्ठवाला शूद्र होता है। तत्पश्चात् अवशिष्ट रोगसे युक्त दुर्बल ब्राह्मण होता है, वहाँ वह छः पल सोना दान करनेसे निःसंदेह मुक्त हो जाता है। धान्यकी चोरी करनेवाला सात जन्मोंतक दुःखी और कृपण होता है। वह सौ वर्षोंतक विष्ठाके कुण्डमें यातना भोगकर उस भयसे मुक्त होता है। स्वर्णका अपहरण करनेवाला मानव कोढ़ी और पतित होता है तथा स्वर्ण-दान ग्रहण करनेवाला विष्ठाके कुण्डमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक रात-दिन विष्ठा खानेके बाद व्याध होता है, फिर रक्तविकारयुक्त शूद्र होता है। उस जन्ममें पापका उपभोग करके वह पुनः अवशिष्ट रोगयुक्त ब्राह्मण होता है और स्वर्ण-दान करनेसे मुक्त हो जाता है।

अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाला पापी असंख्यों वर्षोंतक पूर्वोक्त रौरव तथा महाभयंकर कुम्भीपाकमें जाता है। इसके बाद हजार वर्षोंतक वह कुलटा स्त्रियोंकी योनिका कीड़ा और लाख वर्षोंतक विष्ठाका कीट होता है। उससे पशुयोनिमें और पशुयोनिसे क्षुद्र जन्तुओंमें जन्म लेता है। तत्पश्चात् म्लेच्छ और फिर नीच शूद्र होता है। इसके बाद वह व्याधिग्रस्त ब्राह्मण होता है और पुनः ब्राह्मण होकर क्रमशः तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे शुद्ध हो जाता है; परंतु पापके कारण उसका वंश नहीं चलता। फिर एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वह पवित्र हो जाता है और पुत्र प्राप्त कर लेता है। क्रोधी मनुष्य सात जन्मोंतक गदहा होता है और जो मानव झगड़ालू होता है, उसे सात जन्मोंतक कौआ होना पड़ता है। लोहेकी चोरी करनेवाला संतानहीन, मषी चुरानेवाला कोकिल, अञ्जनका चोर शुक और मिठाई चुरानेवाला कीड़ा होता है। तात! ब्राह्मण और गुरुसे द्वेष करनेवाला सिरका कीट—जूँ होता है। पुंश्चली स्त्रीका भोग करके पुरुष रौरव नरकमें जाता है और फिर सौ वर्षोंतक निरर्थक कीट होता है तथा वह कुलटा रौरवकी यातना भोगकर सात जन्मोंतक क्रमशः विधवा, वन्ध्या, अस्पृश्या, जातिहीना और नकटी होती है। लाल पदार्थकी चोरी करनेवाला रक्तदोषसे युक्त होता है। आचारहीन मनुष्य यवन, हिंसक, लँगड़ा, दीक्षाहीन वड्खर, कुदृष्टि डालनेवाला काना, अहंकारी कर्णहीन, वेदकी निन्दा करनेवाला बहरा, बात काटनेवाला गूँगा, हिंसक केशहीन, मिथ्यावादी दाढ़ीरहित, दुष्ट वचन बोलनेवाला दन्तहीन, सत्यको छिपानेवाला जिह्वाहीन, दुष्ट अंगुलिरहित तथा ग्रन्थकी चोरी करनेवाला मूर्ख एवं रोगी होता है। घोड़ेका दान लेनेवाला तथा घोड़ा चुरानेवाला लालामूत्र नामक नरकमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक रहकर फिर घोड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है। हाथीका दान लेनेवाला तथा हाथी-चोर एक हजार वर्षोंतक विष्ठाके कुण्डमें रहकर फिर हाथी होता है। तत्पश्चात् शूद्रके घर जन्म लेता है। छागका प्रतिग्रही और चोर मनुष्य सौ वर्षोंतक पूयकुण्डमें वास करके फिर चाण्डाल होता है। तत्पश्चात् एक वर्षतक छागकी योनिमें पैदा होता है। वहाँ शत्रुके शस्त्रद्वारा काटे जानेसे मुक्त होकर ब्राह्मण होता है। जो दान की हुई वस्तुका अपहरण करता है तथा वाग्दान करके पुनः उस बातको पलट देता है; वह म्लेच्छयोनिमें जन्म लेता है और वहाँ कष्ट भोगकर नरकमें जाता है।

व्रजेश! जो (दूसरेको न देकर) अकेले ही मिठाइयाँ गप कर जाता है, वह निश्चय ही कालसूत्र नरकमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक यातना भोगकर फिर हजार वर्षोंकी आयुवाला प्रेत होता है। इसके बाद वह एक जन्मतक मक्खी, एक जन्ममें चींटी, एक जन्ममें भ्रमर, एक जन्ममें मधुमक्खी, एक जन्ममें बर्रे, एक जन्ममें डाँस, एक जन्ममें मच्छर, एक जन्ममें दुर्गन्धयुक्त कीट और एक जन्ममें खटमल होनेके बाद दुर्बुद्धि एवं रोगग्रस्त शूद्र होता है। फिर

उससे मुक्त होकर ब्राह्मण हो जाता है। तेलकी चोरी करनेवाला तेली तीन जन्मोंतक सिरका कीट—जूँ होता है। जो दुष्ट क्षेत्रकी सीमा—मेड़को नष्ट करनेवाला, भूमिचोर, हिंसक तथा दान की हुई भूमिको वापस ले लेनेवाला है, वह अवश्यमेव कालसूत्र नरकमें जाता है। वहाँ भूख-प्याससे पीड़ित होकर साठ हजार वर्षोंतक कष्ट भोगता है। तत्पश्चात् विष्ठाका कीड़ा होकर उत्पन्न होता है। इसके बाद एक जन्ममें असत् शूद्र होता है और उसके बाद शुद्ध हो जाता है। इसलिये विद्वान्को चाहिये कि वह यह सब जानकर यत्नपूर्वक इनसे सावधान रहे। लाल वस्त्रको चुरानेवाला एक जन्ममें लाल रंगका कीड़ा होता है। फिर एक जन्ममें शूद्र होता है; इसके बाद शुद्ध होकर ब्राह्मण हो जाता है। जो ब्राह्मण तीनों कालकी संध्याओंसे हीन है तथा जो मनुष्य प्रातःकाल, संध्या-समय और दिनमें सोता है, यज्ञोपवीतकी चोरी करता है, अशुद्ध संध्या करता है और वेद-वेदाङ्गका निन्दक है; उसके लिये स्वर्गका मार्ग निरुद्ध हो जाता है अर्थात् वह नरकगामी होता है और तीन जन्मोंतक पतित होता है। जो शूद्र होकर ब्राह्मणीके साथ व्यभिचार करता है; वह निश्चय ही कुम्भीपाकमें जाता है। वहाँ कष्ट झेलता हुआ तीन लाख वर्षोंतक यातना भोगता है। वह रात-दिन भयंकर खौलते हुए तेलमें जलता रहता है। तत्पश्चात् वह पापी कुलटा नारियोंकी योनिका कीड़ा होता है। वहाँ साठ हजार वर्षोंतक उस योनिका मल ही उसका आहार होता है। फिर क्रमशः एक लाख जन्मोंतक वह चाण्डाल होता है। फिर एक जन्ममें घावयुक्त कोढ़वाला शूद्र होता है। इसके बाद शुद्ध होकर व्याधियुक्त ब्राह्मण होता है; फिर तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे शुद्ध हो जाता है। जो मानव देवताकी उचित पूजा न करके उन्हें अपवित्र नैवेद्य समर्पित करता है, वह असत् शूद्र होता है।

व्रजेश्वर! जो मिट्टी, भस्म और गोबरके पिण्डोंसे अथवा बालुकासे शिवलिङ्गका निर्माण करके एक बार भी उसका पूजन करता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह भूमिका स्वामी एवं महाविद्वान् ब्राह्मण होता है। सौ लिङ्गोंका पूजन करनेसे मनुष्य भारतवर्षमें राजा होता है। एक हजार लिङ्गपूजनसे उसे निश्चित फलकी प्राप्ति होती है। वह चिरकालतक स्वर्गमें निवास करके अन्तमें भारतभूमिपर राजेन्द्र होता है। दस हजार लिङ्ग-पूजनसे राजाधिराज और एक लाख लिङ्ग-पूजनसे चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है। अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे उसका अतिरिक्त फल मिलता है। तीर्थस्नान, दान, ब्रह्मभोज, नारायणार्चन आदि कर्मसे वह ब्राह्मणवंशमें पैदा होता है, फिर अतिरिक्त तपस्याके प्रभावसे वह ब्राह्मण विद्वान् तथा जितेन्द्रिय वैष्णव हो जाता है। फिर अनेक जन्मोंके पुण्यफलसे वह भारतभूमिपर जन्म लेता है। उसके चरण-स्पर्शसे ही वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है। ऐसे जीवन्मुक्त वैष्णव तीर्थोंको तीर्थत्व प्रदान करते हैं और अपने हजारों पूर्वजोंको पावन बना देते हैं। ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। जो अत्यन्त क्रूर, दुराचारी तथा देव-ब्राह्मणका द्वेषी होता है; वह हजार वर्षोंतक जहरीला साँप होता है। व्रजनाथ! जो नारी कुलटा स्त्रियोंके लम्पटोंकी दूती होती है; वह सौ वर्षोंतक कालसूत्र नरकमें रहकर फिर छिपकली होती है। एक जन्मतक छिपकली होनेके बाद तीन जन्मोंतक हरिण, एक जन्ममें भैंसा, एक जन्ममें भालू, एक जन्ममें गैंडा और तीन जन्मोंतक सियारकी योनिमें उत्पन्न होती है। जो दूसरेके तड़ागका तथा भलीभाँति बोयी हुई दूसरेकी खेतीका दान करता है, वह मगरकी जातिमें उत्पन्न होकर तीन जन्मोंतक कछुआ होता है। एकादशी-व्रतको न रखनेवाला ब्राह्मण पतित हो जाता है। फिर अपने आहारसे दूना भोजन

दान करके वह उस पापसे मुक्त होता है। जो अधम मानव मेरे जन्मदिन—भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीको भोजन करता है, उसे निःसंदेह त्रिलोकीमें होनेवाले सभी पापोंको भोगना पड़ता है। इस प्रकार सभी नरकोंका भोग करनेके पश्चात् वह चाण्डाल होता है। इसी तरह शिवरात्रि और श्रीरामनवमीके दिन भी समझना चाहिये। जो शक्तिहीन होनेके कारण उपवास करनेमें असमर्थ हो, उसे हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये और मेरा पुण्य महोत्सव सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। इससे वह पापमुक्त होकर शुद्ध हो जाता है। इसके लिये यत्नपूर्वक मेरे नामोंका संकीर्तन करना चाहिये। जो देव-मूर्तियोंकी चोरी करता है, वह सात जन्मोंतक अंधा, दरिद्र, रोगग्रस्त, बहरा और कुबड़ा होता है। जो नराधम ब्राह्मण और देव-प्रतिमाको देखकर उन्हें नमस्कार नहीं करता; वह जबतक जीता है तबतक अपवित्र यवन होता है। जो ब्राह्मणको आया हुआ देखकर उठकर स्वागत नहीं करता; वह निश्चितरूपसे महापापी होता है। जो शिवका द्वेषी तथा देव-प्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका-निर्वाह करनेवाला है, वह सात जन्मतक मुर्गा होता है। जो अज्ञानी पितरों और देवताओंके वेदोक्त पूजनका विनाश करता है, वह पापी रौरव नरकमें जाता है। वहाँ एक हजार वर्षतक यातना भोगनेके पश्चात् तीन जन्मोंतक तीर्थकाक होता है। फिर तीन जन्मोंतक किसी तीर्थमें सियारकी योनिमें उत्पन्न होकर मुर्देकी लाश खाता है। व्रजेश्वर! वही पापी तीन जन्मोंतक तीर्थोंमें शवकी रक्षा तथा कर्मानुसार मुर्दोंकी कफनखसोटी करता है। जो मूर्ख नित्य दम्भपूर्वक देवताकी पूजा करके भक्तिपूर्वक गुरुका पूजन नहीं करता और न उन्हें अन्न प्रदान करता है; वह पापी देवताके शापसे दुःखी, देवल (देवप्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका चलानेवाला) और भयंकर देवद्रोही होता है; उसे पूजाका फल नहीं मिलता।

व्रजेश्वर! (हाथसे) दीपको बुझानेवाला सात जन्मोंतक जुगुनू होता है। जो इष्टदेवको निवेदन किये बिना ही खाता है तथा मछलीका अत्यन्त लोभी है; वह मछरंगा पक्षी होता है तथा सात जन्मोंतक बिलावकी योनिमें जन्म धारण करता है। बोरा चुरानेवाला कबूतर, माला हरण करनेवाला आकाशचारी पक्षी, धान्यकी चोरी करनेवाला गौरैया और मांसचोर हाथी होता है। विद्वानोंके कवित्वपर प्रहार करनेवाला सात जन्मतक मेढक होता है। जो झूठे ही अपनेको विद्वान् कहकर गाँवकी पुरोहिती करता है; वह सात जन्मोंतक नेवला, एक जन्ममें कोढ़ी और तीन जन्मोंतक गिरगिट होता है। फिर एक जन्ममें बर्रे होनेके बाद वृक्षकी चींटी होता है। तत्पश्चात् क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण होता है। चारों वर्णोंमें कन्या बेचनेवाला मानव तामिस्र नरकमें जाता है और वहाँ तबतक निवास करता है, जबतक सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति रहती है। इसके बाद वह मांस बेचनेवाला व्याध होता है। तत्पश्चात् पूर्वजन्ममें जो जैसा होता है, उसीके अनुसार उसे व्याधि आ घेरती है। मेरे नामको बेचनेवाले ब्राह्मणकी मुक्ति नहीं होती—यह ध्रुव है। मृत्युलोकमें जिसके स्मरणमें मेरा नाम आता ही नहीं; वह अज्ञानी एक जन्ममें गौकी योनिमें उत्पन्न होता है। इसके बाद बकरा, फिर मेढ़ा और सात जन्मोंतक भैंसा होता है। जो मानव महान् षड्यन्त्री, कुटिल और धर्महीन होता है; वह एक जन्ममें तेली होकर फिर कुम्हार होता है। जो झूठा कलंक लगानेवाला और देवता एवं ब्राह्मणका निन्दक होता है, वह एक जन्ममें सोनार होकर सात जन्मोंतक धोबी होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कुत्सित आचरणवाले तथा पवित्रतासे रहित होते हैं, उन्हें

दस हजार वर्षोंतक म्लेच्छयोनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो पुरुष कामभावसे स्त्रियोंकी कटि, स्तन और मुखकी ओर निहारता है, वह दूसरे जन्ममें दृष्टिहीन और नपुंसक होता है। जो ब्राह्मण ज्ञानहीन होते हुए आभिचारिक कर्म करनेवाला तथा हिंसक होता है; वह इस प्रकार दस हजार वर्षोंतक अन्धतामिस्र नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् कर्मके भोगके अनुसार वह ब्राह्मण शूद्र होता है। जो शास्त्रज्ञ ज्योतिषी लोभवश झूठ बोलता है; वह सात जन्मोंतक वानरोंका सरदार होता है—यह ध्रुव है। तत्पश्चात् वह धर्महीन पापी अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतवर्षमें उत्तम बुद्धिसम्पन्न परम धर्मात्मा ब्राह्मण होता है। अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाला ब्राह्मण अग्निसे भी बढ़कर पवित्र और अत्यन्त तेजस्वी होता है, उससे देवगण सदा डरते रहते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, तीर्थोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशी, ज्ञानियोंमें शंकर, शास्त्रोंमें वेद, वृक्षोंमें पीपल, तपस्याओंमें मेरी पूजा तथा व्रतोंमें उपवास सर्वश्रेष्ठ है; उसी तरह समस्त जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। समस्त पुण्य, तीर्थ और व्रत ब्राह्मणके चरणोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मणकी चरणरज शुद्ध तथा पाप और रोगका विनाश करनेवाली होती है। उनका शुभाशीर्वाद सारे कल्याणोंका कारण होता है। तात! इस प्रकार मैंने अपनी जानकारी तथा शास्त्रज्ञानके अनुसार आपसे कर्मविपाकका वर्णन कर दिया। अब जो अवशिष्ट है, उसे श्रवण करो। इस कर्मविपाकको सुनकर उस वाचकको सोना, चाँदी, वस्त्र और पान देना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये उस ब्राह्मणको तुरंत सौ स्वर्णमुद्राएँ, बहुत-सी गायें, चाँदी, वस्त्र और ताम्बूल दक्षिणारूपमें समर्पित करे। (अध्याय ८५)

## केदार-कन्याके वृत्तान्तका वर्णन

**नन्दजीने पूछा**—प्रभो! आपने स्त्रियोंके प्रसङ्गसे केदार-कन्याका प्रस्ताव करके कर्मविपाकका वर्णन किया। अब विस्तारपूर्वक केदार-कन्याका चरित्र बतलाइये। वह केदार-कन्या कौन थी? भूपाल केदार कौन थे? किसके वंशमें उनका जन्म हुआ था? यह विवरणसहित मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—नन्दजी! सृष्टिके आदिमें ब्रह्माके पुत्र स्वायम्भुव मनु हुए। उनकी स्त्रीका नाम शतरूपा था, जो स्त्रियोंमें धन्या और माननीया थी। उन दोनोंके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र हुए। उत्तानपादके पुत्र महायशस्वी ध्रुव हुए। ध्रुवके पुत्र नन्दसावर्णि और नन्दसावर्णिके पुत्र केदार हुए। स्वयं श्रीमान् केदार विष्णु-भक्त तथा सातों द्वीपोंके अधिपति थे। उनकी रक्षाके लिये वे प्रतिदिन राजदरबारमें सुन्दर रूप-रंगवाली, सीधी, नौजवान गायें, जिनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया था, ब्राह्मणोंको दान करते थे। प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे; दुःखियों और भिक्षुकोंको यथोचित धन देते थे और स्वयं राजा विष्णु-भक्तिपरायण हो इन्द्रियोंको काबूमें करके फल-मूलका आहार करते हुए सब कुछ मुझे समर्पित करके रात-दिन मेरा जप करते थे। तदनन्तर लक्ष्मी अपनी कलासे कामिनियोंमें श्रेष्ठ कमलनयनी कन्याके रूपमें उनके यज्ञकुण्डसे प्रकट हुईं। उनके शरीरपर अग्निमें तपाकर शुद्ध किया हुआ वस्त्र था और वे रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन्होंने राजासे यों कहा—'महाराज! मैं आपकी कन्या हूँ।' तब राजाने भक्तिपूर्वक उसकी

भलीभाँति पूजा की और उसे अपनी पत्नीको समर्पित करके वे चुपचाप खड़े हो गये। तदनन्तर वह कन्या हर्षपूर्वक विनती करके और माता-पिताकी आज्ञा ले तपस्या करनेके लिये यमुना-तटपर स्थित रमणीय पुण्यवनको चली गयी। वह वृन्दाका तपोवन था; इसीलिये उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। वहाँ तपस्या करके उसने वरोंमें श्रेष्ठ मुझको वररूपसे वरण किया। तब ब्रह्माने उसे वरदान दिया कि 'कुछ कालके पश्चात् तू कृष्णको प्राप्त करेगी'। फिर ब्रह्माजीने उसकी परीक्षाके लिये धर्मको एक परम सुन्दर तरुण ब्राह्मणके रूपमें उसके पास भेजा।

**वहाँ जाकर धर्मने कहा**—मनोहरे! तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा क्या नाम है? यहाँ एकान्तमें तुम क्या कर रही हो? यह मुझे बतलाओ। सुन्दरि! तुम क्या चाहती हो और किसलिये यह तपस्या कर रही हो? तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वह वरदान माँगो।

**वृन्दा बोली**—विप्रवर! मैं केदारराजकी कन्या हूँ, मेरा नाम वृन्दा है। मैं इस वृन्दावनमें वास करती हुई एकान्तमें तपस्या कर रही हूँ और श्रीहरिको अपना पति बनानेकी चिन्तामें हूँ। अतः ब्राह्मण! यदि तुम्हारेमें ऐसा वरदान देनेकी शक्ति हो तो मेरा अभीष्ट वर मुझे प्रदान करो; अन्यथा यदि तुम असमर्थ हो तो अपने रास्ते जाओ। तुम्हें यह सब पूछनेसे क्या लाभ?

**धर्मने कहा**—वृन्दे! जो इच्छारहित, तर्कणा करनेके अयोग्य, ऐश्वर्यशाली, निर्गुण, निराकार और भक्तानुग्रहमूर्ति हैं; उन परमात्माको पति बनानेके लिये लक्ष्मी और सरस्वतीके अतिरिक्त दूसरी कौन स्त्री समर्थ हो सकती है? वैकुण्ठशायी चतुर्भुज भगवान्‌की ये ही दो भार्याएँ हैं। गोलोकमें भी जो द्विभुज, वंशी बजानेवाले, किशोर गोप-वेषधारी, परिपूर्णतम श्रीकृष्ण हैं; उनकी पत्नी स्वयं परात्परा महालक्ष्मी राधा हैं। वे परमब्रह्म-स्वरूपिणी राधा उन श्यामसुन्दरकी, जो परम आत्मबलसे सम्पन्न, ऐश्वर्यशाली, शमपरायण और परम सौन्दर्यशाली हैं, जिनका सुन्दर शरीर करोड़ों कामदेवोंके सौन्दर्यकी निन्दा करनेवाला, अमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित, सत्यस्वरूप और अविनाशी है तथा जो रमणीय पीताम्बर धारण करनेवाले और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं; सदा सेवा करती रहती हैं। वे श्रीकृष्ण द्विभुज और चतुर्भुज-रूपसे दो रूपोंमें विभक्त हैं। वे स्वयं चतुर्भुज-रूपसे वैकुण्ठमें और द्विभुज-रूपसे गोलोकमें वास करते हैं। पचीस हजार युग बीतनेके बाद इन्द्रका पतन होता है, ऐसे चौदह इन्द्रोंका शासनकाल लोकोंके विधाता ब्रह्माका एक दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ऐसे तीस दिनका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। ऐसे सौ वर्षतक ब्रह्माकी आयु समझनी चाहिये। उन ब्रह्माकी आयुसमाप्ति, जिनका एक निमेष होता है, सनक आदि महर्षि जिनकी जीवनपर्यन्त सेवा करते रहते हैं, परंतु करोड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी जो विभु साध्य नहीं होते। सहस्रमुखधारी शेषनाग अरबों-खरबों कल्पोंतक जिनकी भक्तिपूर्वक रात-दिन सेवा तथा नाम-जप करते रहते हैं; परंतु वे परात्पर, दुराराध्य, हितकारी भगवान् साध्य नहीं होते। जो ब्रह्मा वेदोंके उत्पादक, विधाता, फलदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं; वे प्रत्येक जन्ममें उन ब्रह्मस्वरूप अविनाशी सनातनदेवका सदा अपने चारों मुखोंद्वारा स्तवन करते रहते हैं; परंतु वेदोंद्वारा अनिर्वचनीय, कालके काल तथा अन्तकके अन्तक उन भगवान्‌को सिद्ध नहीं कर पाते।

वृन्दे! जो अपनी कलासे रुद्ररूप धारण करके जगत्‌का संहार करते हैं, पाँचों मुखोंसे उनकी स्तुति करते हैं, जिनसे बढ़कर भगवान्‌को दूसरा कोई प्रिय नहीं है; उनके द्वारा जब भगवान्

साध्य नहीं होते, तब दूसरेकी क्या बात है? वृन्दे! जो सर्वशक्तिस्वरूपा, दुर्गतिनाशिनी, परमब्रह्म-स्वरूपिणी, ईश्वरी, मूलप्रकृति, नारायणी, विष्णुमाया, वैष्णवी और सनातनी हैं, जिनकी मायासे भ्रमणशील जगत् सदा चक्कर काटता रहता है, वे दुर्गा भी जिन देवकी भक्तिपूर्वक रात-दिन स्तुति करती रहती हैं। गजानन गणेश और छः मुखवाले स्वामीकार्तिक भी भक्तिसहित यथाशक्ति जिनका स्तवन करते हैं। जिनकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी और ज्ञानियोंके गुरुके गुरु हैं, जिन गणेशसे बढ़कर सिद्धेन्द्र, देवेन्द्र, योगीन्द्र और ज्ञानियोंके गुरुओंमें कोई विद्वान् नहीं है, जो गणोंके स्वामी और देवताओंके अधिपति हैं; वे भगवान् गणेश जिनका ध्यान करते हैं। परमेश्वरी सरस्वती जिनका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं। लक्ष्मी रात-दिन जिनके चरणकमलकी सेवा करती हैं। जिनके कटाक्षसे सारा जगत् परिपूर्णतम एवं कल्याणमय है। जिनके भयसे वायु चलती है; जिनके भयसे सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाती है और मृत्यु प्राणियोंमें विचरण करती है। जिनकी सेवा करनेसे पृथ्वी सबकी आधार-स्वरूपा तथा धनकी भण्डार हो गयी है। सुन्दरि! जिनसे भयभीत होकर समुद्र और पर्वत निश्चलरूपसे अपनी-अपनी मर्यादामें स्थित रहते हैं। जिनके चरणकमलकी सेवासे गङ्गादेवी तीर्थोंकी साररूपा, पवित्र, मुक्तिदायिनी और लोकोंको पावन करनेवाली हो गयी हैं। जिनके स्मरण और सेवनसे तुलसीदेवी पवित्र हो गयी हैं तथा नवग्रह और दिक्पाल जिनके प्रतापसे डरते रहते हैं। सारे ब्रह्माण्डोंमें जो-जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्यान्य सुरेश्वर, शेष आदि तथा मुनिगण हैं; उनमेंसे कुछ परमात्मा श्रीकृष्णके कलास्वरूप, कुछ अंशरूप और कुछ कलांशरूप हैं। कल्याणि! तुम उन्हीं परमेश्वरको, जो प्रकृतिसे परे हैं, अपना पति बनाना चाहती हो, परंतु वे गोलोकमें केवल राधिकाद्वारा साध्य हैं; दूसरा कोई कभी भी उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता। इतना कहकर छद्मवेषधारी धर्मने उसकी परीक्षाके लिये प्रचुर भोगसुखका प्रलोभन दिया और अपनेको ही पतिरूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। फिर धर्म उसकी ओर बढ़े। व्रजेश! उनका विचार केवल उसके सतीत्वको जानना था। उनकी यह चेष्टा देखकर उस राजकन्याके मुख और नेत्र क्रोधसे वक्र हो गये। तब वह हितकारक, सत्य, योगयुक्त, यशस्कर एवं धर्मार्थ वचन बोली।

**श्रीवृन्दाने कहा**—महाभाग! धैर्य धारण कीजिये। आप तो जातियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणोंका स्वभाव तपोमूलक, सत्यपरक, वेदव्रती और धैर्यशाली होता है। परायी स्त्रियोंके प्रति आकर्षित होना तो अधर्मियोंका स्वभाव है। विप्रवर! अधर्मसे ही दुष्टको अमङ्गलका दर्शन होता है। तत्पश्चात् वह शत्रुपर विजय-लाभ करता है और फिर समूल नष्ट हो जाता है। जो बलपूर्वक पतिव्रताओंके साथ व्यभिचार करता है, वह मातृगामी कहलाता है और उसे तुरंत ही सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है—यह निश्चित है। जबतक सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतक वह कुम्भीपाकमें यातना भोगता है। यमदूत उसके मस्तकपर लोहेके डंडेसे प्रहार करते हैं; वह खौलते हुए तेलमें जलाया जाता है; परंतु उसकी सूक्ष्मदेहसे प्राण विलग नहीं होते। यह क्षणिक सुख चिरकालिक दुःखका दाता और सर्वविनाशका कारण है। इसीलिये धर्मात्मा पुरुष अगम्याके गमनजन्य दुःखकी इच्छा नहीं करते; अतः ज्ञानदुर्बल ब्राह्मण! आपका कल्याण हो, मुझे क्षमा कीजिये और अपने रास्ते जाइये। जैसे दीपककी लौ देखकर पतिङ्ग निश्चय ही उसपर टूट पड़ता है; लोभी मीन और मृग काँटेके अग्रभागमें मिष्टान्नको देखकर उसे निगलना चाहता है; भूखा

मनुष्य विषमिश्रित भोजनको खा जाता है और दुष्ट मुखपर छलछलाते हुए दूधवाले दूषित विषकुम्भको ग्रहण कर लेता है; उसी तरह लम्पट पुरुष परायी स्त्रियोंके मनोहर मुखकमलको, जो विनाशका कारण है, देखकर मोहवश भ्रान्त हो जाता है। स्त्रियोंका सुन्दर मुख, दोनों नितम्ब तथा स्तन काम-वासनाके आधार, नाशके कारण और अधर्मके स्थान हैं। जो लार और मूत्रसे संयुक्त है, जिसमेंसे दुर्गन्ध निकलती है, जो पाप तथा यमदण्डका कारण है, स्त्रियोंका वह मूत्रस्थान (योनि) नरककुण्डके सदृश है। ब्राह्मण! एकान्त देखकर जो तुम मेरी धर्षणा करना चाहते हो तो यहीं समस्त देवता, लोकपाल, कर्मोंके शासक तथा साक्षी जाज्वल्यमान धर्म, स्वयं श्रीहरिद्वारा नियुक्त दण्डकर्ता यमराज, स्वयं धर्मात्मा श्रीकृष्ण, ज्ञानरूपी महेश्वर, दुर्गा, बुद्धि, मन, ब्रह्मा, इन्द्रियाँ तथा देवगण उपस्थित हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंमें उनके कर्मोंके साक्षीरूपसे वर्तमान रहते हैं; अतः अज्ञानी ब्राह्मण! कौन-सा स्थान गुप्त है और कौन-सा रहस्यमय? विप्र! तुम्हारा कल्याण हो। मुझे क्षमा कर दो और जाओ। मैं तुम्हें भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ; परंतु ब्राह्मण अवध्य होते हैं। अतः वत्स! तुम सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ। द्विज! तपस्या करते हुए मुझे एक सौ आठ युग बीत गये। अब न तो मेरे पिताका गोत्र ही रह गया है और न मेरे माता-पिता ही हैं। सबके अन्तरात्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करते हैं। श्रीकृष्णद्वारा स्थापित धर्म नित्य मेरी रक्षामें तत्पर है। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, अग्नि, ब्रह्मा, शम्भु, भगवती दुर्गा—ये सभी सदा मेरी देख-भाल करते हैं। जिन्होंने हंसोंको श्वेत, शुकोंको हरा और मयूरोंको रंग-बिरंगा बनाया है; वे ही मेरी रक्षा करेंगे। सभी देवता अनाथों, बालकों तथा वृद्धोंकी सर्वदा रक्षा करते हैं, अतः नारी समझकर धर्म मेरा परित्याग करके नहीं जा सकते।

इसके बाद श्रीवृन्दाने पतिव्रत-धर्मकी महिमा और दुराचारकी निन्दा करके कोपप्रकाशपूर्वक शाप दे दिया—'दुराचार! तुम्हारा नाश हो जाय। पापिष्ठ! तुम नष्ट हो जाओ।' इतना कहकर जब पुनः शाप देनेको उद्यत हुई तब स्वयं सूर्यने उसे यत्न करके रोक दिया। इसी बीच वहाँ ब्रह्मा, शिव, सूर्य और इन्द्र आदि देवता आ पहुँचे। सबने उससे क्षमा माँगी और 'धर्म तुम्हारी परीक्षाके लिये आया था। उसमें तनिक भी पापबुद्धि नहीं थी। धर्मके नाशसे जगत्के सनातनधर्म-रूप जीवनका नाश हो जायगा' यह कहकर धर्मको जीवनदान देनेकी प्रार्थना की।

**तब वृन्दाने कहा**—देव! मैं नहीं जानती थी कि ये ब्राह्मणवेषधारी धर्म हैं और मेरी परीक्षा करनेके लिये आये हैं। इसी कारण मैंने क्रोधवश इनका नाश किया है। अब आप लोगोंकी कृपासे मैं अवश्य धर्मको जीवन-दान दूँगी। व्रजेश्वर! यों कहकर वह वृन्दा पुनः बोली—'यदि मेरी तपस्या सत्य हो तथा मेरा विष्णुपूजन सत्य हो तो उस पुण्यके प्रभावसे ये विप्रवर यहाँ शीघ्र ही दुःखरहित हो जायँ। यदि मुझमें सत्य वर्तमान हो और मेरा व्रत सत्य तथा तप शुद्ध हो तो उस पुण्य तथा सत्यके प्रभावसे ये ब्राह्मण कष्टरहित हो जायँ। यदि नित्यमूर्ति सर्वात्मा नारायण तथा ज्ञानात्मक शिव सत्य हैं तो ये द्विजवर संतापरहित हो जायँ। यदि ब्रह्म सत्य हो, सभी देवता और परमा प्रकृति सत्य हों, यज्ञ सत्य हो और तप सत्य हो तो इन ब्राह्मणका कष्ट दूर हो जाय।'—इतना कहकर सती वृन्दाने धर्मको अपनी गोदमें कर लिया और उन कलारूपको देखकर वह कृपापरवश हो रुदन करने लगी। इसी बीच धर्मकी भार्या मूर्ति, जो शोकसे व्याकुल थी, सिरके बल विष्णुके चरणपर गिर पड़ी और यों बोली।

**मूर्तिने कहा**—हे नाथ! आप तो करुणासागर हैं। दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। कृपामूर्ति जगन्नाथ! मेरे पतिदेवको शीघ्र जीवित कर दीजिये; क्योंकि जो नारी पतिसे हीन हो जाती है, वह इस भवसागरमें पापिनी समझी जाती है। उसकी दशा नेत्रहीन मुख और प्राणरहित शरीरके समान हो जाती है। माता-पिता, भाई-बन्धु और पुत्र तो परिमित सुख देनेवाले होते हैं, सर्वस्व प्रदान करनेवाला तो सामर्थ्यशाली पति ही होता है।—इतना कहकर मूर्ति देवी वहाँ खड़ी हो गयीं और विलाप करने लगीं। तब भगवान्, जो सर्वात्मा एवं प्रकृतिसे परे हैं; वृन्दासे बोले।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—सुन्दरि! तुमने तपस्याद्वारा ब्रह्माकी आयुके समान आयु प्राप्त की है। वह अपनी आयु तुम धर्मको दे दो और स्वयं गोलोकको चली जाओ। वहाँ तुम तपस्याके प्रभावसे इसी शरीरद्वारा मुझे प्राप्त करोगी। सुमुखि! गोलोकमें आनेके पश्चात् वाराहकल्पमें तुम राधाकी छायाभूता वृषभानुकी कन्या होओगी। उस समय मेरे कलांशसे उत्पन्न हुए रायाण गोप तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। फिर रासक्रीड़ाके अवसरपर तुम गोपियों तथा राधाके साथ मुझे प्राप्त करोगी। जब राधा श्रीदामाके शापसे वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट होंगी, उस समय वे ही वास्तविक राधा रहेंगी। तुम तो उनकी छायास्वरूपा होओगी। विवाहके समय वास्तविक राधा तुम्हें प्रकट करके स्वयं अन्तर्धान हो जायँगी और रायाण गोप तुम छायाको ही ग्रहण करेंगे; परंतु गोकुलमें मोहाच्छन्न लोग तुम्हें 'यह राधा ही है'—ऐसा समझेंगे। उन गोपोंको तो स्वप्नमें भी वास्तविक राधाके चरणकमलका दर्शन नहीं होता; क्योंकि स्वयं राधा मेरी गोदमें रहती हैं और उनकी छाया रायाणकी भार्या होती है।

इस प्रकार भगवान् विष्णुके वचनको सुनकर सुन्दरी वृन्दाने धर्मको अपनी आयु प्रदान कर दी। फिर तो धर्म पूर्णरूपसे उठकर खड़े हो गये। उनके शरीरकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति चमक रही थी और उनका सौन्दर्य पहलेकी अपेक्षा बढ़ गया था। तब उन श्रीमान्‌ने परात्पर परमेश्वरको प्रणाम किया।

**पुनः वृन्दाने कहा**—देवगण मेरे वचनको, जिसका उल्लङ्घन करना कठिन है, सावधानतया श्रवण करें। मेरा वाक्य मिथ्या नहीं हो सकता। मैंने क्रोधावेशमें जो तीन बार **'क्षयो भव'**, 'तुम्हारा नाश हो जाय'—ऐसा वचन कहा है और पुनः कहनेके लिये उद्यत होनेपर सूर्यने मना कर दिया था, उसका फल यों होगा—यह धर्म सत्ययुगमें जैसे पहले परिपूर्ण था, उसी तरह इस समय भी रहेगा; परंतु त्रेतामें इसके तीन पैर, द्वापरमें दो पैर और कलियुगके प्रथमांशमें एक पैर रह जायगा। कलियुगके शेष भागमें यह कलाका षोडशांशमात्र रह जायगा। सत्ययुग आनेपर यह पुनः परिपूर्ण हो जायगा। मेरे मुखसे तीन बार 'क्षय' शब्द निकला है; इसलिये उसी क्रमसे क्षय भी होगा। मनमें पुनः कहनेका विचार करनेपर

सूर्यने रोक दिया था; इसी कारण यह धर्म कलियुगकी समाप्तिमें कलामय ही रह जायगा।

नन्दजी! इसी बीच देवताओंने वेगपूर्वक गोलोकसे आये हुए एक अत्यन्त सुन्दर एवं शुभ रथको देखा। उस रथका निर्माण अमूल्य रत्नोंद्वारा हुआ था। उसमें हीरेके हार लटक रहे थे और वह मणि, माणिक्य, मुक्ता, वस्त्र, श्वेत चँवर, भूषण और सुन्दर रत्नजटित दर्पणोंसे विभूषित था। उस रथको देखकर वृन्दाने हरि, शंकर, ब्रह्मा तथा समस्त देवताओंको नमस्कार किया और फिर उसपर सवार हो वह गोलोकको चली गयी। तत्पश्चात् सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। अब तुम्हारी पुनः क्या सुननेकी इच्छा है?

(अध्याय ८६)

## सनत्कुमार आदिके साथ श्रीकृष्णका समागम, सनत्कुमारके द्वारा श्रीकृष्णके रहस्योद्घाटन करनेपर नन्दजीका पश्चात्तापपूर्ण कथन तथा मूर्च्छित होना

**नन्दजीने कहा**—प्रभो! आप स्वयं वेदोंके अधीश्वर हैं; अतः वेद, ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवता तथा मुनि और सिद्ध आदि आपको जाननेमें असमर्थ हैं। आप कौन हैं—यह जाननेके लिये मेरे मनमें प्रबल उत्कण्ठा है; अतः इस निर्जन स्थानमें आप अपना सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

**श्रीनारायण कहते हैं**—नारद! इसी बीच वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये सहसा पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, प्रचेतागण, वसिष्ठ, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, पाणिनि, कणाद, गौतम, सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वायु (वोढु), पञ्चशिख, विश्वामित्र, वाल्मीकि, कश्यप, पराशर, विभाण्डक, मरीचि, शुक्र, अत्रि, बृहस्पति, गार्ग्य, वात्स्य, व्यास, जैमिनि, परिमित वचन बोलनेवाले ऋष्यशृङ्ग, याज्ञवल्क्य, शुक, शुद्ध जटाधारी सौभरि, भरद्वाज, सुभद्रक, मार्कण्डेय, लोमश, आसुरि, विटंकण, अष्टावक्र, शतानन्द, वामदेव, भागुरि, संवर्त, उतथ्य, नर, मैं (नारायण), नारद, जाबालि, परशुराम, अगस्त्य, पैल, युधामन्यु, गौरमुख, उपमन्यु, श्रुतश्रवा, मैत्रेय, च्यवन, करथ और कर मुनीश्वर आ पहुँचे। वत्स! वे सभी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें आया देखकर श्रीकृष्ण सहसा उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर नमस्कार करनेके पश्चात् उन्हें आदरसहित रमणीय सिंहासनोंपर बैठाये। फिर श्रीकृष्णने कुशल-प्रश्नपूर्वक परस्पर वार्तालाप करके उनकी विधिवत् पूजा की और स्वयं भी उन्हींके मध्यमें आसनासीन हुए। इसी समय श्रीकृष्णको आकाशमें एक समुज्ज्वल तेजोराशि दीख पड़ी। उसे मुनियोंने भी देखा। वत्स नारद! उस तेजके अंदर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले, पञ्चवर्षीय नग्न-बालकके रूपमें सनत्कुमारजी थे। वे सहसा उस सभाके बीच प्रकट हो गये। उन्हें एकाएक सामने खड़े देखकर सभी मुनिवरोंने प्रणाम किया तथा श्रीकृष्णने भी मुस्कानयुक्त एवं स्निग्ध नेत्रोंवाले कुमारको युक्तिपूर्वक सादर सिर झुकाया। तब सनत्कुमारजी उन सबको आशीर्वाद देकर उस सभामें विराजमान हुए और उन ऋषियों तथा सनातन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले।

**सनत्कुमारने कहा**—मुनिवरो! आप लोगोंका सदा कल्याण हो और तपस्याओंका अभीष्ट फल प्राप्त हो; किंतु कल्याणके कारणस्वरूप इन श्रीकृष्णका कुशल-प्रश्न निष्फल है। इस समय तो आप लोगोंका सर्वथा कुशल है; क्योंकि आप लोग उन परमात्माका दर्शन कर रहे हैं, जो प्रकृतिसे परे होनेपर भी भक्तोंके अनुरोधसे शरीर

धारण करते हैं; निर्गुण, इच्छारहित और समस्त तेजोंके कारण हैं तथा इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही आविर्भूत हुए हैं।

**श्रीकृष्णने पूछा**—विप्रवर! जब सभी शरीरधारियोंके लिये कुशल-प्रश्न अभीष्ट होता है, तब भला मेरे विषयमें वह कुशल-प्रश्न क्यों नहीं है?

**सनत्कुमारजी बोले**—नाथ! प्राकृत शरीरके विषयमें कुशल-प्रश्न करना तो सर्वदा शुभदायक है; परंतु जो शरीर नित्य और मङ्गलका कारण है, उसके विषयमें कुशल-प्रश्न निरर्थक है।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—विप्रवर! जो-जो शरीरधारी है, वह-वह प्राकृतिक कहा जाता है; क्योंकि उस नित्या प्रकृतिके बिना शरीर बन ही नहीं सकता।

**सनत्कुमारजी बोले**—प्रभो! जो शरीर रज-वीर्यसे उत्पन्न होते हैं, वे ही प्राकृतिक कहे जाते हैं; किंतु जो प्रकृतिके स्वामी और कारण हैं उनका शरीर प्राकृत कैसे हो सकता है? आप तो समस्त कारणोंके आदिकारण, सभी अवतारोंके प्रधान बीज, अविनाशी स्वयं भगवान् हैं। वेद आपको सदा नित्य, सनातन, ज्योतिःस्वरूप, परमोत्कृष्ट, परमात्मा और ईश्वर कहते हैं। प्रभो! वेदाङ्ग तथा वेदज्ञ लोग भी आप मायापति निर्गुण परात्परको मायाद्वारा सगुण-रूप हुआ बतलाते हैं।

**श्रीकृष्णने कहा**—विप्रवर! इस समय मैं वसुदेवका पुत्र वासुदेव हूँ। मेरा शरीर रक्त-वीर्यके ही आश्रित है; फिर यह प्राकृत कैसे नहीं है और इसके लिये कुशल-प्रश्न अभीष्ट क्यों नहीं है?

**सनत्कुमारजी बोले**—जिसके रोमकूपोंमें सारे विश्व निवास करते हैं तथा जो सबका निवासस्थान है, उसे 'वासु' कहते हैं; उसका देवता परब्रह्म 'वासुदेव' ऐसा कहा जाता है। उनका 'वासुदेव' यह नाम चारों वेदों, पुराणों, इतिहासों और सभी प्रथाओंमें देखा जाता है। भला, वेदमें आपके रक्तवीर्याश्रित शरीरका कहाँ निरूपण हुआ है? इसके लिये ये मुनिगण तथा धर्म सर्वत्र साक्षी हैं। इस अवसरपर वेद और सूर्य-चन्द्रमा मेरे गवाह हैं।

**भृगुने कहा**—विप्रेन्द्र! आप ही वैष्णवोंमें अग्रगण्य हैं; आपका कहना बिलकुल सत्य है। आपका स्वागत है; सदा कुशल तो है न? किस निमित्तको लेकर आपका यहाँ आगमन हुआ है?

**सनत्कुमारजी बोले**—श्रीकृष्ण! इस समय मैं जिस निमित्तसे अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया हूँ उसका कारण श्रवण करो और ये सभी मुनि भी उसे सुन लें।

**श्रीकृष्णने कहा**—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं। सर्वज्ञ! आप तो सब कुछ जानते हैं; क्योंकि आप ही विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; अतः बताइये, किस प्रयोजनसे आप यहाँ पधारे हैं?

**सनत्कुमारजी बोले**—भगवन्! आप धन्य हैं। लोकोंके लिये भी आप सदा मान्य हैं और समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर आप ही हैं। विश्वमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

तदनन्तर मुनियोंके पूछनेपर सनत्कुमारजीने बताया कि मैं परम धन्य, मान्य, विधाताके भी विधाता, सर्वादि, सर्वकारक, परमात्मा, परिपूर्णतम प्रभुके दर्शनार्थ मथुरामें आया हूँ। यह सुनकर सभी देवता और मुनि हँसने लगे तथा उन्हें महान् विस्मय हुआ। नन्दजी भी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्रीकृष्णके प्रति पुत्रभावका त्याग कर दिया और शोकसे व्याकुल हो वे सभाके बीच लज्जा छोड़कर रोने लगे। तब पार्वतीने 'मोहको त्याग दो'—यों कहकर उन्हें ढाढ़स बँधाया।

**तब श्रीनन्दजी बोले**—देवेश! जैसे कुजन्माके गृहमें स्थित अमूल्य रत्न और हीरेका मूल्य नहीं समझा जाता, उसी तरह प्रभो! मैं भी ठगा गया। भगवन्! आप प्रकृतिसे परे हैं; अतः मेरा अपराध

क्षमा कर दीजिये। अब मैं पुनः यमुना-तटपर स्थित गोकुलमें अपने घर नहीं जाऊँगा। भला, आप ही बताइये, वहाँ जाकर मैं यशोदा तथा तुम्हारी प्रेयसी राधिकाको भी क्या उत्तर दूँगा और तुम्हारे प्रेमपात्र गोपबालकोंसे क्या कहूँगा? नारद! इतना कहकर नन्दजी सभामें ही मूर्च्छित हो गये। तब जगदीश्वर श्रीकृष्ण उसी क्षण उन्हें गोदमें लेकर समझाने लगे। (अध्याय ८७)

## श्रीकृष्णका नन्दको दुर्गा-स्तोत्र सुनाना तथा व्रज लौट जानेका आदेश देना, नन्दका श्रीकृष्णसे चारों युगोंके धर्मका वर्णन करनेके लिये प्रार्थना करना

**श्रीकृष्णने कहा**—हे तात! चेत करो। पिताजी! होशमें आ जाओ। अरे! चराचरसहित यह सारा संसार जलके बुलबुलेकी भाँति क्षणध्वंसी है; अतः महाभाग! मोह त्याग दो और उन महाभागा मायाकी—जो परात्परा, ब्रह्मस्वरूपा, परमोत्कृष्टा, सम्पूर्ण मोहका उच्छेद करनेवाली, मुक्ति-प्रदायिनी और सनातनी विष्णुमाया हैं—स्तुति करो। नन्दजी! त्रिपुर-वधके समय भयंकर महायुद्धमें भयभीत होनेपर शम्भुने जिस स्तोत्रद्वारा स्तवन करके महामायाके प्रभावसे त्रिपुरासुरका वध किया था, वह स्तोत्रराज, जो सारे अज्ञानका उच्छेदक और सम्पूर्ण मनोरथोंका पूरक है; मैं आपको इस सभामें प्रदान करूँगा, सुनिये।

**श्रीनन्दजी बोले**—जगदीश्वर! तुम वेदोंके उत्पादक, निर्गुण और परात्पर हो; अतः भक्तवत्सल! मनुष्योंके सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाश, दुःखोंके प्रशमन, विभूति, यश और मनोरथ-सिद्धिके लिये दुर्गतिनाशिनी जगज्जननी महादेवीका वह परम दुर्लभ, गोपनीय, परमोत्तम एकमात्र स्तोत्र मुझ विनीत भक्तको अवश्य प्रदान करो।

**श्रीभगवान्‌ने कहा**—वैश्येन्द्र! पूर्वकालमें नारायणके उपदेश तथा ब्रह्माकी प्रेरणासे युद्धसे भयभीत हुए भगवान् शंकरने जिसके द्वारा स्तवन किया था और जो मोह-पाशको काटनेवाला है; उस परम अद्भुत स्तोत्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। नारायणने शिवको शत्रुके चंगुलमें फँसा देखकर यह स्तोत्र ब्रह्माको बतलाया; तब ब्रह्माने रणक्षेत्रमें रथपर पड़े हुए शिवको बतलाते हुए कहा—'शंकर! शूरवीरोंद्वारा प्राप्त हुए संकटकी शान्तिके लिये तुम उन दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका—जो आद्या, मूलप्रकृति और ब्रह्मस्वरूपिणी हैं—स्तवन करो। सुरेश्वर! यह मैं तुमसे श्रीहरिकी प्रेरणासे कह रहा हूँ; क्योंकि शक्तिकी सहायताके बिना कौन किसको जीत सकता है?' ब्रह्माकी बात सुनकर शंकरने स्नान करके धुले हुए वस्त्र धारण किये, फिर चरणोंको धोकर हाथमें कुश ले आचमन किया। इस प्रकार पवित्र हो भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर और अञ्जलि बाँधकर वे विष्णुका ध्यान करते हुए दुर्गाका स्मरण करने लगे।

**श्रीमहादेवजीने कहा**—दुर्गतिका विनाश करनेवाली महादेवि दुर्गे! मैं शत्रुके चंगुलमें फँस गया हूँ; अतः कृपामयि! मुझ अनुरक्त भक्तकी रक्षा करो, रक्षा करो। महाभागे जगदम्बिके! विष्णुमाया, नारायणी, सनातनी, ब्रह्मस्वरूपा, परमा और नित्यानन्दस्वरूपिणी—ये तुम्हारे ही नाम हैं। तुम ब्रह्मा आदि देवताओंकी जननी हो। तुम्हीं सगुण-रूपसे साकार और निर्गुण-रूपसे निराकार हो। सनातनि! तुम्हीं मायाके वशीभूत हो पुरुष और मायासे स्वयं प्रकृति बन जाती हो तथा जो इन पुरुष-प्रकृतिसे परे है; उस परब्रह्मको तुम धारण करती हो। तुम वेदोंकी माता परात्परा सावित्री हो। वैकुण्ठमें समस्त सम्पत्तियोंकी स्वरूपभूता महालक्ष्मी, क्षीरसागरमें शेषशायी नारायणकी प्रियतमा मर्त्यलक्ष्मी, स्वर्गमें

स्वर्गलक्ष्मी और भूतलपर राजलक्ष्मी तुम्हीं हो। तुम पातालमें नागादिलक्ष्मी, घरोंमें गृहदेवता, सर्वशस्यस्वरूपा तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका विधान करनेवाली हो। तुम्हीं ब्रह्माकी रागाधिष्ठात्री देवी सरस्वती हो और परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवी भी तुम्हीं हो। तुम गोलोकमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर शोभा पानेवाली गोलोककी अधिष्ठात्री देवी स्वयं राधा, वृन्दावनमें होनेवाले रासमण्डलमें सौन्दर्यशालिनी वृन्दावनविनोदिनी तथा चित्रावली नामसे प्रसिद्ध शतशृङ्गपर्वतकी अधिदेवी हो। तुम किसी कल्पमें दक्षकी कन्या और किसी कल्पमें हिमालयकी पुत्री हो जाती हो। देवमाता अदिति और सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी तुम्हीं हो। तुम्हीं गङ्गा, तुलसी, स्वाहा, स्वधा और सती हो। समस्त देवाङ्गनाएँ तुम्हारे अंशांशकी अंशकलासे उत्पन्न हुई हैं। देवि! स्त्री, पुरुष और नपुंसक तुम्हारे ही रूप हैं। तुम वृक्षोंमें वृक्षरूपा हो और अंकुर-रूपसे तुम्हारा सृजन हुआ है। तुम अग्निमें दाहिका शक्ति, जलमें शीतलता, सूर्यमें सदा तेजःस्वरूप तथा कान्तिरूप, पृथ्वीमें गन्धरूप, आकाशमें शब्दरूप, चन्द्रमा और कमलसमूहमें सदा शोभारूप, सृष्टिमें सृष्टिस्वरूप, पालन-कार्यमें भलीभाँति पालन करनेवाली, संहारकालमें महामारी और जलमें जलरूपसे वर्तमान रहती हो। तुम्हीं क्षुधा, तुम्हीं दया, तुम्हीं निद्रा, तुम्हीं तृष्णा, तुम्हीं बुद्धिरूपिणी, तुम्हीं तुष्टि, तुम्हीं पुष्टि, तुम्हीं श्रद्धा और तुम्हीं स्वयं क्षमा हो। तुम स्वयं शान्ति, भ्रान्ति और कान्ति हो तथा कीर्ति भी तुम्हीं हो। तुम लज्जा तथा भोग-मोक्ष-स्वरूपिणी माया हो। तुम सर्वशक्तिस्वरूपा और सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाली हो। वेदमें भी तुम अनिर्वचनीय हो, अतः कोई भी तुम्हें यथार्थरूपसे नहीं जानता। सुरेश्वरि! न तो सहस्र मुखवाले शेष तुम्हारा स्तवन करनेमें समर्थ हैं, न वेदोंमें वर्णन करनेकी शक्ति है और न सरस्वती ही तुम्हारा बखान कर सकती हैं; फिर कोई विद्वान् कैसे कर सकता है? महेश्वरि! जिसका स्तवन स्वयं ब्रह्मा और सनातन भगवान् विष्णु नहीं कर सकते, उसकी स्तुति युद्धसे भयभीत हुआ मैं अपने पाँच मुखोंद्वारा कैसे कर सकता हूँ? अतः महामाये! तुम मुझपर कृपा करके मेरे शत्रुका विनाश कर दो। करुणासहित यों कहकर रणक्षेत्रमें शिवजीके रथपर गिर जानेपर करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमती दुर्गा प्रकट हो गयीं। उस समय परमात्मा नारायणने कृपापरवश हो उन्हें प्रेरित किया था। तब वे महादेवी शीघ्र ही शिवके समक्ष खड़ी हो उनके मङ्गल और विजयके लिये यों बोलीं— 'शिव! मायाशक्तिका आश्रय लेकर असुरका संहार करो*।'

---

* श्रीमहादेव उवाच—

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि। मां भक्तमनुरक्तं च शत्रुग्रस्तं कृपामयि॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि। ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि॥
त्वं च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके। त्वं साकारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणात्॥
मायया पुरुषस्त्वं च मायया प्रकृतिः स्वयम्। तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि॥
वेदानां जननी त्वं च सावित्री च परात्परा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥
मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले॥
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता। सर्वशस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी॥
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती। प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः॥
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि। गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दावनवने वने॥
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी। शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च॥
दक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा। देवमातादितिस्त्वं च सर्वाधारा वसुन्धरा॥
त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वं च स्वाहा स्वधा सती। त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः॥

**श्रीदुर्गाने कहा**—शंकर! तुम्हारा कल्याण हो! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह वर माँग लो। चूँकि तुम समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हो; अतः मैं तुम्हें विजय प्रदान करूँगी।

**श्रीमहादेवजी बोले**—परमेश्वरि! तुम आद्या सनातनी शक्ति हो; अतः दुर्गे! 'दैत्यका विनाश हो जाय'—यह मेरा अभीष्ट वर मुझे प्रदान करो।

**भगवतीने कहा**—महाभाग! तुम तो स्वयं ही भगवान् विधाता और ज्योतिर्मय परमेश्वर हो; अतः जगद्गुरो! श्रीहरिका स्मरण करो और इस दैत्यको जीत लो।

इसी बीच सर्वव्यापी विष्णुने अपनी एक कलासे वृषका रूप धारण किया और शूलपाणि शंकरके उस उग्र रथको, जिसका पहिया ऊपर उठ गया था, प्रकृतिस्थ कर दिया। तत्पश्चात् उसे अपने सिरपर उठा लिया। उन्होंने शंकरको एक मन्त्रपूत शस्त्र भी प्रदान किया। तब शंकरने उस शस्त्रको लेकर और विष्णु तथा महेश्वरी दुर्गाका ध्यान करके शीघ्र ही त्रिपुरपर प्रहार किया। उसकी चोट खाकर वह दैत्य भूतलपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंने शंकरका स्तवन किया और उनपर पुष्पोंकी वर्षा की। दुर्गाने उन्हें त्रिशूल, विष्णुने पिनाक और ब्रह्माने शुभाशीर्वाद दिया। मुनिगण हर्षमग्न हो गये। सभी देवता हर्षविभोर हो नाचने लगे और गन्धर्व-किन्नर गान करने लगे। तात! इसी अवसरपर अनुपम स्तवराज भी प्रकट हुआ—जो विघ्नों, विघ्नकर्ताओं और शत्रुओंका संहारक, परमैश्वर्यका उत्पादक, सुखद, परम शुभ, निर्वाण—मोक्षका दाता, हरि-भक्तिप्रद, गोलोकका वास प्रदान करनेवाला, सर्वसिद्धिप्रद और श्रेष्ठ है। उस स्तवराजका पाठ करनेसे पार्वती सदा प्रसन्न रहती हैं। वह मनुष्योंके लोभ, मोह, काम, क्रोध और कर्मके मूलका उच्छेदक, बल-बुद्धिकारक, जन्म-मृत्युका विनाशक, धन, पुत्र, स्त्री, भूमि आदि समस्त सम्पत्तियोंका प्रदाता, शोक-दुःखका हरण करनेवाला, सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता तथा सर्वोत्तम है। इस स्तोत्रराजके पाठसे महावन्ध्या भी प्रसविनी हो जाती है, बँधा हुआ बन्धनमुक्त हो जाता है, दुःखी निश्चय ही भयसे छूट जाता है, रोगीका रोग नष्ट हो जाता है, दरिद्र धनी हो जाता है तथा महासागरमें नावके डूब जानेपर एवं दावाग्निके बीच घिर जानेपर भी उस मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती। वैश्येन्द्र! इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य डाकुओं, शत्रुओं तथा हिंसक जन्तुओंसे घिर जानेपर भी कल्याणका भागी होता है। तात! यदि गोलोककी प्राप्तिके लिये आप नित्य इस स्तोत्रका पाठ करेंगे तो यहाँ ही आपको उन पार्वतीके साक्षात् दर्शन होंगे।

---

स्त्रीरूपं चातिपुरुषं देवि त्वं च नपुंसकम्। वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी॥
वह्नौ च दाहिकाशक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी। सूर्ये तेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च संततम्॥
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी। शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसंघे च निश्चितम्॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका। महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी॥
क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी। तुष्टिस्त्वं चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वं च क्षमा स्वयम्॥
शान्तिस्त्वं च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च। लज्जा त्वं च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी। वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि। वेदा न शक्ताः को विद्वान् न च शक्ता सरस्वती॥
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः। किं स्तौमि पञ्चवक्त्रेण रणत्रस्तो महेश्वरि॥
कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु। इत्युक्त्वा च सकरुणं रथस्थे पतिते रणे॥
आविर्बभूव सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा। नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना॥
शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च। इत्युवाच महादेवी मायाशक्त्यासुरं जहि॥

(८८। १५-३८)

विप्रेन्द्र! श्रीकृष्णका वचन सुनकर नन्दने इस स्तोत्रद्वारा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाली पार्वतीका स्तवन किया। मुने! तब दुर्गाने उन्हें गोलोक-वासरूप अभीष्ट वर प्रदान किया। साथ ही जो वेदमें भी नहीं सुना गया है, वह परम दुर्लभ ज्ञान, गोकुलकी राजाधिराजता और परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-भक्ति भी दी। इसके अतिरिक्त नन्दको श्रीकृष्णकी दासता, महत्ता और सिद्धता भी प्राप्त हुई। इस प्रकार वरदान देकर और शम्भुके साथ वार्तालाप करके दुर्गाजी अदृश्य हो गयीं। तब देवता और मुनिगण भी नन्दनन्दनकी स्तुति करके अपने-अपने स्थानको चले गये।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने नन्दसे कहा—'नन्दजी! अब आप दुर्लभ ज्ञानसे संयुक्त होनेके कारण मोहका त्याग करके प्रसन्नमनसे व्रजवासियोंसहित व्रजको लौट जाइये। व्रजराज! जाइये, जाइये, घर जाइये, व्रजको पधारिये। अब आपको सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान हो गया। आपने मुनियों तथा देवताओंके दर्शन कर लिये और मेरेद्वारा अत्यन्त दुर्लभ नाना प्रकारके इतिहास, धनवर्धक आख्यान और जन्म एवं पापका विनाश करनेवाला दुर्गाका स्तोत्रराज भी सुन लिया। जो कुछ सामने उपस्थित था, उसका मैंने आपसे हर्ष और सुखपूर्वक वर्णन कर दिया। मैंने बाल-चपलतावश जो कुछ अपराध किया हो, उसे क्षमा कीजिये। तात! जो सुख मैंने माता-पिताके राजमहलमें नहीं किया, उससे बढ़कर तथा स्वर्गसे भी परम दुर्लभ सुख आपके यहाँ किया है। मेरे प्रिय वचन, नम्रता, विनय, भय, बहुसंख्यक परिहास, यशोदा, गोपिकागण, बालसमूह और विशेषतया राधा—ये सभी एकत्र स्थित हैं। उन बन्धुवर्गोंके साथ कर्मानुसार यहीं सुख भोगकर उत्तम गोलोकको जाओ। तात! यशोदा, रोहिणी, गोपिकागण, गोपबालक, वृषभानु, गोपसमूह, राधाकी माता कलावती और राधाके साथ आप पार्थिव देहको त्यागकर और दिव्य देह धारण करके गोलोक जायँगे। राधा और राधाकी माता कलावतीकी उत्पत्ति योनिसे नहीं हुई है; अतः वह निश्चय ही अपने उसी नित्यदेहसे गोलोकमें जायगी। कलावती पितरोंकी मानसी कन्या है; अतः धन्य और माननीय है। इसी प्रकार सीतामाता, दुर्गामाता, मेनका, दुर्गा, तारा और सुन्दरी सीता—ये सभी अयोनिजा तथा धन्य हैं। वे तथा मेना और कलावती योनिसे न उत्पन्न होनेके कारण धन्यवादकी पात्र हैं। तात! इस प्रकार मैंने परम दुर्लभ गोपनीय आख्यानका वर्णन कर दिया तथा मैंने और दुर्गाने आपको यह वरदान भी दे दिया।' श्रीकृष्णका वचन सुनकर श्रीकृष्णभक्त व्रजेश्वर उन भक्तवत्सल जगदीश्वरसे पुनः बोले।

**नन्दने कहा**—प्रभो! श्रीकृष्ण! चारों युगोंके जो-जो सनातन धर्म होते हैं, उनका तथा कलियुगकी समाप्तिमें कलिके जो-जो गुण-दोष होते हों और पृथ्वी, धर्म तथा प्राणियोंकी क्या गति होती है—इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये। नन्दकी बात सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये, फिर उन्होंने मधुरताभरी विचित्र कथा कहना आरम्भ किया।

(अध्याय ८८-८९)

## श्रीकृष्णद्वारा चारों युगोंके धर्मादिका कथन, श्रीकृष्णको गोकुल चलनेके लिये नन्दका आग्रह

**श्रीकृष्णने कहा**—नन्दजी! पुराणोंमें जैसी अत्यन्त मधुर रमणीय कथा कही गयी है, उसे कहता हूँ। आप प्रसन्नमन होकर उसे श्रवण करें। सत्ययुगमें धर्म, सत्य और दया—ये अपने सभी

अङ्गोंसे परिपूर्ण थे। प्रजा धार्मिक थी। चारों वेदों, वेदाङ्गों, विविध इतिहासों तथा संहिताओंका रूप अत्यन्त प्रकाशमान था। पाँचों रमणीय पञ्चरात्र तथा जितने पुराण और धर्मशास्त्र हैं, सभी रुचिर एवं मङ्गलकारक थे। सभी ब्राह्मण वेदवेत्ता, पुण्यवान् और तपस्वी थे, वे नारायणमें मनको तल्लीन करके उन्हींका ध्यान और जप करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्ण विष्णुभक्त थे। शूद्र सत्यधर्ममें तत्पर तथा ब्राह्मणोंके सेवक थे। राजा लोग धार्मिक तथा प्रजाओंके पालनमें तत्पर रहते थे। वे प्रजाओंकी आयका केवल सोलहवाँ भाग कर-रूपमें ग्रहण करते थे। ब्राह्मणोंसे कर नहीं लिया जाता था, वे पूज्य और स्वच्छन्दगामी थे। पृथ्वी सदा सभी अन्नोंसे सम्पन्न तथा रत्नोंकी भण्डार थी। शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त और नारियाँ पतिभक्ता तथा पतिव्रतपरायणा थीं। सभी लोग ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ सम्भोग करते थे। वे न तो स्त्रीके लोभी थे और न लम्पट थे। सत्ययुगमें न तो परायी स्त्रीसे मैथुन करनेवाले पुरुष थे और न लुटेरों तथा चोरोंका भय था। वृक्षोंमें पूर्णरूपसे फल लगते थे। गायें पूरा दूध देती थीं। सभी मनुष्य बलवान्, दीर्घायु, (अथवा ऊँचे कदवाले) और सौन्दर्यशाली होते थे। किन्हीं-किन्हीं पुण्यवानोंकी नीरोगताके साथ-साथ लाखों वर्षोंकी आयु होती थी। जैसे ब्राह्मण विष्णुभक्त थे, उसी तरह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये तीनों वर्ण भी विष्णुसेवी थे। नद तथा नदियाँ सदा जलसे भरी रहती थीं। कन्दराएँ तपस्वियोंसे परिपूर्ण थीं। चारों वर्णोंके लोग तीर्थयात्रा करके अपनेको पवित्र करते थे। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) तपस्यासे पावन थे। सभीका मन पवित्र था। तीनों लोक दुष्टोंसे हीन, उत्तम कीर्तिसे परिपूर्ण, यशस्कर तथा मङ्गलसम्पन्न थे। घर-घरमें सभी अवसरोंपर पितरोंकी, निर्दिष्ट तिथियोंमें देवताओंकी और सभी समय अतिथियोंकी पूजा होती थी। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—तीनों वर्ण ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे और सदा उन्हें भोजन कराते रहते थे; क्योंकि ब्राह्मणका मुख ऊसररहित एवं अकण्टक क्षेत्र है। सभी लोग उत्सवके अवसरपर हर्षके साथ नारायणके नामोंका कीर्तन करते थे। उस समय कोई भी देवताओं, ब्राह्मणों तथा विद्वानोंकी निन्दा नहीं करता था। कोई भी अपने मुँह अपनी प्रशंसा नहीं करता था। सभी दूसरेके गुणोंके लिये उत्सुक रहते थे। मनुष्योंके शत्रु नहीं होते थे, बल्कि सभी सबके हितैषी थे। पुरुष अथवा स्त्री कोई भी मूर्ख नहीं था; सभी पण्डित थे। सभी मनुष्य सुखी थे। सभीके रत्ननिर्मित महल थे; जो सदा मणि, माणिक्य, बहुत प्रकारके रत्न और स्वर्णसे भरे रहते थे। न कोई भिक्षुक था न रोगी; सभी शोकरहित और हर्षमग्न थे। पुरुष अथवा स्त्री—कोई भी आभूषणोंसे रहित नहीं था। न पापी थे न धूर्त; न क्षुधार्त न निन्दित। प्राणियोंकी वृद्धावस्था नहीं आती थी; वे निरन्तर नवयुवक बने रहते थे। सभी देहधारी मानसिक तथा शारीरिक व्याधिसे रहित और निर्विकार थे। इस प्रकार सत्ययुगमें जो सत्य, दया आदि धर्म बतलाया गया है; वह त्रेतायुगमें एक पादसे हीन और द्वापरमें सत्ययुगका आधा रह जाता है।

कलिके प्रारम्भमें वही धर्म निर्बल और कृश हो जाता है तथा उसका एक ही पाद अवशिष्ट रह जाता है। व्रजेश्वर! उस समय दुष्टों, लुटेरों और चोरोंका अङ्कुर उत्पन्न होने लगता है। लोग अधर्मपरायण हो जाते हैं। उनमें कुछ लोग भयवश अपने पापोंपर परदा डालते रहते हैं। धर्मात्माओंको सदा भय लगा रहता है और पापी भी काँपते रहते हैं। राजाओंमें धर्म नाममात्रका रह जाता है और ब्राह्मणोंकी वेदनिष्ठा कम हो जाती है। उनमें कोई-कोई ही व्रत और धर्ममें

तत्पर रहते हैं; प्राय: सभी मनमाना आचरण करने लगते हैं। जबतक तीर्थ वर्तमान हैं, जबतक सत्पुरुष स्थित हैं और जबतक ग्रामदेवता, शास्त्र तथा पूजा-पद्धति मौजूद है; तभीतक कुछ-कुछ तप, सत्य तथा स्वर्गदायक धर्मका अंश विद्यमान रहता है।

तात! दोषके भण्डाररूप इस कलियुगका एक महान् गुण भी है, इसमें मानसिक धर्म पुण्यकारक होता है, परंतु मानसिक पाप नहीं लगता*। पिताजी! कलियुगके अन्तमें अधर्म पूर्णरूपसे व्याप्त हो जायगा। उस समय चारों वर्ण मिलकर एक वर्ण हो जायँगे। न वेदमन्त्रोच्चारणसे पवित्र विवाह होगा और न सत्य तथा क्षमाका ही अस्तित्व रह जायगा। ग्राम्यधर्मकी प्रधानतासे विवाह सदा स्त्रीकी स्वीकृतिपर ही निर्भर करेगा। ब्राह्मण सदा यज्ञोपवीत और तिलक नहीं धारण करेंगे। वे संध्या-वन्दन और शास्त्रोंसे हीन हो जायँगे। उनका वंश सुननेमात्रको रह जायगा। सब लोग अनियमित रूपसे सबके साथ बैठकर भोजन करेंगे। चारों वर्णोंके लोग अभक्ष्यभक्षी और परस्त्रीगामी हो जायँगे। स्त्रियोंमें कोई पतिव्रता नहीं रह जायगी। घर-घरमें कुलटा ही दीख पड़ेंगी; वे अपने पतिको नौकरकी तरह डराती-धमकाती रहेंगी। पुत्र पिताकी और शिष्य गुरुकी भर्त्सना करेगा। प्रजाएँ राजाको और राजा प्रजाओंको पीडित करता रहेगा। दुष्ट, चोर और लुटेरे सत्पुरुषोंको खूब कष्ट देंगे। पृथ्वी अन्नसे हीन और गायें दूधरहित हो जायँगी। दूधके कम हो जानेपर घी और माखनका सर्वथा अभाव हो जायगा। सभी मनुष्य सत्यहीन हो जायँगे और वे सदा झूठ बोलेंगे। ब्राह्मण पवित्रता, संध्या-वन्दन और शास्त्रज्ञानसे हीन होकर बैलोंको जोतेंगे, रसोइयाका काम करेंगे और सदा शूद्रामें लवलीन रहेंगे। शूद्र ब्राह्मण-पत्नियोंसे प्रेम करेंगे। रसोइया तथा लम्पट शूद्र जिस ब्राह्मणका अन्न खायँगे, उसकी सुन्दरी पत्नीको हथिया लेंगे। नौकर राजाका वध करके स्वयं राजा बन बैठेंगे। सभी लोग स्वच्छन्दाचारी, शिश्नोदरपरायण, पेटू, रोगग्रस्त, मैले-कुचैले, खण्डित मन्त्रोंसे युक्त और मिथ्या मन्त्रोंके प्रचारक होंगे। जातिहीन, अवस्थाहीन और निन्दक गुरु होंगे। धर्मकी निन्दा करनेवाले यवन और म्लेच्छ राजा होंगे; वे हर्षपूर्वक सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्तिको भी समूल नष्ट कर देंगे। लोग पितरों, देवताओं, द्विजातियों, अतिथियों, गुरुजनों और माता-पिताकी पूजा नहीं करेंगे; वे सदा स्त्रीकी ही आवभगतमें लगे रहेंगे।

पिताजी! स्त्रियोंके भाई-बन्धुओं तथा स्त्रियोंका ही सदा गौरव होगा। उत्तम कुलमें उत्पन्न लोग चोर और ब्राह्मण तथा देवताके द्रव्यका हरण करनेवाले होंगे। कलियुगमें लोग कौतुकवश लोभयुक्त धर्मसे मानको धारण करेंगे। सारा जगत् देव-मन्दिरोंसे शून्य तथा भयाकुल हो जायगा। कलिके दोषसे सदा दुर्नीतिके कारण अराजकता फैली रहेगी। मनुष्य भूखे, मैले-कुचैले, दरिद्र और रोगग्रस्त हो जायँगे। जो पहले अशर्फियोंके घटके स्वामी थे, वे राजालोग कौड़ियोंके घड़ोंके मालिक हो जायँगे। गृहस्थोंके घरोंकी शोभा नष्ट हो जायगी; वे सभी जल रखनेके पात्र, अन्न और वस्त्रसे शून्य, दुर्गन्धसे व्याप्त, दीपकसे रहित तथा अन्धकारयुक्त हो जायँगे। सभी मनुष्य पापपरायण तथा हिंसक जन्तुओंसे

* कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि। मानसं च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम्॥
(९०। २९)

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥
(रामचरितमानस ७। १०३। ८)

भयभीत रहेंगे। सभी फलके विशेष लोभी होंगे। कुलटाओंको कलह ही प्रिय लगेगा। न तो स्त्रियाँ ही यथार्थ सुन्दरी होंगी और न पुरुषोंमें ही सौन्दर्य रह जायगा। नदियों, नदों, कन्दराओं, तड़ागों और सरोवरोंमें जल तथा कमल नहीं रह जायगा एवं बादल जलशून्य हो जायँगे। नारियाँ संतानहीन, कामुकी और जार पुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली होंगी। सभी लोग पीपल काटनेवाले होंगे। पृथ्वी वृक्षहीन हो जायगी। वृक्ष शाखा और स्कन्धसे रहित हो जायँगे और उनमें फल नहीं लगेंगे। फल, अन्न और जलका स्वाद नष्ट हो जायगा। मनुष्य कटुवादी, निर्दयी और धर्महीन हो जायँगे। व्रजेश्वर! उसके बाद बारहों आदित्य प्रकट होकर ताप और बहुवृष्टिद्वारा मानवों तथा समस्त जन्तुओंका संहार कर डालेंगे। उस समय पृथ्वी और उसकी कथामात्र अवशिष्ट रह जायगी। जैसे वर्षाके बीत जानेपर क्षेत्र खाली हो जाता है, वैसे ही कलियुगके व्यतीत होनेपर पृथ्वी जीवोंसे रहित हो जायगी। तब पुनः क्रमशः सत्ययुगकी प्रवृत्ति होगी।

तात! इस प्रकार मैंने चारों युगोंका सारा धर्म बतला दिया; अब आप सुखपूर्वक व्रजको लौट जाइये। मैं आपका दुधमुँहा शिशु पुत्र हूँ; भला, मैं (धर्मके विषयमें) क्या कह सकता हूँ? मैंने आपके यहाँ माखन, घी, दूध, दही, सुन्दर रूपसे बनाया हुआ मट्ठा, स्वस्तिकके आकारका पकवान, शुभकर्मोंके योग्य अमृतोपम मिष्टान्न तथा पितरों और देवोंके निमित्त जो कुछ मिठाइयाँ बनती थीं, वह सब मैं रोकर जबर्दस्ती खा जाता था; बालकोंका रोना ही उनका बल है। अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये; बालक तो पग-पगपर अपराध करता है। आप मेरे बाबा हैं और मैं आपका पुत्र हूँ; यशोदा मेरी मैया हैं। अब आप व्रजमें जाकर अपने इस बच्चेके मुखसे सुने हुए मेरे सारे परिहासको यशोदा और रोहिणीसे कहिये; फिर तो सारे गोकुलवासी उस सबका कीर्तन करेंगे। अहो! कहाँ तो गोकुलमें वैश्यकुलोत्पन्न वैश्यके अधिपति तथा गोकुलके राजा आप नन्द और कहाँ मथुरामें उत्पन्न हुआ मैं वसुदेवका पुत्र; किंतु कंससे डरे हुए मेरे पिता वसुदेवने मुझे आपके घर पहुँचाया; इसलिये आप मेरे पितासे बढ़कर पिता और यशोदा मेरी मातासे भी बढ़कर माता हैं। महाभाग व्रजेश्वर! आपको मैंने तथा पार्वतीने ज्ञान प्रदान किया है; अतः तात! उस ज्ञानके बलसे मोहका त्याग कर दीजिये और सुखपूर्वक घरको लौट जाइये।

**नन्दजीने कहा**—प्यारे कृष्ण! तुम रमणीय वृन्दावन, पुण्य महोत्सव, गोकुल, गो-समूह, परम सुन्दर यमुना-तट, गोपियोंके लिये परम सुन्दर तथा अपने प्रिय रासमण्डल, गोपाङ्गनाओं, गोप-बालकों, यशोदा, रोहिणी और अपनी प्रिया राधाका स्मरण तो करो। अरे बेटा! तुम्हें प्राणोंसे प्यारी राधिकाका स्मरण कैसे नहीं हो रहा है? वत्स! एक बार कुछ दिनोंके लिये तो गोकुल चले चलो। इतना कहकर नन्दने श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बैठा लिया और शोकसे विह्वल होकर वे उन्हें नेत्रोंके मधुर आँसुओंसे पूरी तरह नहलाने लगे। फिर स्नेहवश उन्हें छातीसे लगाकर आनन्दपूर्वक उनके दोनों कपोलोंको चूमने लगे। तब परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उनसे बोले।

(अध्याय ९०)